

श्री राधा का क्रमविकास

—दर्शन और साहित्य में

डॉ० शक्तिमूकणवास गुप्त एम० ए०, पी-एच० डी०
(प्रमुख प्राधुनिक भाषा-विभाग कनकलता विश्वविद्यालय)

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय



प्रकाशक
श्रीमन्महाशय बेरी
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो० बॉ नं ७ ज्ञानवापी
वाराणसी ।

प्रथम संस्करण—२२००
१९५६
मूल्य आठ रुपये मात्र

मुद्रक
श्री कृष्णकांत बेरी
विद्यामन्दिर प्रेस (प्राइवेट) लि०,
डी १३/२४ ज्ञानमन्दिर,
वाराणसी ।

प्राकथन

इस ग्रंथ का विषय है श्रीराधा का कमविकास। पहले ही स्वाभाविक भाव से एक प्रश्न मन में उभित हो सकता है, श्रीराधा तो रत्नमय एवं सीतामय श्रीकृष्ण की नित्य सीता-सङ्गिनी हैं—वै तो सनसनी हैं,—तो फिर उनके कम-विकास का अर्थ क्या? परम तत्त्व रूप में श्रीराधा तो 'नित्या ठाकुरानी' हैं ही; तो बीच द्वारा प्राकृत होने के लिए ही वह परम तत्त्व फिर मर्त्यलोक में अभिव्यक्ति पाता है। हमारे कमविकास की बात से उसी ऐतिहासिक कमविकसित की बात कही है। दूसरे रूप में हम कह सकते हैं, भारतीय मानस में यह श्रीराधा का रूप बीरे-बीरे पूर्णतः हुआ है—उसी की इतिहास रचना की है हमने अपने ग्रन्थ में। प्रत्येक जाति के शरीर के ढंके में जिस प्रकार एक वैशिष्ट्य है, उसी प्रकार वर्ण, साहित्य, सिन्धु आदि के भीतर बहुधा ऐसा अभिनवत्व दिखाई पड़ता है, जो पूर्णतया उसका निरन्तर होता है। वैष्णव-धर्म का सीता-वाद—विशेषतः राधावाद—हमारे भारतीय मनन की ही विशेषता का प्रतीक है। धर्म और साहित्य के भीतर प्रकाशित इस भारतीय मनन की विद्यमानता ने बहुत दिनों तक मेरे मन को स्पष्टित किया है, अतएव इस वस्तु को मेरे पूर्णतया सत्य किया है—उसी सत्य ने मुझे नित्य नूतन तम्य और बुद्धि दी है। वस्तु के तनिक धारण प्रवेश करके और भी देता है—राधावाद के भीतर हमारे भारतीय मनन-वैशिष्ट्य का जो परिचय मिलता है—वह वैशिष्ट्य केवल राधावाद में ही नहीं है, वही वैशिष्ट्य व्यापक रूप से भारतीय साहित्यवाद में है। इसी बुद्धि से भारतीय वैष्णव-शास्त्र और अनुवर्गिक शैव-शास्त्र-शास्त्र का नए रूप में अध्ययन किया है, जो अध्ययन का ही फल है प्रस्तुत ग्रन्थ।

मने ग्रन्थ में कहा है, वैष्णव कवियों ने श्रीराधा का एक 'कमविकसित' रूप देया है। ऐतिहासिक की बुद्धि में भी श्रीराधा का एक 'कमविकसित' रूप आता है। जिस प्रकार 'कमविकसित' का धनक स्तरों के भीतर कम-विकास का एक इतिहास है उसी प्रकार भारतीय वर्ण और साहित्य के विभिन्न स्तरों में निरंतर श्रीराधा का बहुत दिनों के कम-विकास का इतिहास है। प्रस्तुत ग्रन्थ में श्रीराधा के इसी कम-विकास की धारा को साध करने की चेष्टा की गई है। इस कम-विकास के इतिहास में

दर्शन और साहित्य की बाधाएँ किस प्रकार पुनः-मिलकर एक ही गई हैं इसे भी दिखाने की चेष्टा की गई है।

ग्रन्थ-रचना के कार्य में कुछ दूर घाने जाने के बाद एकबार कश्मीर के सुप्रसिद्ध विद्वान् महान्दोषाप्याय भी गोपीनाथ कविराज महाशय के साथ एक दिन इसी विषय पर आभाष-आलोचना का कुटीय प्राप्त हो गया था और उनसे मंने उत्ताह तथा अपदेश भी प्राप्त किया है। कनकता संस्कृत-कालेज के तत्कालीन अध्यक्ष डाक्टर तबालाब भाबुड़ी महाशय ने संस्कृत-कालेज के पुस्तकालय से प्रयोगानुसार पुस्तकें लेकर मेरी सहायता की है।

अधेय डाक्टर महारेव छाह्र महाशय ने जो बंगला और हिन्दी दोनों भाषाओं के पारदर्शी हैं अनुवाद-कार्य में मेरी सहायता की है। उन्हें मैं अपनी सभ्य कृतज्ञता ज्ञापन कर रहा हूँ। पाण्डित्य का परिदर्शन एवं मुद्रण-परिक्षा के कार्य में पंडित कवि श्री जालावर त्रिपाठी द्वारा भी सहायता प्राप्त हुई है उन्हें भी मैं अपनी आन्तरिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। ग्रन्थ के इस हिन्दी-अंशकरण का सारा भार साधु ग्रहण किया है आराधनी के प्रसिद्ध प्रकाशक 'हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय' की ओर से श्रीकृष्णचन्द्र बेरी महाशय ने। ग्रन्थ को प्रकाशन के लिए लेकर उन्होंने अपने विद्याभरण का ही परिचय दिया है। ग्रन्थ के मुद्रु क्य म प्रकाशित करने में उन्होंने किसी प्रकार के मयल में त्रुटि नहीं की इसके लिए मैं उनके कृतज्ञता-पात्र में बद्ध रहा।

कनकता विश्वविद्यालय

}

ग्रन्थकार
श्री दक्षिभूषण दासगुप्त

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय

राजातत्व का मूल—प्राचीन भारतीय सन्तितत्व १

द्वितीय अध्याय

श्री सुस्त और श्रीदेवी या लक्ष्मीदेवी का प्राचीन इतिहास १५

तृतीय अध्याय

पद्मचराय में विष्णु-सन्तित श्री या लक्ष्मी २६

चतुर्थ अध्याय

पद्मचराय में वर्णित सन्तितत्व और कारमीर-शिवदर्शन में
ध्यात्मतत्त्व सन्तितत्व का मिलन ३६

पञ्चम अध्याय

पुराणादि में ध्यात्वात् वैष्णव-सन्तितत्व ४६

(क) पुराणादि में लक्ष्मी-सम्बन्धीय किंवदन्ती और उपास्यान ५

(ख) तात्त्विक दृष्टि में पुराण-वर्णित विष्णुसन्तित और विष्णुमाया ५७

षष्ठ अध्याय

श्री लक्ष्मण में और माय-लक्ष्मण में ध्यात्वात् विष्णुसन्तित श्री ६४

सप्तम अध्याय

श्री राधा का प्राविर्भाव १००

(क) राजाहृष्य की श्रुतिय तत्त्वत्व में ध्यात्वा १०१

(ख) विविध पुराणादि में राधा का उल्लेख १०४

(ग) प्राचीन साहित्य में राधा का उल्लेख ११४

(घ) संस्कृत में राधा-प्रेम-गीतिका और पारिव्रज प्रेम गीतिका का
सम्मिश्रण ११६

(ङ) वैष्णव प्रेम-श्रुतिता और प्राचीन भारतीय प्रेम-श्रुतिता
की धारा १४६

(४)

अष्टम अध्याय

धर्म और दर्शन में राधा

नवम अध्याय

पूर्वालोचित प्राचीन भारतीय विविध झलिततत्त्व और मौखीय राधातत्त्व

दशम अध्याय

वार्धनिक राधातत्त्व का विविध विस्तार

एकादश अध्याय

चैतन्य-चरितामृत में व्याख्यात गौरतत्त्व और राधातत्त्व

द्वादश अध्याय

बैष्णव-सहजिया मत में राधातत्त्व

त्रयोदश अध्याय

'राधा-वत्सल' सम्प्रदाय की राधा और बंगाली वैष्णव
कवियत्र का 'विजोरी' तत्त्व

चतुर्विंश अध्याय

कन्नड-सम्प्रदाय के हिन्दी साहित्य में राधा

पञ्चदश अध्याय

परबर्ती काल की राधा

वरिष्ठिष्ट (सहायक ग्रन्थ तथा अष्ट-सूची)

प्रसक्त विद्यापीठालय के बगला विभाग के
रामतनु लाहिडी अध्यापक
डॉ० श्रीकुमार बन्धोपाध्याय
अदास्पदपु



प्रथम अध्याय

राधातत्व का मूल प्राचीन भारतीय शक्तितत्व

ईसा की बारहवीं सदी से बंगाल में जो वैष्णव-साहित्य रचित हुआ है उसकी विशेषता राधावाद में है। बंगाल के प्रसिद्ध वैष्णव कवि जय देव ने विष्णु के पूर्णवितार भयवान श्री कृष्ण की प्रेमलीला को लेकर ही अपना सुप्रसिद्ध 'गीत-योगिन्द्र' काव्य लिखा था लेकिन इस प्रेमलीला के 'विषय' थे श्री कृष्ण 'भ्रामय' की राधा। राधा का परमस्वयं करके ही सभी प्रेमलीलायां की स्पर्धित होती है। 'विषय'-स्वरूप कृष्ण की राधिका ही 'भ्रामय'-स्वरूप होने के कारण बंगाल के वैष्णव काव्य कविता की भी राधिका ही मुख्य धारणा हो गई है। जयदेव के समकालिक श्रीधरदास (ठेखड़ी गठाष्टी का प्रथम भाग) के संस्कृत-कविता-संकरण-ग्रन्थ 'मदस्तिवर्कामृत' में जो वैष्णव-पदान्तो मिसली है, राधाकृष्ण का प्रेम ही उनके अविनाश का अहमस्वयं है। इसके बादवाले काल में बंगाल के कवि जगदीशदास और मिथिला के कवि विद्यापति ने जो वैष्णव कवितायें लिखी थी राधा ही उन वैष्णव कविता की धारणा है। मोनहरी गठाष्टी में महाप्रेम श्री श्रीकृष्णदेव की परमप्रेरणा से परगास्वामी एक अर्धस्वयं धार्मिक तथा कवि सत्कल्प की सम्मिश्रित भावना में जो प्रेमधर्म और प्रेम-साहित्य मिश्रित हुआ श्री राधा की कल्पना में ही उसमें एक अविनाश वाला और विशेषता प्रकाश की है। यह बात सच है कि केवल बंगाल के अलावा भारतभर के किसी दूसरे इलाके में इस राधावाद का कोई प्रकार या प्रकार नहीं हुआ ऐसी बात नहीं इस विषय पर विष्णु-विचार हम यथास्थान करेगे। यहाँ अन्धे में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इस राधावाद में बंगाल के धर्म और साहित्य पर जो अत्यन्त और गहरा प्रभाव विस्तार किया है भारतभर में नहीं भी ऐसा नहीं किया। बंगाल के वैष्णवों के परमाध्यय देवता का विशेष नाम है 'राधारमण' बंगालियों के प्रभाव से ही धारा भी श्रीधर बुन्दावन में 'जय राधे' कहकर प्रवेच करना पड़ता है बंगाल के वैष्णव मिथिली धारा भी 'जय राधे' कहकर ही डार-डार जीव मौनते चिरेते हैं। बंगालियों का यह राधाप्रेम अत्यन्त

सहज सरस होते हुए भी अत्यन्त गम्भीर और मधुर रूप में योक्त्वि-
यधिकारी के शुक-सारी के हृदय में प्रकट हुआ है ।¹

संसार के धर्म और साहित्य में—केवल बंगाल के ही नहीं भारतवर्ष
के धर्म और साहित्य में हम रूप और रस मिश्रित राधा की जो मूर्ति
पाते हैं उसमें प्रबलतः दो उपासामो को देख सकते हैं एक है बार्धनिक
रस का पक्ष या धर्म-रस (Theology) का पक्ष दूसरा है
काम्योपासना का पक्ष । राधा के अन्तर होना ही पक्ष एक प्रारम्भजनक
अभिलाषा भाव प्राप्त करने हुए है । जिस रूप में उसने हमारे धर्म और
साहित्य में प्रतिष्ठा पाई है उसका सुन्दरतम परिचय हमें एक नव कवि
के गीत के एक पद्य में मिलता है—

(१) शुक बने
सारी बने

आमार हृदय मदनमोहन ।
आमार राधा बाने यत्नन ।
नैत कुबुद्ध मदन ।

शुक बने
सारी बने

आमार हृदय फिरि धरेधिन ।
आमार राधा अमित लंकारिन
नैत पारबे केन ?

शुक बने
सारी बने

आमार हृदयेर माधव्य मधुर वाक्ता ।
आमार राबार नामदि ताते तेबाद,
ऐ पाय यो बैबा ।

शुक बने
सारी बने

आमार हृदयेर चूड़ा बाने हेते ।
आमार राबार अरब पाबे बने
चूड़ा लाइते हेते ।

१०१

१०१

१०१

शुक बने
सारी बने

आमार हृदय अगत-विस्तारमनि ।
आमार राधा प्रेम-अशामिनी,
ते तीमार हृदय बाने ।

शुक बने
सारी बने

आमार हृदयेर बाँधी करे गान
नाय बने बने रापार नाम
नैत मिले ते गान ।

शुक बने
सारी बने

आमार हृदय अगतेर मुब ।
आमार राधा बाग्दाम्यन्तर
नैत के कार बुब ?..... इत्यादि

सि ये बैतन-जलेर फुल्ल-फुल्ल,
ताइ सोके धने कमसिमी ।

राजा सचमुच ही कमसिमी है । भारतीय मन के बैतन राजप के प्रसस्तल में पहीरि चित्तभूमि के प्रन्दर जो परमभेयोबोध जो परमप्रेम सौन्दर्य और माधुर्य-बोध का बीज छिपा हुआ था बीरकाम की और-मुकुमार परिधति के प्रन्दर से प्रध्यात्म तत्त्व और रूप-रस-माधुर्य से यह हमारे बर्म और साहित्य में परिपूर्ण कमसिमी की भाँति ही विकसित हुई है । इस पूर्व-विकसित कमसिमी की उत्पत्ति और कम-विकास का इतिहास जानने के लिए इसनिच हमें उपर्युक्त शानों पत्तों का अनुसन्धान करना होया पहीरि तत्त्व का पस और फिर काव्योपाख्यान का पस ।

इस अनुसन्धान को शुरू करने पर हम देखेंगे कि राजावाद का बीज भारतीय सामान्य शक्तिवाद में है वही सामान्य शक्तिवाद वैष्णव बर्म और दर्शन से भिन्न-भिन्न प्रकार से मुक्त होकर भिन्न-भिन्न युगों और भिन्न भिन्न देशों में विभिन्न परिधति को प्राप्त हुआ है उसी कमपरिधति की एक विशेष अभिव्यक्ति ही राजावाद है । जो भी शुद्ध शक्तिशक्तिपी कम परिधति क प्रवाह के प्रन्दर से उठने काकर रूप परिधतु किया है परम-प्रेमशक्तिपी मूर्ति में । विरुद्ध शक्तिशक्तिपी का परिपूर्ण प्रेमशक्तिपी में यह बरमना केवन तत्त्व-परिधति के प्रन्दर से ही नहीं हुआ है, इस रूपान्तर के प्रन्दर बहुतेरे मौकिक मुक्ति-स्मृति-बाहित प्रेमोपाख्यानो ने गहरा प्रभाव-विस्तार किया था । ये उपाख्यान अपने मौकधिय काव्य-बमत्कार के कारण ही नमरा वैष्णव धास्त्र और साहित्य में गृहीत होने लये इन उपाख्यानो के स्वीकार करने के फलस्वरूप तत्त्ववृष्टि में भी अनेक परिवर्तन प्रवश्यम्भावी हो उठे । परिधामस्वरूप देखा जाता है कि वैष्णव बर्म और दर्शन में शक्तिवाद की कमपरिधति के पीछे दो मुख्य कारण हैं—भिन्न-भिन्न देशों और भिन्न-भिन्न कालों के जो वैष्णव-तत्त्व-सिद्धान्त हैं उनसे संगति रना करने के लिए वैष्णवदर्शन के शक्तिवाद के प्रन्दर तच्छ-तच्छ के परिवर्तन किये गये और भिन्न-भिन्न कालों के बहुतेरे मौकिक उपाख्यानो के वैष्णव बर्म और साहित्य में स्वीकृत होने के कारण उपाख्यानो से मुन सिद्धान्त की संगति रना के लिए तत्त्ववृष्टि में कुछ-कुछ परिवर्तन या परिवर्तन की आवश्यकता पड़ी । इन दोनों कारणों द्वारा प्रभावित होकर ही भारतीय शक्तिवाद की राजावाद में बन-परिधति हुई ।

भारतवर्ष शक्तिवाद का ही रेश है । श्रुटिकृत्य का प्रवतन्वन करके एक प्रसस्त्य प्राति देवी की बल्पना इसरे देशों में भी देवी जाती है और

इस धारि बेनी में मातृत्व का धारण करते बेबीकल्पना धर्म्य भी कुछ कुछ मिलती है। लेकिन इस विश्व-प्रकृति एक विश्व-शक्ति को भारतवर्ष में अपने बर्मजीवन में जिस प्रकार ग्रहण किया है ऐसा संसार में दूसरी जगह नहीं दिखाई पड़ता। इस शक्तिवाद का प्रभाव भारतवर्ष में केवल शाक्त या शैव-सम्प्रदायों पर ही नहीं है, इसका प्रभाव भारतवर्ष के प्रायः सभी बर्म-सम्प्रदायों पर है। यहाँ तक कि बौद्धधर्म और जैनधर्म के धर्मर भी विविध देवियों की कल्पना हिन्दू धर्म से कुछ कम नहीं है। हिन्दूधर्म के धर्मर शैव या शाक्त सम्प्रदायों के धर्मर द्वारा जितने बर्म-सम्प्रदाय हैं उनमें स प्रत्येक के धर्मर शक्ति की कल्पना और बर्ममत पर शक्तिवाद का प्रभाव षोडश-बहुल विद्यमान है। यह बात सुनने में पहले कुछ धारश्चर्यजनक लगेयी शक्ति इसके बावजूद यह दस्वीकार नहीं किया जा सकता कि शैवधर्म मतां पर शक्तिवाद का एक बाध प्रभाव बर्त मान है। सामाज्य तीर से लक्ष्मी विष्णु की शक्ति है। राम-सम्प्रदाय में इस लक्ष्मी का स्वागत किया है सीता ने इन्द्र-सम्प्रदाय में यह शक्ति राजा ही है। इसके बारे में धार्ये हम विस्थापूर्वक लिखने। शौर और बाण-पत्य सम्प्रदायों के धर्मर भी इस शक्ति की कल्पना मौजूद है। तन्त्र पुण्य धारि शौकिक शास्त्रों में सूर्य और यशोध के जितने बर्णन और ध्यानमंत्र मिलते हैं, उनमें देखा जाता है कि शिव जैसे बुर्गा पार्वती या यमा-रूप में शक्ति के शक्ति युगल भाव के बर्तमान हैं। शूर्प-जनेयारि देवता भी उड़ी राज् धरणी-धरणी 'बल्लभा' से युक्त है। उमा-भद्रेश्वर की युगल-मूर्ति की शक्ति (धर्यात् शिव की बायीं बाँध पर बैठी धर्या) शक्ति-युक्त लगेयमूर्ति भी मिलती है। धर्या के क्षेत्र में जिस प्रकार के धर्या को भारतवर्ष में जब प्रभावता क्यों न मिले धर्म के क्षेत्र में भारतवर्ष के धर्ममात्र में इस शक्तिवाद का विकास घटक ही गया था। इसलिये भारतवर्ष में ऐसा कोई देवता उपदेवता या धाररज-देवता नहीं मिलेगा जिसकी कोई शक्ति-कल्पना पुण्य धारि धार्यों या शौकिक सिम्बरशक्तियों में नहीं की गई है। शौकिक देवता भी सहाय्यहीन नहीं हैं, वे भी शक्ति-युक्त हैं। परवर्ती काल के बज्जबाल बौद्धधर्म के धर्मर सिद्ध-सिद्ध स्तरों के बहुतेरे शौकिक देवताओं ने नये धरि से धारप्रश्रय किया है। साम-साज्य उनही शक्ति-कल्पना भी की गई है। भारतवर्ष के इन शौकिक

(१) इस प्रबंध में बेकिप बाबर विनयतोव भद्राधर्म प्रणीत Indian Buddhist Iconography और बर्तमान लेखक की An Introduction to Tantric Buddhism.

सा अपति शक्तिराधा निजसुखमयनित्यनिष्पमाकारा ।

शक्तिराधरबीजं शिवरूपविमर्शनिर्मलार्थं ॥ २ ॥

यहाँ 'निजसुखमय' शब्द का तात्पर्य शिवसुखमय है अर्थात् शिव की सुखरूपिणी । यह शक्ति शक्तिराधरबीजरूपिणी होने के कारण शिवरूपविमर्शनिर्मलार्थ है । 'शिवरूपविमर्श' शब्द का अर्थ शिव का मैं ऐसा हूँ इस प्रकार जो ज्ञान है उसी का विमर्श या स्फुरण है । इस विमर्श की सामक्यता या करणरूपा ही शक्ति है अतएव यह शक्ति ही शिव-रूप का निर्मल आरंभ है इसी आरंभ के अन्दर से ही वे सदा स्वयं अपना रूप देते हैं । अन्वय कहा कहा गया है कि परशिव रजि-स्वरूप है शक्ति उनकी करणिकर-स्वरूपा है इस शक्तिरूपा विमर्श-विमर्श-वर्षण में प्रतिपन्नित होती है परमाक्षर परमात्मक महाबिन्दु धरना यह महा बिन्दु शक्तिरूप कर्ता है प्रति सौन्दर्य द्वारा सुन्दर हो उठता है शिव का ऐसा चित्तमय शक्तिरूप दीवार पर^१ । शिव की सारी इच्छा या काम को पूर्ण करती है इसलिये शक्ति को विमर्शरूपिणी कामरूपी कहा गया है । यह परमशिव और उनकी शक्ति ब्रह्माण्ड गमिणी परमेश्वरी माता हुं-हूँ-हूँ की भाँति नित्य सीधारा है ।^१

परमशिव का जो कुछ प्रमातृत्व अस्तुत्व और भोक्तृत्व है वह सब कुछ शक्ति का अवलम्बन करके ही है इसलिये यह शक्ति केवल मात्र ज्ञानरूपिणी या ज्ञानरूपिणी नहीं है शक्ति अनान्दरूपिणी है, यह शक्ति ही आनन्द शक्ति है । वह कारणात्मिका होकर ही अमृतानन्दा के क्षीर पर शिरूपात्मक शिव की प्रथिता होती है^२ । यह आनन्द ही सभी सृष्टियों का मूल है नारी-मुद्रा के मिलन को हम जो कुछ सृष्टि देखते

(१) परमेश्वरविकारनिकरे प्रतिकल्पति विमर्शवर्षण विद्यारे ।

प्रतिशक्तिरूपिरे कुर्व्यं चित्तमये निविद्यते महाबिन्दु ॥

कामरसावित्तास ४

(२) वही २१

(३) ब्रह्माण्डगमिणी व्योमव्यापिनः सर्वतोयते ।

परमेश्वरहृत्सय शक्ति हुंसीमिव स्तुम ॥

सावित्तामवि श्रीमद्गुणारण्य-विरचितः

(का०-सं०-पं० १०)

(४) आनन्दरूपिणि सौन्दर्या यतो विरवं चित्तु यते ॥

सम्प्राप्तो ३१७

(५) श्रेयतन्त्र (का०-सं०-पं० ४६) का३४-३५

है वही यह मिलन एक बाहरी प्रक्रिया मात्र है। वास्तव में मानव
 शक्ति ही अभिवृद्धि होकर अपने को साप ही सृष्ट करती है। यही
 मानव है निमित्त-कारण और मानव ही उत्पादन कारण है। विश्व-
 सृष्टि के महान्त्वमय पक्ष के अन्तर ही जो अनुकरण करता है जो प्रवृत्तान
 करता है वही मानवमयी शक्ति में समाविष्ट परम होकर और को प्राप्त
 होता है। वायविक परार्थ के तौर पर जो कुछ प्रतिमात होता है
 वह सब कुछ उसी मानवशक्ति का मानव-रस-विभ्रम मात्र है जिस
 वस्तु का प्रवृत्तान करके हमारे मित्र को मानव मिलता है वह वस्तु
 भी मानव-रस-विभ्रम है और हृदय की जो मानव-अनुभूति है वह भी
 मूलतः वही मानवशक्ति है। मानव यहाँ व्याप्य-व्यापक के रूप में
 ब्रह्माण्ड को व्याप्त किये हुए है।

परमशिव की पराशक्ति ही मानवमयी है मायाशक्ति या प्राकृत
 शक्ति मानवमयी नहीं है। मानवशक्ति परमशिव की स्वरूप-शक्ति
 है। इसलिये मानवशक्ति ही अनुभवमयी इस पराशक्ति को शक्ति-बन्ध की
 जननी कहा गया है। जो शक्ति मानवमयी है वे माया के ऊपर महा-
 माया है। इस मानव-शक्ति का ही वैदिकी कला' कहा जाता है
 अर्थात् शक्ति को सोलह बना के ऊपर वही सृष्ट करती कला है।

परम शिव की यह जो मानवशक्ति ही स्वरूप-शक्ति है—जो परम
 शिव के साथ सर्वथा प्रतिनाशप्रमाण स प्रवृत्तान करती है उनी को
 'समवायिनी शक्ति' कहा गया है। इस शक्ति का साथ प्रवृत्तान और

(१) मानवशक्ति का शक्तिः तुल्यत्वात्मानमात्मना ।
 ब्रह्माण्ड के ११ मं० श्लोक की श्लोकान्तगत
 श्लोक से उद्धृत ।

(२) ब्रह्माण्ड ११४

(३) तन्त्रलोक, ३१२ ६-१

(४) या ता शक्तिः परा सुख्मा व्यापिनी निर्वला मित्रा ।
 शक्तिवचस्य जननी परान्धामुतास्त्रिधा ॥
 शिवसूत्र-वार्तिक (वा०-सं०-४ ४३)

(५) वायोपरि महाभाषा त्रिकोणमानवशक्तिः । कुम्भिकात्म
 पराशक्ति
 पराशक्तिका में उद्धृत, १०४ पृष्ठ
 (६) तन्त्रलोक, १११ श्लोक की अन्त्य कर्तृक श्लोक देखिये ।

उत्पन्न केवलमात्र सृष्टिकाम परमेश्वर की इच्छा से है^१ । इसी समवा-
यिनी शक्ति से ही परमेश्वर का साक्षात् सम्बन्ध है । इसीलिए इसी
शक्ति के प्रति वे अनुग्रह करते हैं^२ । मायाशक्ति या प्राकृतशक्ति इसी
समवायिनी शक्ति से उत्पन्न होती है । अतएव परमेश्वर से उनका सीधा
सम्बन्ध नहीं है । माया या प्राकृत-शक्ति समवायिनी शक्ति से ही उत्पन्न
होने के कारण समवायिनी शक्ति को भी शक्तियों की शक्ति और सभी
पुर्णों का गुण कहा जाता है^३ । यह समवायिनी शक्ति 'माया' के ऊपर
पर महामाया है । ऊपर पाञ्चरात्र के विवेचन के प्रसंग में हम इन
बुद्धों हैं कि बही शक्ति के बोहरे पल को स्वीकार किया गया है । बही
भी भगवान् विष्णु की स्वल्प-शक्ति को उनकी समवायिनी शक्ति कहा
गया है और विष्णु की अगत् प्रपञ्चकारिणी शक्ति को उनकी माया-शक्ति
कहा गया है यही परिधायिनी त्रिमूर्त्तिकी प्रकृति है । स्वरूपमूर्ता
समवायिनी शक्ति कभी भी परम त्रिभ के स्वरूप को ध्या ध्यायित नहीं
करती है । सेकित त्रिभ माया से यह ब्रह्माण्ड-व्यापार साधित होता है यह
मायाशक्ति मानो अनाद्य-स्वरूप त्रिभु का ही एक धात्माच्छादन है ।
त्रिभु की इस मायाशक्ति के द्वारा ही त्रिभु की समवायिनी स्वरूपमूर्ता
विमर्श-शक्ति ज्ञान सत्य अम्यवमय आदि नामों से मित्र-मित्र प्रकार
से प्रतीत होती है^४ । यह माया त्रिभु के त्रिभ अनाद्य अक्षित ओष के
धन्वर ही एक भेदबुद्धि है । यह उनका नित्य और निरंकुश अर्थात् अप्रतिहन
विमर्श है — जैसे कि अगह अगह इस समवायिनी शक्ति और परिग्रह

(१) सा सा शक्तिर्विष्णुः कविता समवायिनी ।

इच्छतर्त्त तस्य सा शक्तिः सितुषो प्रतिपद्यते ॥

भासिनीविजयोत्तर-तन्त्र (४०-सं०-पृ० ३७) १।५

सुतनीय—इच्छा तैव स्वयदा संततसमवायिनी सती शक्तिः ।

पद्मिप्रतस्वसन्दोह (४०-सं०-पृ० १३) द्वितीय श्लोक ।

(२) तां शक्तिं समवायायां भेदाभेदप्रवर्तिणीम् ।

अनुपूर्वशक्ति संशय इति बुद्धेभ्य आगमः ।

ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा के २।३।६ श्लोक की धर्मिनश्चतुस्तु कर्तुं क हीरा से उद्धृत ।

(३) धरणीमाश्रयि सा शक्तिर्पुणानामप्यती गुणः ॥ बही

(४) पूर्वोक्त बुद्धिजातम् ।

(५) संज्ञाशेष ४।११

(६) ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा १।५।१८

(७) पद्मप्रतस्वसन्दोह, ३

शक्ति की एक ही शक्ति-समुह की भिन्न-भिन्न अवस्था के तौर पर व्याख्या की गई है। एक परा शिष्यकृत है—यह 'महासत्तास्वभावा' और बिना 'अघान्तस्वभावा' है यह प्रकृत समूहकी शक्ति का ही स्वीत भाव और अभाव इस समय-व्यापिका के रूप में सत् और असत् इन दोनों रूपों में विरक्तप्रपञ्च के कारण और अधिकरण दोनों रूपों में विरक्तता है यही शक्ति की दूसरी अवस्था है। तीसरी अवस्था में समूह के यह स्वीत भाव से ही मायो अर्थात् के तौर पर बराबर की अन्तर्कारिकी परिग्रह कतिनी शक्ति का आविर्भाव होता है, यही शक्ति विश्वयमी शक्ति है। परम शिव का जो मायाव्यापित रूप है, 'पूर्वाहन्ता' के स्फुटस्फुट 'इहन्ता' के तौर पर जो अभिव्यक्ति योग्यता है इसी को लेकर सत्वादिब तत्त्व या ईश्वर-तत्त्व होता है। विरक्तत्व मायावीत है और माया का स्वप्रकाश है शिव की अवबोध में व्यापित। यह जो ईश्वर की सत्वादिब है वे बाह्य उन्मेष-निमेषशाली है। इस सत्वादिबतत्त्व तक सब कुछ प्राकृत है सत्वादिब से ऊपर जो कुछ तत्त्व है वहाँ प्रकृति मा माया को प्रवेष्ट करण का कोई अधिकार नहीं है वही अप्राकृत मायावीत काम या तत्त्व है।

पारम्परिक में शक्तितत्त्व का विवेचन करते समय हमने देखा है कि वहाँ भी भगवान् की 'मीमांसा' की कल्पना है लेकिन वह सीमा मायावीत या बुधवीत अवस्था में स्वकृत-शक्ति के सामे नहीं है विरक्तवृष्टि के अन्तर से यह जो पारमप्रकाश होता है और महाप्रलय के अन्तर से

(१) महानय-प्रकाश के ५१२ श्लोक की विवृति (का-सं-ध २१)
६२ पृष्ठ देखिये।

(२) तुलनीय-स्वार्तम्भारिमका तावद्विष्टैव भवत्तः शक्तिः । ता
नु ह्यन्यत्रैवेन बहुधा उपचरति । तत्र पञ्चाप्रकृतस्फुटस्फुटैरस्ता
प्रकाशाने सत्वादिबै-वर्ता ज्ञानक्रियाशक्तिरुपा विस्मात्रप्रकृत्ये
ऽपि इहन्ताप्रकृती क्रियाशक्तितोयवर्षेव महामाया विद्येयशक्तिः,
प्राज्ञाप्रकृत्यविषयानि पशुप्रमाणानु मायाशक्तिः । ईश्वर
प्रत्यभिज्ञा ३।१।६ श्लोक की अधिनक-इत विवृति।

(३) 'मायावीत विरक्तत्व'।

'अमीव्यापितः शिवायैव स्वप्रकाशस्य ता'।

ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा के ३।१।२ श्लोक की टीका में उद्धृत।

(४) ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा, ३।१।१

घातम-संहारण होता है, इस सृजन-प्रलय में ही उमकी सीता है' । इसीलिए मारी मृत्ति उनका सीमा-स्पर्शन है । स्वच्छन्द-शंभ की शोभायुक्त हठ टीका के प्रारम्भ में प्रथम-स्तोत्र में विष्णु को कहा गया है 'प्रचरन्प्रकृत कस्मोत्तमवस्महरिकमये' बाणमयी शक्ति के कस्मोत्त के घन्वर से ही यह जगद्गुप्ती सहृषी बनी है इस शक्ति-कस्मोत्त के घन्वर बैठ कर जगद्-सहृषी को लेकर ही परमेश्वर केति या सीता करते हैं ।

(१) यद् सहासिद्यमन्तं शक्तिवर्धनं च सुप्रते ।

सप्तमर्षं प्राहृतं श्रेयं विनाशोन्वलिर्सेवतम् ॥

स्वच्छन्दमन्त्र (का०-सं०-४)

१ १२१६४-६५

पंचम अध्याय

पुराणादि में व्याख्यात ब्रह्मव-शक्तिस्तत्त्व

इसके बाद और भी-उ-माध्य-समकारि दार्शनिक संप्रदायों के मनी का विवेचन करने के पहले हम तंत्र-पुराण में विवेचित ब्रह्म-शक्तिवाक्य का विवेचन कर लेना चाहते हैं। इस विवेचन के अन्दर भी कुछ ऐतिहासिक विवेचन संभव नहीं है। ब्रह्म के तीर पर बहुत से पुराण संहिताएँ उपनिषद् और तन्त्र नाम के ग्रंथ हैं इनका रचनाकाल निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता है। इस विषय पर जो किञ्चित् वैज्ञानिक तरीका से विवेचन किया है उसमें कोई सामान्य एकता नहीं दिखाई पड़ती है। विस्मय धारि पंडितों ने किसी भी पुराण को ईसा की साठवीं शताब्दी के पहले का नहीं माना है बल्कि उन्होंने अधिकांश पुराणों को हमसी शतब्दी के बाद का मानते हैं। कुछ पुराण-उपनिषद् को भी तीर-चार-ती से अधिक पुराण नहीं मानते हैं। यह बात सत्य है कि पुराण-तंत्र नामक ग्रंथ प्रायुक्तिक काल में ही लिखे गये हैं। इसी धोर विरीन्द्र चोपर वसु बरीरुह पुराण के रचना-काल के बारे में इसका ही मत रखते हैं। बहुत से ब्रह्म और शैव (शाक्त भी हैं) धोर साधारण लोग-उपनिषद् हैं जिन्हें पंडितगण अधिकांश में बाद की रचना मानते हैं। ब्रह्म तंत्रों के बारे में भी यही बात जानू होती है। इस तरह के ग्रंथों के नाम-निर्दिष्ट करी बने जंगम में हम प्रवेश नहीं करना चाहते हमने कोई फलदा होने क बजाय हमारे प्रमय में जाने की संभावना ही धरिय है। अपनी धोर स हम देख सकते हैं कि दार्शनिक ब्रह्म-शक्तिवाक्य के अन्दर प्राचीनतम भीतग्रन्थ के प्रमाण आचार्य रामानुज ने अपने बीनाय में लिखे, गरुड ब्रह्म बरीरुह कई पुराणों में लौक ६६ निजामे हैं (अधिकांश में विष्णु-पुराण में) हमारा यौगीय ब्रह्मवचन ही एक प्रकार से पुराणों के प्रमाण पर ही प्रतिष्ठित है। रामानुजाचार्य का आधिर्भाव काल म्यारुवी शताब्दी है अठरुव विष्णु, गरुड ब्रह्म धारि पुराण हमारे पहले ही शतक के तीर पर प्रसिद्ध ही बुद्धे थे। रामानुजाचार्य के

साधिकादि के कम से कम तीन बार भी वर्ष पहिले रचित न होने पर ये पुराण उनके समय प्रामाणिक शास्त्र के तौर पर प्रसिद्ध होने ऐसा नहीं लगता है। अतएव रामानुजाचार्य द्वारा उद्धृत पुराण कम से कम साठवीं शताब्दी शताब्दी के रच भामुम होल हें। हाँ रामानुजाचार्य न भागवत पुराण का कहीं उल्लेख नहीं किया है इसलिये कोई-कोई भागवत को रामानुजाचार्य के बाद का प्रथ मानने हें मकिन यह भी हो सकता है कि भागवत द्वारा प्रचारित वैष्णव मत रामानुजाचार्य द्वारा प्रचारित वैष्णव मत का बिल्कुल परिवर्तक नहीं होने के कारण रामानुजाचार्य न इसका उल्लेख नहीं किया है। पुराणों के काल के बारे में विचार करते हुए श्री बंकिमचन्द्र न कहा है कि महाकवि कालिदास न अपन मेघदूत काव्य न मयूरपुष्पनोमिष गोपबेपथारी विष्णु का उल्लेख किया है। पुराणादि न पहले गोपबेपथारी विष्णु की प्रसिद्धि नहीं थी अतएव कालिदास का छठी शताब्दी का भी माना जाय तो छठी शताब्दी के पहले ही कुछ-कुछ वैष्णव पुराणों का प्रचलन और प्रसिद्धि भी इस बात को मानना पड़गा।

इस पुराणादि शास्त्रों में बलि विष्णु-राक्षस के बारे में विवरण न पढ़कर हम को भावपूर्ण लगते हें। पहली है विष्वक्ती और अनास्थान बाण और दूसरी है तत्त्व-विरहाम की बाण। पहली बाण में हम देखते हें कि विष्णु-राक्षस 'अग्नी या 'भी' के मंत्रों में जो प्राचीन मंत्रिष्ठ बचन या प्रसिद्धियाँ थी उन्हीं का अनेक स्थलों पर बलि-वस्त्रता के द्वारा पस्तकृत कर मिश्र-मिश्र अनास्थानों की रचना हुई है। दूसरी बाण का हम किसी विद्वान् वाचनिक तत्व की बाण नहीं कह सकते। उमम भी हम मिश्र-मिश्र प्रकार के तत्व और अनेकविध के विनय ही अनश्रित सम्मिश्र देखते हें। हम पहले विष्वक्ती और अनास्थान की बाण का अश्रित परिवर्तक बने फिर तत्त्व-विरहाम की बाण पर विचार करते। इस प्रक्रम में एक और बात का संक्षेप में उल्लेख करना चाहना हूँ। बाण में हम इस बात का मान्यता भी विनय ही प्रयोगों में अनेक स्थल और महर्षि के साथ अनुभव करेंगे। बाण यह है हमारे अन्दर एक प्रचलित विश्वास है कि अनेक वर्षों पहले कुछ वाचनिक तत्व के तौर पर ही अश्रितकृत हुआ है। यह वाचनिक तत्व अनेक के सम-अन्वय और विनयम आचार विचार प्रथा-अर्थि आदि से विनयक माला प्रकार की मौखिक कथाओं विवरणियों की अश्रितियों में अश्रितकृत हुआ उक्त है। मकिन कम

(१) इत्थ-अश्रित बंकिमचन्द्र।

(२) पुराण, अश्रित १३।

के इतिहास में इसकी उल्टी बात ही वायव्य घटिक होती है। सौंकिष्क संस्कार, धाकार-विचार प्रवा-नइति ही सामाधिक-जीवन में पहले प्रकट होती है। अर्थात्-विस्तृतजीव मनोपिगण इन सौंकिष्क उपादानों को लेकर ही उनकी सहायता से तत्त्व का महल बना करते हैं।

पुराण आदि शास्त्रों के धन्वर इस सौंकिष्क उपादान की ही प्रशानता है। वेद के विद्यालय जग-समाज के विश्वास अथि ध्यान-मनन को मही बहुधा घटिक परिमाण में प्रकट होये का सुघमसर भिमा है। अतएव कक्षावर्ती विज्ञानितपौ-उपादानों आदि को विस्तृत छोड़कर इसके धन्वर से किसी विमुक्त तत्त्व को ध्यान निकालने की चेष्टा को अर्थ प्रयास ही कहना होगा।

शासनिक दृष्टि में लक्ष्मी विष्णु से अतिप्र ह वे सक्रियमान् विष्णु की ही अक्षित मान हैं। लेकिन सौंकिष्क दृष्टि में विष्णु और लक्ष्मी पति पत्नी मान हैं। इसीलिये अिध-अक्षित का शासनिक तत्त्व कुछ भी क्यों न हो सौंकिष्क विश्वास में वे साफ ही पति-पत्नी हैं। सामारण जनता अपने समाज-बोध द्वारा ही जर्म-बोध का निर्माण करती है। इस समाजबोध द्वारा ही सभी अथह अक्षित और अक्षितमान् की पति-पत्नी के रूप में रूपता की जाती है। लेकिन वेवठापो के संबंध में यह पति-पत्नी-की समाज-बोध पहले का है या सक्रियमान्-अक्षित का तत्त्व-बोध इसे साफ-साफ नहीं बताया जा सकता। बहुधा बोना बोध एक दूसरे के पूरक होते हैं। समाज-बोध भी अर्थात्-तत्त्वबोध के द्वारा प्रभावित होता है, दूसरी और अर्थात्-तत्त्वबोध भी समाज-बोध के द्वारा विविध रूप से अभावित होता है।

५. (क) पुराणादि में लक्ष्मीसम्बन्धी कियवन्ती और उपाख्याय

पुराणों आदि में इस विष्णु के वर्णन में प्रायः सर्वत्र वेगते हैं कि वे सक्रियपति पौपति रमापति रूपसापति यीनाथ यीवान्त लक्ष्मीकान्त आदि हैं। लक्ष्मी भी विष्णुप्रिया या हरिप्रिया विष्णुवसोविलासिनी वैष्णवी मारायनी हैं। विष्णु 'लक्ष्मीपुत्रान्मुजमपुत्रतदेवदेव' 'लक्ष्मीपुत्र पद्मभुव' 'लक्ष्मीविलासाय' 'रामामाता-हृत्' हैं। पुराण आदि में लक्ष्मी

(१) पद्मपुराण (त्रियामोगतार) ११६८

(२) बही, ४१०३

(३) बही भूमिर्तक, १९१४

(४) पौपातापनी, ३९

के इस विष्णुपत्नीत्व की प्रगति के फलस्वरूप उन का विष्णु-शक्ति-रूपत्व मानों अनेक स्थानों पर डक गया है। इसीलिए बगह-जगह हम देखते हैं कि विष्णु जितने भी शीपति या सखीपति क्यों न हों जगद्-सृष्टि धारि प्रकृति या माया शक्ति के द्वारा ही होते हैं और प्रकृति या माया शक्ति से सखीरूपा आदिविष्णुशक्ति का सर्वत्र सम्बन्ध नहीं बिकामा गया है।

पुराणों में सखी की उत्पत्ति के बारे में अनेक उपाख्यान प्रकथित हैं उनमें दो उपाख्यान प्रथम मगते हैं मगता है कि ये दोनों उपाख्यात ही पहले एक दूसरे से स्वतन्त्र रूप से मड़े गये थे पुराणकारों ने सर्वत्र इन दोनों उपाख्यानों को जैसे जैसे एक कर दिया है। पहले उपाख्यान के अनुसार स्वायम्भुव मनु ने द्वाकाता शतरूपा देवी से विवाह किया। इस देवी के गर्भ से मनु के प्रियव्रत और उत्तमपाद नामक दो पुत्र और प्रभृति तथा साङ्गति नाम की दो कन्याएँ पैदा हुईं। इन प्रभृति से धारी की और प्रभृति से चौबीस कन्याएँ पैदा हुईं। इन चौबीस कन्याओं में—भद्रा लक्ष्मी पृथि सुष्टि मया क्रिया सुष्टि मग्ना मनु शान्ति मिष्टि और कौति इन तेरह बहन कन्याओं को ब्रह्म ने पत्नी का में स्वीकार किया। स्वाति सती सम्भृति स्मृति प्रीति कामा सम्पति धनमूया धर्मा स्वाहा और स्वधा इन प्यारह बहन-कन्याओं को मनु ब्रह्म मरीचि धीपिठ पुनस्त्य पुनः मनु धनि वशिष्ठ बह्नि और पितृगर्भों ने स्वाहा। इस ब्रह्म के औरत से सखी (ब्रह्मा) के गर्भ में रूप नामक पुत्र पैदा हुआ। विष्णुपुराण के बान्बाने अध्याय में हम देखते हैं कि भृगु-पत्नी स्वाति के गर्भ में बाना-विधाता नाम के दो पुत्र और सखी नामक कन्या पैदा हुईं इन भृगु-कन्या लक्ष्मी ने ही देवदेव नाचपण को पति रूप में बरत किया। इस प्रकार विचार पड़ रहा है कि लक्ष्मी या तो प्रभृति के गर्भ में बाना-कन्या या स्वाति के गर्भ से भृगु कन्या हैं। इन सारे बचनों से पुराणों में प्रस्तुत उदा है कि पति प्राचीन

(१) विष्णुपुराण १।७।१४-२६, पद्मपुराण सप्तविंश ३।१८३ धारि; मत्स्यपुराण २।२४-२६।

(२) विष्णुपुराण, १-८-१३; वायुपुराण, २८-१-३ ब्रह्माण्डपुराण, २८-१-३ कर्मपुराण पृथमाण, १३-१। वायुपुराण के मत से सखी के नाम से इन बहन का उल्लेख नामक दो पुत्र पैदा हुए। जो स्वयंभवाते हैं और जो पुण्यकर्मा ह और देवगण के विमान की दोतगण हैं व सखी इन सखी या दो बहो के मानसपुत्र हैं।

कास से मुनामी पड़ता है कि सबकी समुद्र-सूखा है, बीरास्त्रि से कमलासन पर उनका आधिपत्य हुआ है—तो फिर उनका देवकन्या या ऋषिकन्या होना कैसे सम्भव होता है? इस प्रश्न को देखने से लगता है कि समुद्र-संभन से बीरास्त्रि से कमलासना लक्ष्मी के आधिपत्य की किम्वदन्ती ही प्राचीनतर है। परन्तु काल में स्वयम्भुव मनु से मानव सृष्टि के प्रसंग में लक्ष्मी के सम्बन्ध में देव-ऋषि-वदित तथा उपाख्यान गढ़ उठा है। बाद में दोनों उपाख्यानों को बड़े धीमे-धीमे ढंग से जोड़ दिया गया है।

लक्ष्मी के बीरास्त्रि से आधिपत्य के सम्बन्ध में पुराणों में जो वर्णन मिलते हैं वे एक प्रकार से इस तरह हैं। शंकराचार्य में उत्तम दुर्वासा मुनि ने एक विद्याधरी से सत्यानन्दपुत्र की दिव्य मुबन्धित माता माँय श्री श्रीरदेवराज इन्द्र को उद्धार दिया। श्री श्री निवासमृता बहु माता इन्द्र द्वारा धरुहेतित हुई, दुर्वासा ने इन्द्र को धाप दिया कि उनका (इन्द्र का) वैशोक्य 'प्रतप्यलक्ष्मीक' होगा। इस प्रकार दुर्वासा के धाप से तीनों लोक की श्री या लक्ष्मी का विनाश या घन्तर्जन होने पर हस्तवीर्य हस्तवीर्य देवपण धरु द्वारा पराविठ होकर स्वयम्भुव हुए। पितामह प्रकृता को लेकर देवगण देवादिदेव विष्णु की धारण श्री विष्णु ने देवामुरी को समुद्र-संभन का उद्देश्य दिया उस समुद्र-संभन के कलस्वल्प ही—

तत् सद्गुणकामिस्ती विद्यातिफलने स्थिता ।

श्रीदेवी पयसस्तस्माद्भूमिपता वृत्तर्पका ॥

(विष्णुपुराण १।१।२२)

तब महर्षिगण ने श्रीमूक्त के द्वारा उनका स्तव किया विस्वावसु प्रमुख गन्धर्वदेव उनके सामने जाने सगे वृतात्पी आदि प्रमुख धन्तरासक नाभने लने गैवादि सरितार्थ देवी के स्नानार्थ या पशुषी विष्णु गण ने हेमराज लेकर सर्वलोकमहेश्वरी उम देवी का स्नान करा दिया श्रीरदेवराज ने पुर रूप धर कर धन्तानपंकरा माता श्री श्रीर स्वर्ग विस्वकर्मा ने देवी के धर्मों के भूषण बनाये। इस प्रकार स्नाता भूषण-भूमिपता श्रीर दिव्य मात्याम्बररुप हो कर उम देवी ने तब के सामने विष्णु के वृत्तस्वत पर धापय लिया।

समुद्र-संभन से लक्ष्मी के आधिपत्य के वर्णन के बाद पुराणों में कहा गया है कि भूवर्णनी कथा में उत्तम श्री (धरुवा महाश्वर में दया कन्या श्री) देवदानवी के धमृतसंभन ने फिर उत्तम हुई धरुर्ण लक्ष्मी का देवकन्यासक या ऋषिकन्यासक लक्ष्मी का पुनराधिपत्य है। इस प्रसंग

में विष्णुपुराण में कहा गया है कि जपत्स्वामी देवदेव अनार्दन जैसे बार बार माना प्रकार से प्रवृत्त होते हैं उनकी सहायिका श्री या लक्ष्मी देवी श्री वैया ही करती है। हरि जब धारित्य (वामन) हुए व लक्ष्मी ठहरे फिर लक्ष्मी से उत्पन्न हुई श्री जब भार्गव राम हुए ठहरे यह लक्ष्मी लक्ष्मी श्री राघव के लिये सीता कृष्णार्जुन में शक्तिशाली श्री दूरे दूरे प्रवृत्तों में भी ये विष्णु की सहायिनी रही है। ये देवत्व में देवदेहा श्री मनुष्यत्व में मानुषी बनकर विष्णु के देह के अनुरूप धारणतनु ग्रहण करती है।

नारदीय-पुराण ब्रह्मपुराण श्री कूर्मपुराण में लक्ष्मी श्री सरस्वती त्रिब-सुर्वा की कन्या है। ब्रह्मा में राज्यकालीन दुर्गा-सूत्रा के समय प्रसवती श्री जो प्रतिमा बनाई जाती है उसमें दुर्गा-मूर्ति के बाह्ये श्री बाई दुर्गा की वा कन्याओं तथा नातिक-कन्ये वा पुत्रों की मूर्तियाँ रखी हैं। ये दोनों कन्यायें जया-विजया नामसे परिचित हैं लक्ष्मी-सरस्वती के रूप में श्री परिचित हैं। देवी के बलिष्ठ श्री कन्यामूर्ति कमलवर्णा कमलामता श्री कमलहस्ता होती है बाई की मूर्ति श्वेतवर्णा वा मरामबाह्या श्री श्रीबाह्या होती है। बंगाल की साकेतेश्वरों में लक्ष्मी नातिक की स्त्री है। कभी-कभी लक्ष्मी की वरणा की स्त्री के रूप में भी कल्पना श्री जाती है। इसका कारण शायद यह है कि दुर्गासूत्रा में देवी के प्रथम प्रतीक लक्ष्मी को बहुधा समेय के वरणा में ही स्थापित किया जाता है। साधित्य हेतु इन लक्ष्मी को वरणा की स्त्री समझने की पालनी श्री जाती है। यह शम्भुश्री लक्ष्मीश्री श्री कोशामर लक्ष्मी सूत्रा में लक्ष्मी प्रतीक के रूप में पूजी जाती है शायद इसी प्रकार व लक्ष्मी फिर लक्ष्मी की पत्नी बनाई गई है। मार्कण्डेय-पुराण (अष्टादश श्री उन्नीस अध्याय) में लक्ष्मी दत्तात्रेय शक्ति की पत्नी है। धर्मश्रुत श्रावण देवता दत्तात्रेय श्री शरण में गये दत्तात्रेय की पत्नी लक्ष्मी के रूप पर मुग्ध होकर देव-मग उन्हें हर कर फिर पर उठाकर व गये लक्ष्मी के इस प्रकार से प्रत्येक पर स्थापित होने के कारण देवताओं की विजय हुई।

प्रथम जय में रूप देव लक्ष्मी है कि लक्ष्मी की प्राचीन मूर्ति श्री कल्पना के अन्तर लक्ष्मीश्री की प्रतिदि है। इन लक्ष्मीश्री की कल्पना साधा एतत् इम प्रकार है—मनुष्य के अन्तर एक विवर्णित लक्ष्मीश्री लक्ष्मी

१ विष्णु-पुराण, ११५ अध्याय। इनमें पुराणों में भी श्री लक्ष्मी कल्पना है।

कही है उनके दोनों घोर से वो हाथी सूत्रों से स्वर्ग-कृष्ण के बल से (अथवा केवल सूत्रों के बल से) उन्हें रहता रहे है। हम लोगों ने भीमूक्त में ही देखा है कि लक्ष्मी नामा प्रकार से कमल से सम्बन्धित है। यह भी या सरसी सृष्टिरूपिणी है। उसी वेशों में पद्म सूत्रकी धक्ति का प्रतीक नामा जाता है। इसीसिमे विष्णु के नामि-कर्मस में प्रजापति ब्रह्मा के अवस्थान की कल्पना की गई है। इससिमे लक्ष्मी सूत्र से ही पद्मा पद्मासना पद्मक्या या कमला कमलासना कमलासना है। इस कर्मस का उद्भव बल से होता है। क्या इसीसिमे लक्ष्मी क समुद्र में उद्भव की कल्पना की गई है? हमने भीमूक्त में ही देखा है कि लक्ष्मी पद्मा पद्मवर्णा पद्मस्मिता घोर 'भार्गा' है। इस पद्म घोर सागर से लक्ष्मी के सम्बन्ध के कारण ही पत्थरों कास में उद्घा 'पद्मिनी' के पट में 'सागर' के पर में (अर्थात् सागर के घोरस घोर पद्मिनी के पर्य में) पैदा हुई थी। विष्णुपुराण में देखते है कि समुद्रोद्घाता पद्मासना लक्ष्मी को विष्णुसंगण घा कर हेमकुज से स्नान करा रहे है। क्या इसी प्रकार से समुद्र क अन्दर पद्मस्मिता लक्ष्मी के साथ दोनों घोर पद्म की कल्पना गढ़ उठी थी? हाँ गजसहस्री का एक घोर रूप मिलता है वह घोर भी पुर्वोध्य है। इस प्रकार पद्म स्मिता लक्ष्मी एक हाथ से एक हाथी का पकड़ कर बात कर रही है घोर फिर उसे बमन करके निकाल रही है। यह कल्पना कीने उत्पन्न हुई इस बात को साफ-साफ न समझ पाने पर भी इसका प्राचीन धाधार है इस बात का भीमूक्त के 'पुष्करिणी' छन्द की ध्याक्या क प्रसंग में हमने उल्लेख किया है। किनी-किनी ने इस कल्पना के अन्दर बीड उपाख्यान में बुद्धदेव के मातृगर्भ में धाचित्राव से पहले बुद्ध की माता मायादेवी का हाथी नियमने घोर बमन करने के सपने का प्रभाव देना है। लेकिन इस प्रसंग में एक घोर पीरागिक तथ्य सधनीय है। पुराणों में

१ वेदिवे—तस्मिन् पद्मे भवन्ती सामान् धीरित्यमव हि।

लक्ष्म्यास्तव तदा पत्नी नृत्तिमत्या न संशय ॥

ब्रह्माण्ड-पुराण ३६।८

२ श्रीकृष्णगीर्ण १

३ सोतहरीं शतगरी के मयतकाम्य के प्रसिद्ध कवि मुकुन्दराम न सपने चण्डी-संपन्न काम्य के यत्पति के उपाख्यान में ब्रित कमलतलवारिणी का वर्णन किया है। उतमें भी लक्ष्मी का इसी हस्तिजातकारिणी घोर हस्तिबमनकारिणी नृत्ति का परिचय मिलता है।

बटित घोर अथवा घोर को समान बनानेवाली विष्णुविष्णुप्रभा के बचन में स्वान-स्वान पर कहा गया है कि यह देवी संवेदानुर-अनुप्य घारे संतार का प्राप्त करती है और फिर सृजन करती है। क्या यही सवनीदेवी के पत्र मराज घोर अ-मोक्ष का तात्पर्य है? क्या हाथी जैसा विद्यालय पशु विद्या विद्वान-ग्रहणाद्य का ही प्रतीक मान है? 'सन्वसार' धारि ग्रन्थों में हम सवनी का जो ध्यामन्त्र पाते हैं, वही सवनी के दोनों घोर हेमकुम्भपायी करिग्रम का उल्लेख देते हैं।

मित-हरिबंग में देखते हैं कि भी घी घोर सप्तति मित्य इप्य में विद्यामान है। विष्णु-पुराण में विष्णुशक्ति महामाया भूति सप्तति कीति शान्ति घी पुष्पी कृति लज्जा पुष्टि, ज्या कही गई है। हमारे पुराणों में भी बहुतेरी प्रकार की शक्तियों का उल्लेख कियायी पड़ता है। शक्ति के इस प्रकार के बहुतेरे उल्लेखों की बात हमने पञ्चरात्र ग्रन्थों में देनी है। सन्वसार में ईश्वरी कृपा सवनी धारि सवनी के बाह्य नाम घोर स्कन्दपुराण में सवनी पद्यासमा पया कृपा भी भूति धमा धारि सत्सह नामों का उल्लेख पाते हैं। विष्णु की भी घोर भू इत ही शक्तियों या भी भू घोर लीला इन तीन शक्तियों का उल्लेख भी बहुत मिलता है। ब्रह्म-पुराण में सवनी घोर सप्तहमी में काफी कसह दिखाई पड़ता है। ब्रह्मवैवर्त भास्करय स्कन्द धारि पुराणों में सवनी के त्रिभुविय व्यक्ति कार्य घोर स्वान का विचार विशेष है।

पहल ही कहा है कि पुराणों के अन्तर सवनी के कई बचन हैं जो शान्त ही किसी तत्त्व पर आधारित नहीं हैं उनमें सवनी के सम्बन्ध में

(१) सवनीय अगन् सवनी संवेदानुरमानुषम् ।

मौहयामि द्विजधेष्ठा प्रतामि विसृजामि च ॥

कर्म-पुराण (पूर्व भाग) १।३३

(२) बरबतों बाल के बहीर धारि की प्रहसिष्य-अविता न इत भाव का ध्यानास मिलता है।

(३) कस्या काञ्चन-अप्रिया हिमतिरिप्रत्यंरचतुभिर्मर्त्रै-

हेस्तौनृजित्तहिरन्वदानुनघटं रातिधयमालां भियम । इत्यादि ।

तुगातीय—आविष्यप्रतिपत्रभां हिमनिभैस्तुं परचतुभिर्मर्त्रै

हेस्तप्राहितरत्नकुम्भतिलैरतिधयमालां सदा । इत्यादि ।

(४) १०१७३ (बैद्यवासी) धामकस्याम में उद्धृत ।

(५) २११।८१

जनता में जो साधारण विश्वास है, उसी का पूर्ण ढंग से वर्धन किया गया है। ब्रह्म-वैवर्त-पुराण में कहा गया है कि मूल प्रकृति के धन्द्वर जो द्वितीय सक्ति है जो सुखसरस्व-स्वरूपा है वही परमात्मा विष्णु की लक्ष्मी है। वे सम्पत्ति-स्वरूप हैं। सारी सम्पदाओं की प्रसिद्धात्री देवता हैं। वे मनो-हारिणी बाल्या बाल्या मुषीला नगलदायिनी लोत मोह, काम क्रोध धर्षकार प्रादि दोषों से रहित हैं। वे पतिभक्त्या की धनुरक्त्या पतिव्रता धादिभता भयवद्-प्राणतुल्या प्रेमपात्री धीर प्रियमापित्री हैं। वे धस्व-स्वरूपा हैं धृताय वीर्यन की वीर्यन-रूपिणी हैं मह्यलक्ष्मी हैं। वह वैकुण्ठ में विष्णु-सेवापरायणा स्वर्ग में स्वव्रतक्ष्मी राजभवन में राज्यलक्ष्मी मर्त्य में गृहलक्ष्मी हैं। वे सभी प्राणिमों धीर वस्तुमों की धोनास्वरूपा हैं नृपति की प्रभास्वरूपा बणिक की धादिभ्यस्वरूपा चंचल की चंचला हैं। विष्णु-पुराण के एक स्तव पर लक्ष्मी का वर्धन स्पष्ट तत्त्वमूढक न होने पर भी गंभीर भाव धोतक है। वहाँ कहा गया है कि विष्णु धी वह धनुगामिनी धी जगन्माता धीर नित्या है विष्णु धीसे सर्वगत है वे भी उसी तरह हैं। विष्णु धर्म हैं वे बागी हैं। हरि नय (उपशेध) है वे मीति हैं। विष्णु कोप है, वे बुद्धि हैं। विष्णु धर्म हैं वे सत्किया हैं। विष्णु स्रष्टा है, वे सृष्टि हैं धी मूमि हैं हरि मूढर हैं मगवान् लक्ष्मण हैं लक्ष्मी धास्वती तुष्टि हैं। धी दण्डा है मयवान् काम है विष्णु पत्र हैं धी दक्षिणा है प्राध-प्राकृति से देवी हैं जनार्दन पुरोडास हैं। लक्ष्मी पलीलासा है मनुमूढन प्रायुषा है लक्ष्मी चिति है (ईदों की वनी यज्ञ की देवी) हरि मूय है धी इय्या है मयवान् कृपा है। मयवान् सामस्वरूपी है कमलासया उद्गीति है लक्ष्मी स्वाहा है बानुदेव जगन्नाथ हुठाशन है। मयवान् कीर्तिमकर है भूति पीरी है वैश्व सुर्व है कमलासया जमकी प्रसा है। विष्णु विगुनन है पया धास्वत तुष्टिवा स्वधा है धी धी है धीर विष्णु धतिविस्तर धधकाय है। धीधर धराक है धी उन्ही की धनपायिनी काम्ति है। लक्ष्मी धृति जयध्वेष्टा है, हरि सर्वत्र जानेधानी बानु है। माकिन्ध जलधि है धी उनधी तटभूमि है। लक्ष्मी इन्द्राधी है मयमूढन बेवेन्द्र है। लक्ष्मी ज्योत्सना है लक्ष्मण हरि प्रदीप है जयन्माता धी मता है विष्णु द्रुम है। धी विधावरी है जग्मदापर देव दिवग है

(१) तुलसीय—लक्ष्मीस्वास्वधानाम् ।

द्वन्द्वपुराण पूर्व भाग १२।११२ (धंगवानी)

(२) ब्रह्मवैवर्त प्रकृतिलक्षण, १।२।३ (धंगवानी)

बिष्णु बट्यार वर हैं पद्मनाभया बन्धु हैं । भगवान् नर हैं धीन ही ह
 पुण्डरीकाक्ष मन्त्र हैं कमलाभया उनकी पत्नी हैं । लक्ष्मी तुष्णा हैं
 नाटयण सोन हैं लक्ष्मी पति हैं गोविन्द राम हैं । पद्मना भक्ति
 कहने की वस्तु नहीं संक्षेप में कहा जाय ता देव तिर्यक् मनुष्य धारि
 में भयवान् हरि पुर्य हैं लक्ष्मी स्त्री हैं ।

(ख) तार्किक दृष्टि से पुराण-वर्णित बिष्णुशक्ति और बिष्णुमाया

तत्त्व की दृष्टि से बिचार किया जाय तो सभी पुराणों में ईश्वरवाद
 की एक समन्वय-दृष्टि दिखाई पड़ती है । इस समन्वय-दृष्टि के समन्वय
 पुराणों में सभी परस्पर विरोधी उपाख्यानों और मनों के अन्तर भयद्
 तत्त्व के समन्वय में एक सामान्य एकता दिखाई पड़ती है । हाँ यहाँ हम
 जो समन्वय-दृष्टि देखते हैं उसमें स्पष्ट दार्शनिक-बोध की अपेक्षा
 साधारण सीमा में प्रवर्तित एक साधारण समबोध का प्राबल्य दिखाई
 पड़ता है । लेकिन भारतीय परममन के इतिहास में भगवद्-तत्त्व के समन्वय
 बाद का एक विशेष परिणत रूप हम श्रीमद्भगवद्गीता में पाते हैं ।
 गीता में जिस पुरुषोत्तमवाद का परिचय मिलता है उसी पुरुषोत्तमवाद
 की माना प्रकार की परिष्कृत मानो हम पुराणादि शास्त्रों में पाते हैं ।
 अपने विचचन के अनुसार हम तत्त्व की दृष्टि में पूर्व विवेचित पञ्चरात्रोक्त
 बामुदेव-तत्त्व काश्मीर-शैव शंकोरत परम शिव-तत्त्व पुराण आदि में विवे
 चित भगवद्-तत्त्व और गीता में विवेचित पुरुषोत्तम तत्त्व के अन्तर कोई
 मौलिक पारङ्ग नहीं पाते हैं । गीता या और किसी विशेष उपा में ही
 यह मत्र पुराणादि में कीन गया है ऐसी बात हम नहीं कहेंगे हमें मगता
 है कि यह एक विशेष भारतीय दृष्टि है । भिन्न-भिन्न शास्त्रों में भिन्न
 भिन्न दृष्टिकाओं के अन्तर से यह दृष्टि हुआ है ।

गीता में कहा गया यह पुरुषोत्तम-तत्त्व क्या है ? 'धर' और 'धर'
 से दोनों पुरुष ही ब्रह्म के दो रूप हैं तन्म मार्ग मूढ सभी धर हैं
 और परिष्कृतहीन ब्रह्म्य शैतन्य पुरुष ही धर हैं । जो पुरुषोत्तम

(१) १।५।१३-१२

(२) गीता अज्ञानरत वाही एक रूप है या नहीं इस विषय में बहूतरे
 परिष्कृतों व सगृह प्रवृत्त किया है । बहूतों की कहना है कि बहूत बाद में
 इसे मयाभारत में जोड़ा गया है । इस प्रकार के मत धरत सत्य भी हों
 तो गीता प्रवर्तित धरतह पुराणों से प्राचीनतर है इसमें शायद किसी
 की सन्देह नहीं होगा ।

परमात्मा है—जो अखण्ड ईश्वर होकर तीनों लोक में प्रवेश करके तीनों लोकों का सरकार कर रहे है वे इस शर और प्रसर दोनों से ऊपर है, दोनों ही से अलग है। वे शर से परे है प्रसर से उत्तम है, इसीलिये साक और वेद में उन्हें 'पुण्योत्तम' कहा गया है। शर और प्रसर सब कुछ उन्हीं में विभूत है और सब को विभूत करके भी वे सबसे परे अवस्थान कर रहे हैं। इसलिये यह पुण्योत्तम ईश्वर प्रकृति से परे है (यो बुद्धे परतस्तु स) सख रज तम सावि बुध उन्हीं से उत्पन्न होते हैं लेकिन वे उनके अन्दर नहीं हैं। वे गुण-य होकर भी समाधीत है। सारा विश्वब्रह्माण्ड उनसे उत्पन्न हुआ है और उन्हीं की शक्ति में विभूत है अखण्ड भूति में वे साक विरज में ध्यात है लेकिन उनके अन्दर धारे भूतों का अवस्थान होने पर भी वे किसी के अन्दर नहीं है। यह त्रिगुणात्मिका प्रकृति उनकी अपनी ही प्रकृति है (प्रकृति स्वाम बट्म्य)—उसी में पुरुष के रूप में अविच्छिन्न करके वे सब कुछ का सृजन करते हैं उन्हीं की अखण्डता में प्रकृति सब कुछ प्रसन्न करती है, यही अणु के परिवर्तन का कारण है। यह महद्ब्रह्म-प्रकृति ही योगि है उन्हीं में वे समाधान करने हैं इसीके फलस्वरूप सब कुछ की उत्पत्ति होती है। यह बुधमयी प्रकृति ही उनकी मायाशक्ति है यह माया भी ईवी माया है, पुण्योत्तम की ही आभिजा माया है अपनी माया शक्ति का ही अवलम्बन करके वे अपने को जगदाकार में परिवर्तित करते हैं।

पुराणार्थ में हम समाधीत प्रकृति के ऊपर अवस्थित परम देवता का ही माना प्रकार से उल्लेख पाठ है। स्वर्णपावत्या में वे अधिकार जिन परमात्मा सम्बन्ध है वे माया या प्रकृति के दूसरे (उस) पार अवस्थित है। लेकिन वे उस पार अवस्थित होन पर भी जो कुछ हुआ है 'इह' रूप में जो कुछ परिदृश्यमान है और जो कुछ अविद्यत् है—जो कुछ कर और प्रसर है—जो कुछ है और नहीं है—यह सब कुछ वे ही हैं। जिनमें अणु प्रविष्टित है मयज अणु के द्वारा जिन्हें देगा नहीं जा सकता है, अपना माया-आप्त फैलाकर जो ब्रह्मादिमन्त्र तक विरज में

(१) गीता १५।१९—१८

(२) गीता १।४२, ७।१२

(३) विष्णुपुराण १।२।१। (४) मत्स्यपुराण (पंचानन तर्कालय सम्पादित) १४४।२७—२८; १६७।५—६

ध्यात है वे ही नाशयन पुरण हैं । ममूत्र के जल में सहर्षों की भाँति जिनमें घनन्त मूत्र उत्पन्न होने हैं और फिर जिनके घन्तर मज लोड हो जाते हैं वही भयवान् बामुदेव हैं ।

यह भगवान् पुरपोतम नित्यशक्तियुक्त हैं । यह शक्ति साधारणतः दो रूपों में कीर्तित होनी है । एक पुनामया स्वरूप-शक्ति वे रूप में और दूसरी गुणामया शक्ति के रूप में । जो शक्ति शानी एवं मन के परे और मयाशर है विशेषनहीना है केवम मानियों के द्वारा ही परिच्छेपा है, वही दूसरी पुरपोतम की स्वरूपमूला परशक्ति है और सर्वमूर्तों में जो पुनामया शक्ति है वही अपरा शक्ति है । यह परशक्ति युक्त ब्रह्म ही ममूर्त अक्षर-ब्रह्म है और पुनामया अपरा शक्ति के साथ जगत् ब्रह्माण्ड के रूप में मूर्त ओ रूप है वही क्षर-ब्रह्म है । एकदेशस्थित शक्ति की ज्योति जैसे विस्तारिणी हाती है उसी तरह ब्रह्म अपनी इस पुनामया विस्तारिणी शक्ति के द्वारा जगत्-रूप में परिणत हैं । शक्ति से घासप्रता के कारण या दूरी के कारण जैसे ज्योति में बहुत्व या स्वल्पत्वमय बहुनेरे प्रकार के भेद होते हैं उसी प्रकार पुरपोतम से साक्षिण्य या दूरत्व के कारण इस शक्ति के घन्तर भी बहुनेरे प्रकार के भेद दिखाई पड़ते हैं । विमुक्त विस्तारिणी प्रधानमूला विष्णु-शक्ति के घन्तर मजबूती केवनामया विष्णु उसी प्रकार से प्रकल्पान करते हैं जिस प्रकार से सचड़ी में घाय या तिल में तेल वर्तमान रहता है । सर्वमूर्तों के घन्तर घात्ममूला जो विष्णु शक्ति है उसी के द्वारा ही पुरण और प्रकृति दोनों (निषम्यनिषम्यभाष के) संययधर्मों बन कर रहते हैं और सृष्टि से बहुत यह विष्णु-शक्ति ही शोभप्रारणमूला होकर परस्पर-जीवित पुरण-प्रकृति के घन्तर पुनक भाव

(१) जलस्य-पुराण २४४।१६, २६ (२) वही २४३।२३ (३) विष्णुपुराण, १।१६।१०६-७७

(४) हे करे ब्रह्मणस्तस्य मून बामुतमव च ।
 लघातरस्वहने ते सर्वभूतव्यवस्थिने ॥
 घन्तर तन् पर ब्रह्म क्षरं सचमिदं जगत् ।
 एकदेशस्थितस्यान्यज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा ॥
 परस्य ब्रह्मण्य-शक्तिस्तदतदतिथं जगत् ।
 तत्राप्यामन्नुत्तरेण बहुत्वत्वस्वतामय ॥ १।२।२४४-२५

का कारण होती है। वायु जैसे जलकणमय तैल्य कारण करती है, मगर उससे मित नहीं जाती वही प्रकार विष्णु की जगत्-शक्ति प्रदान-गुरुपात्मिका होकर भी प्रदान-गुरुत्व से कमी नहीं मिलती है। इस पर विष्णु-शक्ति का शासन करके ही वेदशासन अपने अपने कामों में ममते है। इस पर-शक्ति के रूप में विष्णु स्वयं ही मूल-शक्ति है। विष्णु पुरुष में प्रत्यक्ष इस तीन प्रकार की शक्ति की बात कही गई है, पहली है पर-शक्ति दूसरी है क्षेत्रज्ञात्म्या अपरा शक्ति धीर वीर्य है कर्म संज्ञा प्रविष्टा शक्ति। क्षेत्रज्ञात्म्या शक्ति ही बीजभूता शक्ति है। कर्म-संज्ञा प्रविष्टा शक्ति के प्रभाव से यह क्षेत्रज्ञा शक्ति संसार में प्रविलताप भोगती है धीर इस प्रविष्टा के संस्पर्श से ही यह क्षेत्रज्ञा शक्ति सर्वमूर्तों के अन्दर तात्पर्य भाव से भवित्त हुआ करती है। ब्रह्म का जो अमूर्त रूप है—जिसे ज्ञानी लोग विशुद्ध साम्राज्य कहते हैं—उसके अन्दर ही सारी शक्तियों की मूलशक्ति निहित है—यह मूलभूता शक्ति ही पर-शक्ति है। इस विष्णुशक्ति को ज्ञाहिनी सचिनी धीर शक्ति इन भागों में बाँटा गया है इसके बारे में विठ्ठल विवेचन बाद में किया जायगा।

(१) तु० कमपुराण (पूर्वभाष) —

प्रकृतं पुनर्बर्षप्रविष्ट्यामु महेश्वर ।

सोममाभात सोमन परेक परमेस्वर ॥

यथा मदी मन्त्रश्रीणां यथा वा मायवी प्रियत ।

अनुप्रविष्ट सोमाय तत्राती सोपमूर्तिवत् ॥ ४।११-१४

मार्कण्डेयपुराण ४।११-१ इति श्री भो वही इति ॥

(२) विष्णुपुराण २।७।२०-४२ तुलनीय—अस्त्यपुराण सुविष्टं चतुर्ब्रह्मणाम् ।

(३) विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाद्या तत्रावरा ।

प्रविष्टा कर्मसंज्ञाया तुलीया शक्तिरिच्छते ॥ इत्यादि ।

१-७-११ से ।

(४) ज्ञाहिनी सचिनी शक्ति स्वयंका सर्वसत्त्वनी । विष्णुपुराण

१-१२-११

तुलनीय—ज्ञाहिनी स्वयं शक्ति ता स्वयंका तद्वाहिनी ।

पद्मपुराण, सुविष्टं, ४-१२४

पुराणदि में देखते हैं कि पुरुष और प्रकृति दोनों ही विष्णु-शक्ति के अन्तर्गत हैं । प्रकृति को पुराणों में भिन्न-भिन्न प्रकार से लिया गया है । यही-यही प्रकृति ही पराशक्ति या धाया शक्ति है । विष्णु-पुराण में विष्णु की परा शक्ति को मूल-प्रकृति कहा गया है । ब्रह्मसंहितापुराण के प्रकृति-शब्द के प्रथम अर्थ में कहा गया है—'प्र' शब्द प्रकृष्टवाचक है 'कृति' शब्द सृष्टिवाचक है । सृष्टि में (अर्थात् सृष्टि के मामले में) जो प्रकृत्य है वही 'प्रकृति' है । सृष्टि में 'प्र' शब्द प्रकृष्टसत्त्ववाचक है 'कृ' शब्द रजोगुणवाचक है और 'ति' शब्द तमागुणवाचक है जो त्रिगुणात्मस्वरूपा है (ब्रह्मा विष्णु, शिव ही ये तीनों गुण हैं) सर्वशक्ति युक्ता है और सृष्टि के कारण से प्रधान है वही प्रकृति है । अथवा 'प्र' प्रथम वाचक है 'कृति' सृष्टिवाचक है आ सृष्टि की धाया है वही प्रकृति है । प्रधान पुरुष परमात्मा ने योग के द्वारा अपने को दो भागों में विभक्त किया । उनके एक का बाह्यता नाम पुरुष हुआ । बायीं प्रकृतिस्वरूप हुआ । यह प्रकृति ब्रह्म-स्वरूपा मायामयी नित्या और सनातनी है अक्षय की बाह्यशक्ति की भाँति वही धाया रहता है, प्रकृति भी वही विराजती है । यह धायाशक्तिस्वरूपा मूल-प्रकृति सृष्टि-कार्य के लिए पाँच भागों में विभक्त हुई । पुर्ण हुई प्रकृति का पहला रूप दूगरी लक्ष्मी तीसरी शक्ति हुई लक्ष्मी चौथी शक्ति पाँचवीं राधा ।

पुराणदि में विष्णु की परा शक्ति को हम तरह-तरीके स्वरूपों पर प्रकृति या मूल-प्रकृति कहा जाने पर भी साधारण प्रकृति को विष्णु की परा शक्ति माना गया है । हम लोग जिस तरह पञ्चरात्र में विष्णु की स्वरूपभूता या ममदायिनी परा शक्ति और मुनादिका मायाशक्ति प्रकृति की बात देना पाए हैं कारभोर-शैवदर्शन में त्रिम प्रकार

(१) विष्णुपुराण, १—१७—३ ; कूर्मपुराण (उपरिभाग) ४—२६

(२) प्रकृष्टवाचकः शब्द कृतिश्च सृष्टिवाचकः ।

सृष्टौ प्रकृत्या वा वही प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥

गुणे प्रकृष्टसत्त्वे च प्रकृत्यो वत से धनो ।

अथय रजसि कृत्स्न तिगुणस्तमसि स्थन ॥

त्रिगुणात्मस्वरूपा वा सर्वशक्तिप्रयुक्ता ।

प्रधानं सृष्टिकारके प्रकृतिस्तत्र कथ्यते ॥

प्रथम वर्तने प्राञ्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः ।

सृष्टराधा च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥ (अथवाणी) ।

समवायिनी शक्ति धीर परिग्रहा शक्ति का मेद देह घाए हैं पुराणों में एक प्रकार से शक्ति के उसी मेद को उचित होते देखते हैं। सृष्टि प्रकरण के वर्णन के प्रसंग में प्रकृति का बिटना उल्लेख देखते हैं वहाँ सांख्य के चौबीस तत्त्वों को ही स्पान मिला है लेकिन सांख्य की भाँति प्रकृति यहाँ स्वतंत्र नहीं है प्रकृति यहाँ भगवान् बिष्णु की ही प्राकृत-शक्ति मान है। इस प्राकृत-शक्ति से भगवान् का कोई सीधा सम्बन्ध न होने के कारण भगवान् को सर्वत्र ही 'प्रकृति के परे' कहा गया है। वे अपने अन्दर अपने आप 'केवलानुभवानन्द-स्वरूप' में विराजमान हैं। अपनी प्रकृति के द्वारा त्रिगुणात्मक सभी 'इदं-पदार्थों' की व सृष्टि करके उसके भीतर अप्रविष्ट होकर भी प्रविष्ट रूप में परिभाषित होते हैं। इस प्रकृति के घटने से जो विश्व-परिणाम है, वह मूलतः वही बिष्णु-परिणाम ही है। इनीलिए बिष्णु-पुराण में ध्रुव द्वारा बिष्णु का स्तन देखते हैं—एतस्य भ्रुव एक बीज के अन्दर बीजे एक विष्टत् स्वप्नोद्य बुध निहित रज्ज्वा है, संमम काल में (सर्वान् बिष्णु के घात-संहरणकाल में) अस्मिन् बिम्ब मी उसी तरह बीजमूठ बिष्णु में ही स्थितिवत् रज्ज्वा

(१) सृष्ट्यं सृष्टमोऽस्मिन्नप्यापो प्रबान्ध परतः पुमान् । बिष्णुपुराण

१—१२—२४

अनादिरहमा पुंस्यो निर्गुणः प्रकृतो परः ।

प्रथमपुत्राना स्वर्गम्योतिविह्वं येन समन्वितम् ॥

स एव प्रकृतिः कुरुमां इवीं गुणमयीं बिष्णुः ।

पबुध्दप्यैशोपपत्तामभ्यपद्यत जीवजा ॥ भागवतपुराण अंगवासी

३—२१—(३—४)

हरिर्हि निर्गुणः साक्षात् पुंस्यः प्रकृतो परः ।

स सर्वद्वेषुपहृष्टा तं भजन् निर्गुणो भवेत् ॥ ब्रह्म. १०—८४—२

(२) चिकितोऽति भवान् साध्यात् पुंस्यो प्रकृतो परः ।

केवलानुभवानन्द-स्वरूपः सर्वबुद्धिपुङ्गवः ॥

ए एव स्वप्रकृत्यैवं तुद्बार्धे त्रिपुण्ड्रमहम् ।

तदनु तर्हं दूत्रकियः प्रकियः इव भाष्यते । १०—१—(१३—१४)

(३) बिष्णुपुराण २—७—३६

गुप्तनीय—सुमितरपीऽनमो वायुः तं मनो बद्धिरव च ।

भूतादिरादिप्रकृतिर्यस्य ह्यं नतोऽसि तम् ॥ श्री

१—१२—२३

कृष्ण का सृजन धीरे धीरे अपने अन्तर ही सब का संहरण कर रहे हैं ।^१ निर्गुण ईश्वर के जो सत्त्व रज तम आदि गुणधर्म माने जाते हैं, वे मात्रा के द्वारा ही होते हैं ।^१

यू माया को बिन्दु की प्राकृत शक्ति कह कर वर्णन किये जाने पर भी माया और प्रकृति को ब्रह्मकृष्ण एक समझना उचित नहीं होगा प्रकृति मानो बहुत कृष्ण मायाशक्ति का एक विशेष विधात्मक रूप है ।^१ तो पुराणों के अनुसार माया का स्वरूप क्या है ? भागवत-पुराण में इस माया को एक मुखर व्याख्या मिलती है । वहाँ कहा गया है—
‘धर्म के बिना जो प्रतीत होता है किन्तु आत्मा में जो प्रतीत नहीं होता है (अर्थात् सत् होने पर भी जिसके परमार्थ की कोई प्रतीति नहीं है) सही को मेरी अपनी माया समझना जैसे द्विचन्द्रादि की प्रतीति घबरा जैसे तम (जो रहने पर भी कभी धमिम्यक्ति नहीं पाता है) । तो माया हुई ब्रह्मसृजनव्यापिनी भ्रमशक्ति । लेकिन ब्रह्मसृजन ने इसे भ्रम मात्र न मान ‘विभास-विभ्रम’ माना है विभास के लिए ही भीसामय भ्रमवान् ने स्वेच्छा से अपनी सर्वव्यापी शक्त पर एक सत्ता में बहु के प्रतिस्व का प्रतिभासित किया । वह एक के अन्तर बहु का प्रतिस्व वैकारिक मात्र है, बासक जैसे मृत्युत्पत्ता की अनाद्य समझते हैं ।^१ तत्त्वबुद्धि मिलने पर

(१) भागवतपुराण, २।१।४—३

(२) वही २।१।१३ तुलनीय, पद्मपुराण उत्तरखंड—

तथा अकृत्यमयी करोति भ्रमवन् सदा ।

श्रीशार्ङ्ग इवैवेन लुप्ता माया जयामयी ॥

अविद्या प्रकृतिर्माया कृण्वत्यमयी सदा ।

सर्वास्त्विति-मयानां सा हेतुमूला तमजानी ॥

योपनिषद् महाभाष्या प्रकृतिरिहपुनान्विता ।

अवस्तता च प्रबालं च बिन्दोर्लौलाविकारिणः ॥२२७।११-२३

(३) तुलनीय—सतो मायास्यो विविधार्थस्यकरानिवायी । प्रकृतेः च
माया-अभाविपार्थं विविधार्थस्यकरत्वादेव ।

—रामानुज का धीमत्पद, १।१।१

(४) अतैर्व्यं सत् प्रतीयत न प्रतीयत चक्षयति ।

तद्विद्यत्प्रत्ययो मायां यथा भसतो यथा तम । २।१।३३

(५) मृत्युत्पत्तां यथा बाला मयन्त उदवापयन् ।

एवं वैकारिकीं मायामयुक्तां बन्तु वसते ॥ १।१०३।११

दिखाई पड़ेगा कि एक से ही सब परिणत होते हैं और एक ही में सब समाहित होते हैं। कूर्म-पुराण में कहते हैं—“मे बिद्वन् नही हूँ लेकिन मुझ छोड़कर भी बिद्वन् का कोई अस्तित्व नहीं है। मे सारे निमित्त ही माया है वह माया मेरे द्वारा ही आभिता है। अनाद्यतनायमा यह माया यही अनादिनिश्चयता अक्षित है इसीलिए अस्मकत् से इस अस्त-प्रपञ्च का उद्भव होता है।” लेकिन यह अचिन्त्यज्ञानगोचर अक्षित भी प्राण की गर्भी की शक्ति ब्रह्म से ही बिद्वन् में पैसी है। बरहस्पत्य के १२२वें अध्याय में बोलते हैं पृथ्वी बिष्णु से पृष्ठ रही है—‘तुम्हापी माया में आत्मता चाहती हूँ।’ उत्तर में बिष्णु ने कहा—‘मेरी माया कोई भी नहीं जान सकता है। बादास जब बरसता है तो सब कुछ पानी से भर जाता है फिर वही स्वान अममूम्य हो जाते हैं, यही मेरी माया है। अत्रया एक पक्षबारे में बीरे-बीरे शीत होता रहता है दूसरे पक्षबारे में बीरे-बीरे गरुता रहता है, अमावस्या के दिन वह बीज ही नहीं पकता है, यही मेरी अत्या का तरक है। यह जो अल्पनाप पर मैं सोचिता हूँ उस समय भी अपनी अनाद्यतनायमा से मैं सब कुछ आरण किये रहता हूँ और सोता भी रहता हूँ। यह जो एकार्णवा मही की सृष्टि की है यह भी मेरी ही माया है और यह जो मैं अन्न पर अस्तमान कर रहा हूँ यह भी मेरी ही माया-शक्ति है।’

यह जो अथवान् की अचिन्त्य अस्त माया-शक्ति है लगता है, प्रकृति उसी का एक विशेष रूप या व्यापार बिद्यत है। स्वल्प-विश्रान्ति अक्षित करके जो है उसे नहीं बिद्याना और जो नहीं है उसे बिद्याना ही इनकी नीता-बिचिपता है। इस माया-शक्ति के द्वारा ही अथवान् की बिद्वन्-नीता बिचिप है। माया अक्षित अथवान् की ही आभिता होने के कारण उसके हाथों से अष्टकारा पाप के लिए एक पात्र उपाय है अथवान् का स्मरण करना। जीने पीठा में कहा गया है, ‘मायेव य प्रपचन्ते माया-

(१) मर्द्ध बिद्वन् न बिद्वन् चामृते बिद्वन्ते द्विजा ।

माया निमित्तनावास्तित ता अस्तपनि अयाभिता ॥

अनादिनिश्चयता अक्षितर्नाया अक्षिततामायया ॥

तन्निमित्तः प्रपञ्चो अयमायताज्जापते अन्न ॥

कूर्मपुराण (अपरिब्रज) ६१२-३

(२) बिद्वन्पुराण, १११२; अष्टपुराण, अष्टिर्षद, ३१२ वही श्लोक है।

(३) बरहस्पत्य (अथवासी) १२२(८—१०) ४४, ४८

मेवां तस्मिन् ते'—जो केवल मान भेदा ही भरोसा करता है इस माया का वही प्रतिष्ठापन कर सकता है। पुराणों में माना प्रकार से इस बात की पुनरावृत्ति दिखाई पड़ती है। इनमें अथवा भक्ति रहने पर—उनमें सारी भी स्थापित होने पर ही इस पुस्तक माया से उद्धार हो सकता है। विष्णु-पुराण में अदिति द्वारा विष्णु के स्तन में कहा गया है कि जो परमार्थ को नहीं जान सके हैं उनकी बुद्धि को जो अस्मिन् अत्यन्त मोहित कर सकती है—वह तुम्हारी ही माया है। अनात्मा का यह जो आत्म-विज्ञान है—बिनाके द्वारा भूढ़यन जैसे रहते हैं—उसका कारण भी तुम्हारी ही माया है। 'मे' भेदा—इस प्रकार के जितने मान मनुष्य के मन में उठते हैं, वह तुम्हारी उची अगम्यता माया की ही श्रेष्ठा से उठते हैं। जो अम परायण व्यक्ति तुम्हारी आराधना करते हैं केवल वे ही इस अस्मिन्माया से जान पाते हैं। गण्ड-पुराण में कहा गया है कि तृयादि से लेकर अतुरागन द्वारा तन् अतुर्बिभ भूतयन-सहित अतुर्बरा सारा संसार इसी विष्णुमाया में ही प्रसुप्त है। धामु-असाधु सभी तरह के लोग जो कुछ काम करते हैं उधे अमर मारयन को अस्मिन् कर सकें तो वे कर्म के द्वारा सिद्ध नहीं होते हैं—माया में बँधते नहीं हैं। कूर्म-पुराण में कहा गया है कि अनात्मा की जो आत्म-भूता पर अस्मिन् है वही 'विद्या' है। उनकी मायाअस्मिन् ही अपरअस्मिन् है—वही लोक-विमोहिनी अविद्या है। इस पर अस्मिन् विद्या के द्वारा ही वे अपनी माया का नाश करते हैं।

(१) इत्यादि राजेन मुत्तं स विष्णुबुद्ध
तमाम् राजन् मयि भक्तिरस्तु ते ।
दिष्ट्येषेबुद्धी धीर्मयि ते वृता यया
मायां मदीयां तरति स्म पुस्तकान् ॥

भास्वतपुराण, ४१२ १३२

(२) विष्णुपुराण, २१३ ११४-१६

(३) गण्डपुराण (अपराती) पूर्वखंड, २३५१६-७

(४) अहमेवहिं संहतां संशय्या परिपालकः ।

माया र्म मामिका अस्मिन्माया लोकविमोहिनी ॥

अमं च अरा अस्मिन्मायां ता विद्यति गीयते ।

नाशयामि तथा आपां योगिनीं बुद्धिं संश्रिता ॥

(अपरि-आय) ४१२-१६

तुलनीय, वही पूर्वमाय, १३६

पुण्यभारि में विष्णु-शक्ति भी या सब्सी ही अनेक प्रकार से विष्णु माया के तौर पर कौतिल है। कूर्म-पुराण में (पूर्वमाय प्रथम अध्याय) जब नाटयज-वस्त्रमा भी धारिर्भूत हुई तब पुण्योत्तम विष्णु ने उन्हें ग्रहण किया। तब उस विद्याभासी देवी को देखकर मारुद आदि महर्षियों ने विष्णु से उनका परिचय पूछा। तब विष्णु ने कहा "ये बही परमा शक्ति है ये मम्मयी ब्रह्मरूपिणी हैं ये मेरी माया है—मेरी प्रिया है—प्रसन्ना है—इन्ही के द्वारा ही यह संसार विद्युत है। हे द्विजश्रेष्ठमन इन्ही के द्वारा ही मैं सत्त्वानुर-मनुष्य सारे संसार को मोहाविष्ट करता हूँ प्राप्त करता हूँ—फिर मृज्ज करता हूँ। मूर्तों की उत्पत्ति और प्रलय गति और प्रपत्ति यह सब कुछ और अपनी धारमा को जो विद्या के द्वारा देखते हैं वे ही इनसे उदार पा सकते हैं। इन्ही के ग्रंथ मात्र का प्रकल्पन करके प्राचीन काम में ब्रह्मा धिवादि देवगण शक्तिमन्त्र हुए थे—ये ही मेरी सर्वशक्ति हैं। वे ही सर्वजन्य प्रभूति त्रिगुणात्मिका प्रकृति हैं पहले अन्य कल्प में ये पद्मवातिनी थी के तौर पर मुझसे जन्मी थी। वे चतुर्भुजा शंकरकण्ठग्रहस्ता मास्यधारिणी शोडशस्यप्रतीकाया सभी देहधारियों की मोहिनी हैं। कूर्म-पुराण (पूर्वमाय) के द्वितीय अध्याय

(१) पुनर्जीव—केनोपनिषद् चतुर्थ बंध और साकंशेय बंधी।

(२) इयं ता वरमा शक्तिमन्मयी ब्रह्मरूपिणी ।
 माया मम प्रियामन्ता पदेयं धार्यते जगत् ॥
 मनयैव जगत् सर्वं सत्त्वानुरमानुषम् ।
 मोहयामि द्विजश्रेष्ठा पसानि त्रिभुजामि च ॥
 उत्पत्ति- प्रलयबंधेव भूतान्माययति गतिम् ।
 विद्यया बीज्य चात्मानं तरन्ति त्रिभुजात्मिणाम् ॥
 पत्न्यास्त्वंग्रामपिच्छाय धरितमन्तो "मन्त्रं सुरा" ।
 ब्रह्मेगन्ताय सत्त्वं सर्वं शक्तिरियं मम ॥
 सैवा त्वज्जगत्प्रभूति प्रकृतिरिन्द्रियुमात्मिका ।
 प्राणव मत्तं सैजाना धीः जस्ये पद्मवातिनी ॥
 चतुर्भुजा शंकरकण्ठग्रहस्ता धरयन्विता ।
 शोडशस्य प्रतीकाया मोहिनी सर्वदेहिनाम् ॥

में देखते हैं कि सृष्टि के आरम्भ में विष्णु से ब्रह्मा धीरे धीरे का प्राक् भवि हुआ। इसके बाद शीवेयी का प्राक्भिर्भाव हुआ। प्राक्भिर्भाव के बाद ही वह नाट्यमी महामाया धर्म्या विष्णु के पास उपस्थित हुई। उन्हें देखकर ब्रह्मा ने विष्णु से कहा—

भोहापाद्मपमूतानां नियोजय तुङ्गपिभीम् । 'अधोप भूतों को मोहित करने के लिए इस सुखपिभी को नियुक्त करो। तब नाट्यम ने हँसकर इस शैवी से कहा "हे शैवि मेरे आदेश से सदेवासुर-मागध इस निश्चित विद्वान् को मोहित करके संसार में विनिपातित करो।" लेकिन नाट्यम ने इस लक्ष्मीशयी महामाया को सावधान कर दिया—“ज्ञानयोगरत बाल्य शङ्खिष्ठ, ब्रह्मादि गण को धीरे धीरे धर्मपरायण व्यक्तियों को दूर से ही परिष्कार करता। संश्लेष में कहा थाय ठो, स्वधर्मपरिष्कारक ईश्वर-आपजनायक व्यक्तियों को तुम मेरे द्वारा नियुक्त होकर कभी भी मोहित मत करना।”

पुरुषों में यह विष्णुमाया के दो प्रभान भेद बिद्यार्थ पड़ते हैं एक है विष्णु की धात्म-माया धीरे धीरे है त्रिगुणात्मिका ब्राह्ममाया। पहले ही देखा है कि इस त्रिगुणात्मिका माया से विष्णु का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है, यह माया विष्णु की प्राक्भिता मात्र है। विष्णु की धात्ममाया को ही साधारणतः 'शैवी माया' कहते हैं यह माया सम्पूर्णरूप से विष्णु की स्वस्वभूता नहीं है, इसीलिए दार्शनिक दृष्टि में 'शैवी माया' लक्ष्मी नहीं है। धीरे धीरे धीरे यह माया किसी भी तरह विष्णु के स्वस्व को धावत नहीं करती या विस्मृत नहीं करती है। धर्मपरायण में विष्णु जब शक्ति से तब यह 'शैवी माया' ही उनकी निद्रा का कारण थी इसीलिए उनकी उत समय की निद्रा भी वास्तविक निद्रा नहीं थी यह विष्णु की 'धोमनिद्रा' थी। इस शैवी माया के द्वारा ही शैवी के घाटों पर धर्म का धाकपक किया

(१) २।१२-१३ २

(२) धोमनिद्रा महामाया शैवी मोहित बना।

अविद्यया जगन् सर्वं तामाह जयवान् हरिः ॥ विष्णुपुराण

२।१।१००

विष्णोः शरीरजो निद्रा विष्णुनिद्रोऽकारिणी ॥ विष्णु हरिर्विना

२।१०

तुलनीय—मागधतुल्य, १।१२

मया वा । कृष्ण के प्राणों की रक्षा के लिए कन्या-रूपिणी माया ने ही कंस को हत्ता था । इसी माया का अवलम्बन करके ही कृष्ण ने भागवत पुराण में ब्रह्मा को हस्तकर अपनी माया का सेवक दिखाया था । यही 'वैष्णवी माया' 'योगमाया' है । माया वास्तव में माया ही है लेकिन भगवान् के स्वयं से भी उसका सम्बन्ध है इसीलिए ही यह 'योगमाया' है । यह योगमाया ही कृष्ण की सारी प्रकृत सीमाओं की सहायक है अर्थात् इसी योगमाया का आवरण या विस्तार करके ही उनकी सारी प्रकृत सीमाएँ होती हैं । इसके फलस्वरूप प्राकृत जगत् में प्राकृत मनुष्य की भाँति उन्हें सारे आवरण करने पड़ने पर भी इसकी किमी भी बात से वे बन्धनग्रस्त नहीं होते अथवा सीमा के लिए वे जितना बन्धन सुरु स्वीकार करते हैं उसके घनाका माया का घोर कोई प्रभाव उनपर नहीं रहता है । पीठा के अन्दर ही हम भगवान् की हम योगमाया का जलैस्व पाते हैं । गौड़ीय वैष्णवों ने इस योगमाया व सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक विवेचन किया है । उनके अन्दर सीमावाद की प्रधानता के लिए हम योगमाया को भी प्रधानता मिला है । गौड़ीय वैष्णव मतानुसार यह योगमाया भगवान् की ही स्वयं मूला 'दुस्तर्काचिच्छक्ति' है अर्थात् यह भगवान् की एक ऐसी विच्छक्ति का प्रकार है जिसके सम्बन्ध में तर्क द्वारा किसी शरणा पर पहुँचा नहीं जा सकता है । जो दुर्बल है उसे घटाने की क्षमता इस योगमाया में है इसीलिए हम योगमाया को 'दुर्बलघटनी विच्छक्ति' कहा गया है ।'

हमने अथर्व विवेचन के प्रारम्भ में बृहदारण्यक उपनिषद् की एक प्रसिद्ध श्रुति देयी है वहाँ कहा गया है कि ब्रह्म जब तक अनेके व तब तक वे रचना नहीं कर सके समय करने के लिए तब उन्होंने अथर्व को दो भागों में विभक्त किया । उनीका एक भाग पुराण और दूसरा भाग गीता हुआ । इस श्रुति की प्रतिष्ठाति पुराणों में बढ़ते-दे स्पष्टों में मिलती है। भाग अथर्वक हम देखेंगे कि इसका प्रभाव बहुत बाद के शास्त्र-साहित्य में भी बना धारा है । पुराणों में देखते हैं कि भागों शक्तिमान् ने स्वयंके ही ने अपनी शक्ति को अपने ने दो भागों में विभक्त कर लिया है । इस प्रकार सुरु ही अपने निवट पास्त्याप और पास्त्याप बन गए हैं । अथर्व-पुराण में कहा गया है शास्त्रक ने रचना की इच्छा में अपनी शक्ति का नामना

(१) विस्तारपूर्वक श्रुति योगमायाम् ॥ भागवत १ । १४।२१

(२) ओष गोस्वामी का अथर्व-संदर्भ ।

करके अपने को दो भागों में विभक्त करके विद्वत्प्रथम रमणी की सृष्टि की भी वह 'उमा' है ।'

हमने पुण्योक्त विष्णु के चक्रितत्त्व के बारे में ऊपर को विवेचन किया किशो दार्शनिक मत का अनुसरण न करने पर भी समता है कि उसके पीछे कई अस्पष्ट दार्शनिक विचार इसके आधारस्वरूप हैं । लेकिन हमने पहले ही कहा है कि पुण्यों में लौकिक मनोवृत्ति की ही प्रधानता है । यहाँ 'लौकिक' शब्द को हम कोई धर्मशास्त्र के अर्थ में प्रयोग नहीं कर रहे हैं । बृहदारण्यक-समाज से जिसका सम्बन्ध है उसीको हम यहाँ लौकिक कह रहे हैं । धर्ममता की उत्पत्ति और प्रयोजन के इतिहास में इस लौकिक मनोवृत्ति का कई विधेय धर्म या काम है । लौकिक मनोवृत्ति की एक प्रधानतम प्रवृत्ति है समीकरण । इस समीकरण की प्रवृत्ति केवल धर्म के मापने में ही नहीं भाषा साहित्य संस्कृति सभी मामलों में है । हमारी एक आधारभूत धारणा है कि हमसे कम धर्म के मापने में समता की

(१) पूर्वं नारायणस्त्वेषो नास्तीत् किञ्चिदपि परम् ।
 सैक एव रति ज्ञेये नैव स्वच्छन्दकर्मकृतम् ॥
 तस्य द्वितीयमिच्छन्तश्चिन्ता बहुयास्मिका वर्धते ।
 धर्माद्येषु च संज्ञया ज्ञानमात्करतमिवा ॥
 तस्या अपि द्विधा भूता चिन्तानुसङ्गवर्तिनः ।
 ज्ञेयैति संज्ञया यत्तत् सदा मत्त्वं व्यवस्थिता ॥
 ज्ञेयैत्यकस्मादीभूता तत्सर्वेषां महीश्वरा । इत्यपि ।

२।२-२

मुक्तगीत—स्कन्धपुराण के अष्टाध्याय में पुताशयकृत विवर्तन में कहा गया है—

विश्वं त्वं नास्ति ई भेदस्त्वयेकः सर्वयो यत् ।
 स्तुत्यं स्तोत्रा स्तुतिसत्त्वञ्च तपुषो निर्मुच्योमवम् ॥
 सर्गात् पुरा नवानेहो धपनामविचरितम् ।
 योतिनोऽपि न ते तत्त्वं विवर्तित परमार्थम् ॥
 मईकलो न धपनोवि रंत्सु स्वरं चरमो ।
 तदेकं तव धेनुपद्मा सैव धरिपरभूतम् ॥
 त्वमेहो द्वित्वमायमं निवर्तयामि मवतम् ।
 त्वं ज्ञानरूपो भगवान् सैवदागामि-स्वकविधी । इत्यपि ॥

प्रवणता बहु की अभिमुखी होती है वे बहुतेरे वास्तवों में विरवास करते हैं बहुतेरे मर्तों में विरवास करते हैं, बहुतेरे देवताओं में विरवास करते हैं—धम के नाम पर अनेक प्रकार के क्रिया-कार्यों में विरवास करते हैं और उष्णकोटि के धार्मिक चिन्तनशील दुःख जिस प्रवृत्ति देवता जिस शास्त्र जिस साधन-प्रवृत्ति में भी विरवास क्यों न रखते हों वे साक साक एक चीज को सोचते समझते हैं और एक ही रास्ते का मजबूती से अनुसरण करते हैं। इस दृष्टि से बात सच है, लेकिन दूसरी ओर से इसे बिलकुल विपरीत दृष्टि से भी देखा जा सकता है। संसार के धम और धर्माधिक्य दशम के इतिहास पर मसी-भक्ति विचार और विस्तारण करके देखने से पता चलेगा कि वास्तव में धम के अन्दर परस्पर विरोधी कट छँटे बहुतेरे मठ और पथ हैं—बहुतेरे देवता दर्शन और क्रियाविधि की दृष्टि उष्णकोटि के चिन्तनशील सम्प्रदायों के द्वारा ही होती है। उनका तर्क म्याम पर प्रतिष्ठित होता है बुद्धि-विचार की पैनी नोक परस्पर को सदा दूर हटा कर अपने स्पष्ट मीमांसक अधिकारों के अन्दर ही रहना चाहती है। इसीलिए हमारी कट्टर धार्मिक बुद्धि के सामने पिबतत्त्व विष्णुतत्त्व कानी-बुगी सरस्वती सङ्गी राधा आदि का तत्त्व जितना भी स्पष्ट रूप से प्रमग क्यों न हो जनता ठाठी नैमायिक विचारबुद्धि और शास्त्र-पाठन को छोड़कर अपनी सहजात समीकरण की प्रवणता से एक प्रकार से सब को एक कर लेती है इसीलिए उष्णकोटि के बुद्धिजीवी हीन पाण्डु वैष्णव मौर, पाण्डत्य आदि सम्प्रदायों में जितने भी मठभेद क्यों न हों जनता न इन सबको निर्विचार रूप से अपना हृदय-मन्दिर और गृह-मन्दिर में स्थान दिया है।

वास्तव में जनता के मन का कार्यरताप बहुत कम बंगला के प्यार एल को गई होता है। प्यार एल के अन्तर्गत कोई भी धरत या ध्वनि परस्पर विरोध रूप से बिलकुल स्वतन्त्र नहीं है कई धरतों या ध्वनियों से त्रिज तारों का उद्भव होता है वे ही यहाँ प्रयाग हैं ध्वनियों ध्वन सारे कर्म-शुभ को उम मिथ तानपम के अन्दर समाविष्ट करती है। धम के मायमे में जनता का मनोबल भी इसी तरह का होता है। वहाँ धम सम्बन्धी कोई भी चिन्ता या विरवास प्राप्त उम रूप से स्वतन्त्र नहीं है बल्कि बिनाएँ और विरवासों के टुकड़ मिश्रण एक तान बनाने है इसी मभीकरण से उत्पन्न तान ही प्रयाग हो उठे है।

हम लोगों ने विष्णुकलि के बारे में ऊपर जो विवेचन किया है उसमें विष्णुकलि के अन्दर ही पता और धरत कलि का तो स्पष्ट

माया बेबा है। प्रपञ्चशक्ति के चन्द्र भी जीवशक्ति और ब्रह्मशक्ति के भेद हैं। लेकिन पुराणों में विभिन्न स्वतंत्रों पर लक्ष्मी या श्री के जो स्तव हैं उनमें विष्णु की ये शक्तियाँ बिलकूल अनुपमिष्ठ नहीं हैं। दार्शनिक वेदान्ती जो सदा से अपने बिसुद्ध ब्रह्म की शक्ति की बहुरसीवारी में घेर कर माया के कल्पित स्पर्श से बड़ी सावधानी से बचते आते हैं माया तत्त्व है या भ्रम? इसके बारे में वे साफ-साफ कुछ भी नहीं कहते हैं। लेकिन पुराणकारों ने सत्री जगहों को समाप्त कर ब्रह्म और माया में अत्यन्त अन्तरंग सम्बन्ध स्थापित किया है। सांख्य दर्शन के चन्द्र पुरुष और प्रकृति का सम्पर्क ठीक-ठीक क्या है इस बात को लेकर बड़ा मतभेद है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि पुरुष और प्रकृति अक्षिप्तमान् और शक्ति रूप में अभेद में भेद है—इस बात को कोई भी सांख्यकार कदापि स्वीकार नहीं करेगा लेकिन पुराणकारों ने बड़ी सावधानी से सांख्य के पुरुष-प्रकृति को तन्त्र के शिव-शक्ति से और वैष्णवों के विष्णु-लक्ष्मी से द्रिस्तकृत अभिन्न कर डाला है। इसके फलस्वरूप पुराणों में बलिष्ठ सक्ष्मीस्वर में विष्णु और लक्ष्मी वेदान्त के ब्रह्म और माया सांख्य के पुरुष और प्रकृति तन्त्र के शिव और शक्ति सभी अपनी-अपनी स्वतन्त्रता छोड़कर मिलजुल कर एक युगलमूर्ति बाराग किये हुए हैं। बादवाले काल के उवा-दृष्ट्य ने भी बड़ी सावधानी से भाकर इस युगल के सामने ही आत्मसमर्पण किया है।

भारतवर्ष के धर्ममूर्तों को सम्झी तरह से देखने पर लपटा है कि यह एक धार्मिक युगल में विरवास मानो भारतीय-मन का एक धार्मिक-धर्म-विरवास है इसी एक विरवास में ही मानो भारतवर्ष के बहुतेरे विभिन्न देव-काल के परिवेष्ट के चन्द्र से मिल्य लभ विचित्रता का रूप पारण किया है। इस युगल में विरवास ही भारतवर्ष के धार्मिकवाद का एक विशेष रूप है। इसीलिए भारतवर्ष के इन शक्तिवाद को हम किसी शैव या शास्त्र मत के बापरे में बाँपना नहीं चाहते हैं। यह धार्मिकयुगल विरवास शैव नहीं है शास्त्र नहीं है वैष्णव नहीं है सौरनायकत्व नहीं है—यह वेदान्त नहीं है सांख्य नहीं है तन्त्र नहीं है—यह हिन्दू भी नहीं है बौद्ध-जैन भी नहीं है—यह भारतवर्ष में सर्वत्र है प्रायः सभी मनों में है इसीलिए हम कहेंगे कि यह धर्म-अग्रवाप-निरवेष्ट रूप से भारतवर्ष का है। भारतवर्ष के उन जातीय विरवास को पुराणकारों ने इसीलिए सभी सम्प्रदायों के तर्ग बापरे से बाहर भाकर विद्याम ऐश्वर्य के चन्द्र रूप-दान किया है। इसीलिए शास्त्रवादा के शक्तिवाद के विवेचन के बाद आरमौर-शैव धर्मों के शक्तिवाद के विवेचन के प्रयोग में हमें यह या

कि भारतवर्ष का शक्तिवाद शैव-शक्त दर्शन का प्रबलम्बन करने बना है, या वैष्णव दर्शन का प्रबलम्बन करके बना है इस बात को बिसमूल स्पष्ट और निश्चित रूप से बताना कठिन है वास्तव में शायद शक्तिवाद एक प्राचीन भारतीय विश्वास का प्रबलम्बन करके ही बना है—बहु विश्वास योद्धा बहुत भारतवर्ष के सभी दर्शनों सभी धर्ममठों में स्थापित हुआ है। हम शैव या शक्त किसी भी शास्त्र-ग्रन्थ में 'शक्ति' का जो वर्णन पाते हैं पुराणों में सक्ती के वर्णन के पन्तर भी बहुतेरे स्थलों में उसी प्रकार का वर्णन पाते हैं। इसी धोर शैव पुराण (या उपपुराण) की पोथी लेने पर हम देखेंगे कि वहाँ बलिष्ठ शिव-शक्ति बिसमूल विष्णु-सक्ती के समुच्च हैं। वर्णन सर्वत्र एक ही तरह का है वेदम नामों की विभिन्नता है। जिस तरह हम इसी तरह तक बलते हैं कि जब सृष्टि का कृत् भी नहीं या सब सदसदात्मक एक मात्र विष्णु थे उन्हें सृष्टि की इच्छा हुई। बहु इच्छा ही शक्तिरूपिणी या मूल प्रकृति हुई उसी आधाशक्ति या मूलप्रकृति से ही पुराण-अवतार की उत्पत्ति हुई—उसी से शक्ति संसार बना शिवपुराण को देखने पर बिसमूल इसी प्रकार का वर्णन मिलेगा। परमात्मा शिव है, पुरुष अपने स्वप्न हुआ और

(१) इदं दुर्गं परा मातीत् ब्रह्मवामकम्ब धत् ।
तदा ब्रह्मवर्षं तैत्रो ध्यापित्वपम्ब ललतम् ॥

विद्यता शैव कालन तस्येच्छा ललपयत् ।
प्रकृतिवाम सा प्रोक्ता मूलशक्तमित्युत ॥
अथो भुजात् तस्यात्मन् विचित्रवसना शमा । ॥
राजाचन्द्र लक्ष्मस्य बरधं तस्य नितयः ॥
नामाभरणसंपुक्ता नामापतिमन्विता ।
नामामुपपदा शैवी प्रकृत्यनंशःशक्तिः ॥
शक्तिरूपेणैव पुक्ता लययोगि ललन्विता ।
एकाकिनी बदा माया त्रयीगात्राप्स्यन्किरा ॥
अथो ई प्रकृतिरेवो तयो ई पुरपल्लवा ।
अथो च मितिनी तत्र विचारे तत्परी बुने ॥

शिवपुराण ज्ञान-संज्ञिका (संप्रधानी) २, अध्याय ॥

प्रकृति को यहाँ नाचयन और नाचयनी कहा गया है । महेश्वर इस प्रकृति और प्रकृतिमयी भोक्ता पुरुष के ऊपर है । शिवपुराण के अन्तमठ वायवीय संहिता में विष्णु और सवयी की गई शिव-शक्ति के वर्णन में भी कहा गया है कि शिव विषयी है शक्ति विषय है शिव भोक्ता है, शक्ति भोग्या है शिव प्रप्य है, शक्ति प्रप्य है शिव इष्ट है शक्ति इष्ट्य है शिव आस्वाद्य है, शक्ति आस्वाद्य है शिव मन्ता है, शक्ति मन्तव्य है । वैष्णव मतानुसार शिव लख्खे धर और धर को पुण्योत्तम विष्णु का दो रूप कहा गया है, और पुण्योत्तम को शराधर से ऊपर कहा गया है शिवपुराण में भी इसी की पुनरावृत्ति दिखाई पड़ती है ।

ब्रह्मवैवर्त-पुराण में सवयी बहुतेरे स्मरणों पर दुर्गादेवतादिनी दुर्गा है । विष्णुपुराण में इन्द्र ने समुद्रोत्थिता पद्म-संभवा लक्ष्मीदेवी का सभभूर्त्तों की जननी बनवानी कहकर स्तवन किया है । उन्होंने और भी कहा है—
‘तुम्हीं विद्धि हो तुम स्वाहा और स्वहा हो तुम सम्पन्ना एषि प्रभा भूति मेवा मन्त्रा सरस्वती हो । तुम मन्त्रविद्या महाविद्या बुद्धविद्या और विमुक्तिप्रदायिनी आत्मविद्या हो । तुम्हीं धान्वीशिकी (तर्कविद्या) मयी चार्त्ता और बण्डनीति हो । हे देवि तुम्हारे ही धौम्याधीन्य रूप से

(१) शिव-पुराण—२।२६ ७७।९

(२) स एव प्रकृती लीनो भोक्ता यः प्रकृते मत् ॥

तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परं तं श्लेश्वरः ।

तदधीनप्रवृत्तिस्वात् प्रकृतेः पुस्वस्य च ॥

बही—वायवीय संहिता, पूर्वभाग, २८।२—३३

(३) बही—वायवीय संहिता, उत्तरभाग, ३।५६-६१

(४) धरः सर्वाधि भूतानि कटस्वोऽन्तर उच्यते ।

उमे ते वरमेवास्य ह्यं तस्य वां पतः ॥

तयोः परं शिवः शान्तः कदाकदापरः इमून् ।

समष्टिष्यष्टिष्यश्च समष्टिष्यष्टिष्यश्च ॥

बही—वायवीय संहिता उत्तरभाग

संघार मय हुआ है । सक्ती का यह वर्णन धीर इस प्रकार के धीर भी प्रत्येक वर्णनों से हम मार्कण्डेय-पुराणोक्त ऋषी के वर्णन का भसीभाँति मिलान कर सकते हैं । पद्म-पुराण के उत्तरखंड में सक्ती का जो स्तव या स्वरूप-वर्णन पाते हैं, उसके अन्तर भी सक्ती का मायावप प्रकृतिरूप

(१) विष्णुपुराण, १।१।११६-११८

तुलनीय— त्वं भूतिः सप्ततिः कोटिः क्षास्तिध्री वृषिबी भूतिः ।
 सक्ती पुष्टिरया या च काश्चिदग्या त्वमेव सा ॥
 ये त्वामार्येति दुर्गतिः विदग्धनाप्रिभिकेति च ।
 भद्रतिः भद्रकालीति ज्येष्ठा क्षेमं करीति च ॥
 प्रस्तम्भवापराह्णे च स्तोत्र्यमप्यानम्रमूर्तयः ।
 तेषां हि प्राचिनं तर्षं मत्प्रकाराद् भविष्यति ॥
 सुरामातोवहारस्तु भक्त्यनौर्ज्वरश्च भूजिता ।
 नृणायशोवहानास्त्वं प्रसन्ना सम्प्रदास्यसि ॥

श्लो—१।१।११६-११८

धीर भी— ब्रह्मधीश्च तपःधीश्च यज्ञधीः कोतितंजिता ।
 मनधीश्च यज्ञधीश्च विद्या प्रज्ञा सरस्वती ॥
 भुवितधीश्चाथ मुक्तिश्च स्मृतिर्तंजना भूतिः क्षमा ।
 सिद्धिस्तुष्टिस्तथा पुष्टिः धान्तिरापस्तथा मही ॥
 अहं क्षास्तिरधीष्यं भूतिः भद्रिबिभादरी ।
 धीर्ग्योत्सना धान्तिश्च स्वस्तिर्य्यपि मर्मा जया शिवा ॥
 बर्तुकिचिद् विद्यते लोके सक्तीया व्याप्तं चराचरम् ।
 ब्राह्मणत्वप धीरेषु कर्मावनुत्सव साधुषु ॥
 विद्यापुस्तैषु चाभ्येऽनु भुक्तिमुक्त्यनुसारिषु ।
 ब्रह्मचर्य्यं मुन्दरं वा तत्तत्सकभोविर्भूम्भितम् ॥
 किमत्र बहुशोक्तेन तर्षं लक्ष्मीमयं जगन् ॥ इत्यादि ॥

ब्रह्मपुराण १।१।११२-११६

सर्वव्यापिनी जगज्जगती द्युक्तरूप सत्र भिन्नकृत्कर एक हो गये हैं ।
 तंत्रादि में श्रीविद्याका पराद्युक्त सन्नितादेवी के नाम से बिर्यात
 है ।' इस श्रीविद्या को 'सन्निता' कहने का तात्पर्य यह है कि वे ही

(१) नित्यं सम्प्रोपमीश्वर्या धिया ब्रूम्या च संकृतम् ।

नित्यैवैवा जगन्मता विष्णोः श्रीरत्नपामिनी ॥
 यथा सर्वगतो विष्णुस्तथा लक्ष्मी भुभानने ।
 ईशाना सर्वजगतो विष्णुपत्नी स्या ज्ञिया ॥
 सर्वतः पाणिपादास्ता सर्वतोऽसिधिशरोमुखी ।
 नारायणी जगन्मता समस्त जगदाधया ॥
 यदवाङ्गाभिर्न सर्वं जगत् स्वाधरजंगमम् ।
 जगत्स्वित्तिसयी यस्या जग्मीलननिमीलनत् ॥
 सर्वस्याद्या महालक्ष्मी स्त्रियुवा परमेश्वरी ।
 लक्ष्यासध्यस्वस्वपा ता ध्याप्य कृत्स्नं ध्यवस्थिता ॥
 भूयं तद्विभक्तं विद्वं विनोक्त्य परमेश्वरी ।
 भूयं तद्विभक्तं स्वैज धूरयामास तैजसा ॥
 सा लक्ष्मीर्परणी चैव नीला देवीति विभुता ।
 साधारणता जगत् पृथिवीरूपमाधिता ॥
 तोषादिरसाक्येय सैव नीलाद्युक्तवेत् ।
 लक्ष्मीरूपस्वमापन्ना जनबागृहपिनी हि सा ॥
 : १०

लक्ष्मी श्री कमला विद्या माता विष्णुप्रिया सती ।
 पद्मालया पद्महस्ता यथाज्ञी लोचमुम्बरी ॥
 भूतानामीश्वरी नित्या लघा सर्वघना घुमा ।
 विष्णुपत्नी महादेवी श्रीरोरतमया रमा ॥
 प्रमत्ता लोकमाना भूर्भूता सर्वभुज्यरा ।
 इविमणी च तथा सीता सर्वदेववती घुमा ॥
 सती सरस्वती मीरी मास्ति स्वहा स्ववा रति ।
 नारायणी वरारोहा विष्णोर्नित्यात्पामिनी ॥

पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २३७।१३-२ २४-२७

(२) श्रीदेवी सन्निताम्बिका—सन्निताम्बिका, ब्रह्माण्डपुराण ।

त्रिसोठ में काशिरूपिणी हैं।' ब्रह्माण्ड-पुराण के अन्तमठ 'सतिता-विद्यतो' में देखते हैं कि यह सतिता देवी एक ओर है—

कञ्जारक्या कस्याची कस्याजमुषधामिनी ।

कस्याधर्गतमितया कमनीया कलावती ॥

दूसरी ओर वे हैं—

कमलाक्षी कस्मपणी कञ्जामुतकापरा ।

कस्मकाननवाता कस्मन्मुसुबप्रिया ॥

इस देवी के वर्णन में कहा गया है कि वे 'साधारणसखर्णा' भी हैं। वेद के भीमूक के अन्तर सखी उष्य की व्याख्या में भी सायनाचार्य ने निरुक्त का उल्लेख किया है— 'सखीमस्तिमदाणात्' कहकर। पञ्चपुराण में कहा गया है कि इण मुद ही सतिता देवी हैं—'यो देवी सांभवा कहकर गायी जाती है। इण्य स्वयं योषित्-स्वस्व है, वे पुस्या इण्य-विग्रहा सतिता-देवी हैं। इन दोनों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। किसी-किसी पुराण में इस विष्णु-सखी ब्रह्म-माया पुण्य-मङ्गलि सिद्ध-दुर्गा के साथ राम-सीता भी मिल गए हैं। यह सखी विश्व-जमनी के तौर पर विष्णुनात्मिका प्रकृति के रूप में ही बधित नहीं हुई हैं योनि क्या कहकर भी इनका बहुतेरे स्वरों पर वर्णन किया गया है। सखी के इस प्रकार के समीकरण से उत्तम निरुक्त का वर्णन पुराणों में परिपक्व

(१) ब्रह्माण्डपुराण के अन्तगत 'सतिताविजयी' पर अकराचार्य के नाम से जो भाष्य प्रचलित है (देखो—'सतिताविजयी-भाष्यम्'—श्रीवाणीविज्ञान प्रेस धीरंगम्) उसमें 'सतिता' नाम की व्याख्या में कहा गया है 'सतिता त्रिषु सुखरम्'।

(२) अहं च सतितादेवी राबिवा या च गीयते ।

अहं च वामुदेवाक्यो नित्यं कामवतप्रमकः ॥

सत्यं योषित्-स्वस्वयोऽहं योषित्वाहं सजगती ॥

अहं च सतिता देवी पुं-क्या इण्य-विग्रहा ।

सांभयोऽन्तरं वासि सत्यं सत्यं हि नास्व ॥

वातातकण्ड, ४४१२१४६

(३) पञ्चपुराण उत्तरमण्ड, २४१।११-१०

से हूँने की आवश्यकता नहीं ये पुरुषों में बड़ी आसामी से मिल पाते हैं ।'

माखीय संवमत की एक बुनियादी बात यह है कि जो कुछ भी मयबतत्व है वह सब कुछ हमारे शरीर के अन्दर है इसलिए शरीरत्व मिश्र-मिश्र अक्षों या निमन-निमन पदों में शिवधाम और सक्तिधाम का वर्धन किया जाता है । हम किसी-किसी पुरुष में और वैष्णव संहिता में भवब्रह्म मधुरा मोक्षम बुन्बावन भादि तथा इसी प्रकार के दूसरे वर्धन पाते हैं । साधारणतः माधुर-मंडल को यवना मोक्षम को सहस्रपत्रकमसाधर

(१) तुमनीय—बृहन्नारदीय-पुरुष (बंयवासी)ः—

तस्य शक्तिः परा विष्णो र्ब्रह्मकार्यपरिधया ।

भावाभावरत्नमा सा विद्याविद्येति पोयते ॥

यदा विश्वं ब्रह्मविष्णोर्ब्रह्मत्वेन प्रतीयते ।

तदा ह्यविद्या संतिद्यदा तथा बुद्धस्य तावती ॥

मार्गश्रेयासुपाधिस्तु यदा भवति तत्तत्ता ।

सर्वकमत्तनाबुद्धिं सा विद्येत्यभिधीयते ॥

एवं माया ब्रह्मविष्णोर्निम्ना संतारवापिनी ।

धमेवबुद्ध्या बुद्ध्या चैव संतारसवकारिणी ॥

विष्णुशक्तिवतमुद्भूतमतत् सर्वं चराचरम् ।

यत्त्वाभिन्नमिदं सर्वं यन्नेदं यच्च नैगते ॥

उपाधिभिर्विषयाकार्यो निम्नत्वेन प्रतीयते ।

अविद्योपाधिभेदेन तदेवमन्त्रितं ब्रह्म ॥

यदा हृदिर्ब्रह्मधरा तस्य अस्तिस्तथा मुने ।

बह्वक्षरितर्पणाङ्गारे स्वाध्यायं ध्याप्य तिष्ठति ॥

उमेति केचिदमुस्तां शक्तिं लभतीति चापरे ।

भास्तेरपरे चैवा गिरिजैत्यम्बिरेति च ॥

दुपेति ब्रह्मकालीति घण्टी माहे-बरोति च ।

सौमारी वैष्णवी चेति बाराहग्रीति चापरे ॥

बाह्यीति विद्याविद्यति मायति च तथापरे ।

प्रहृतिराव परा चेति ब्रह्मि ब्रह्मवर्षे ॥

सिद्धं शक्तिं परा विष्णोर्ब्रह्मसर्पादिकारिणी ।

व्यङ्ग्याव्यस्तस्ववदेव जगद्ग्याप्य व्यबस्विता ॥ ११६-११७

नाम कहा जाता है इसने बीच का जो कर्मकार है, वही बुद्धावन नाम है। इस सहस्रपत्रकमल को ही मस्तकस्थित सहस्रार पत्र कह कर वर्णन दिया गया है। तंत्र-मत के अनुसार यह सहस्रवत्त सहस्रार पत्र ही परमवत्त की निवासभूमि है। गौडीय वैष्णवों विशेष रूप से प्रामाणिक ग्रंथ—ब्रह्म-संहिता में इस नाम वत्त का प्रथमम्बत करके विष्णु और उनकी शक्ति रमा देवी का जो वर्णन है, वह विसकृप्त तंत्राङ्कुर है। वहाँ कहा गया है कि सहस्रपत्रकमल ही योक्त कहा जाने वाला महत्पर है उस पत्र का कर्मकार (परमश्रीप) उतथा (परमहृष्य का) प्राणनाम (बुद्धावन) है। वह नाम भी हृष्य के धमन्तांस के एक ग्रंथ से पैदा हुआ है। यह कर्मकार ही 'महद्व्यंज' है यह पद्मश्रीप वयसीलक है यह 'पद्म-पद्मपरी स्यात्' है। यहाँ पुरुष और प्रकृति दोनों ही हैं। यहाँ देव

(१) स्वस्वात्मचित्तं नाम ध्यं भावरमण्डलम् ।

निगुहं विविधं स्यात् पुर्यम्पतरत्तस्थितम् ॥

सहस्रपत्रकमलाकारं भावरमण्डलम् ।

विष्णुचक्रपरिनाथं नाम वैष्णवमण्डलम् ॥

सहस्रपत्रकमलं भोक्तृताद्यं महत्परम् ॥

कर्मिक्य तन्महद्व्यंजं योगिभिरपि जन्मकोविदिभिः ।

तत्रोपरि स्वर्णरीते मणिमण्डपमण्डितम् ॥ इत्यादि

बधपुराय पाताल खण्ड, (केदारनाथ भक्तिविनोद
सम्पादित) ३८ अध्याय

इस अध्याय में देह के सम्पत्तर में केवल मयुरा—गोपुत का ही वर्णन नहीं है, देहात्त कित कमल का कौन इस हृष्य की गोपुतत्त कित तीसा की भूमि है इतका भी विचार वर्णन है।

(२) मयुरामण्डलमेतद्गुण सहस्रारपत्रकं चिद्धिः ।

धीबुद्धावनमुवनं परमस्तान्कर्मिणारं च ॥

हंतास्तत्र महान्तो भक्ता तंसारसागरोत्तीर्णः ।

तत्तरवममयं योगिभिरपि जन्मकोविदिभिः ॥ १६१ १६२

विश्वाम्बु महामहोराप्याय बाणेन्दर विद्यासंसार भट्टाचार्य
विरचित ।

(३) सहस्रपत्रं कमलं भोक्तृताद्यं महत्परम् ।

तन्महद्व्यंजं तत्राय तदनन्तांस-सम्भवम् ॥

कर्मिकारं महत् परं पद्मश्रीपं वयसीलकम् ।

पद्म-पद्मपरी-स्यात् प्रहृष्य बुद्धावन च ॥ १७, १८

सकते हैं कि यह पदकोष मंत्र ही तंत्रोक्त शक्ति-मंत्र है—यही देवी का पीठ या आसन है। यह महद्मंत्र ही परमासी या आवासासरी या अष्ट-ब्रह्मासरी मंत्र का स्थान है। यही श्रीपुरुषोत्तम देवता प्रकृति-पुरुष के बीचतत्त्व के तौर पर या अविच्छिन्न-देवता के तौर पर विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार के जो ज्योतिर्मय सदानन्द परस्पर देव है, वे आत्मात्म हैं, अपने स्वरूप के अन्तर ही उनकी सारी आत्मत्वानुभूति होती है। यह आत्मत्वा अनुभूति ब्रह्मकृत अन्वयनिरपेक्ष है। इतनीलिए इस परम देवता का कभी भी प्रकृति के साथ या माया के साथ समापन नहीं होता है, लेकिन ब्रह्मकृत समापन कभी नहीं होता यह नहीं कहा जा सकता है जब वे सृष्टिकाम हो जाते हैं तब वह कालातीत कामाधीन पुरुष 'काम' को छोड़ देते हैं और उन्हीं काम का ही आश्रय करके आत्ममाया या आत्मशक्ति रमा देवी के साथ रमण करते हैं। वह जो श्रेष्ठतम प्रकाशस्वी रमा देवी हैं, यही विश्व की नियति हैं, वे विष्णुप्रिया हैं सदा ही उनके स्रष्ट में रहती हैं। ज्योतिरूप सनातन भगवान् समु ही उस परम देवता के लिङ्ग-स्वरूप हैं, और वह पराशक्ति ही मोक्षि-स्वरूपा हैं काम ही हरि का महद् बीज है। इस लिङ्ग-मोक्ष से ही अक्षय भूतगण पैदा हुए हैं।

✓ उपर्युक्त वर्णन को पढ़ने से बिसाई पड़ता है कि क्या विचार की दृष्टि से क्या माया की दृष्टि से—किसी भी दृष्टि से सब-साम्य तंत्रोक्तशक्तिवाद और वैष्णव-आत्मोक्त शक्तिवाद में कोई ग्राह्य पार्वत्य करना संभव नहीं मान्य होता समजातीय भाव और विचार ही मानो निम्न-मिथ्य वातावरण में निम्न-मिथ्य प्रकार से प्रकट हुए हैं।

(१) अष्टावशासरी मंत्र—क्यों कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन-
नमस्य स्वाहा।—इसके छ प्रप हैं—पदा—(१) कृष्णाय (२) गोवि-
न्दाय (३) गोपीजन (४) बल्लभाय (५) स्वा (६) हा।

(२) एवं ज्योतिर्मयो देव सरलम्बरं बरहस्पतेः ।

आत्मारामस्य तस्यास्ति प्रकृत्वा न समापनम् ॥

मायया रममाणस्य न विधीयतया सह ।

आत्मना रमया रमे त्यक्तकर्मं तितुङ्गया ॥

निपति- सा रमा देवी तत्प्रिया त्वया तथा ।

तस्मिन् भगवान् अन्वयर्गोतीरुप- सनातनः ।

या मोक्षि- सा परा शक्तिः कामो बीजं महद्देवैः ॥

सिग्योप्यारिभवा जाता इमा बाह्यवरी-मन्त्रः ॥

पुराणोक्त विष्णुसक्ति लक्ष्मी के बारे में एक बात धीर भी देवी का सचठी है। पुराणों में वहाँ-वहाँ विष्णु के कृष्ण-स्यन्तार ने प्रभावता पाई है वहाँ कृष्ण की महिषी रुचिमणी ने ही विष्णु की महिषी लक्ष्मी के स्थान पर अधिकार किया है। रुचिमणी को ही साधारणतः लक्ष्मी का स्यन्तार कहकर वर्णन किया जाता है। इस प्रसंग में यह भी देला जा सक्ता है कि अनेक पुराणों में रुचिमणी ने स्वयंवर धीर स्वेच्छा से कृष्ण को बरण करने की कथा वर्णित हुई है। सक्ता है पौराणिक युग में लक्ष्मी के भी स्वयंवर की धारणा प्रचलित थी। श्रीमद् भाग के 'सद्गुणिकर्णामृत' में इस लक्ष्मी-स्वयंवर के बार दसोक्त संभूहीत है। वास्तव में यह लक्ष्मी का स्वयंवर धीर कृष्ण नहीं है—समुद्र से निकल कर लक्ष्मी ने स्वेच्छा से विष्णु का ही बरण किया था। इसीसे समता है लक्ष्मी-स्वयंवर की बात यह भी गई है धीर लक्ष्मी-स्वयंवर न ही रुचिमणी-स्वयंवर की धारणा धीर उपाख्यान को प्रभावित किया है। कृष्ण-सीमा का प्रारंभ तिस-हरिबंध में किया पड़ता है। इस तिस-हरिबंध में रुचिमणी का साफ-साफ लक्ष्मी के तौर पर वर्णन न पाने पर भी हम देखते हैं कि उनका साक्षात् लक्ष्मी की भाँति वर्णन किया गया है। यह साक्षात्-लक्ष्मी-रुचिमणी ही कृष्ण की प्रभाव महिषी होने पर भी हमें तिस-हरिबंध में धीर विष्णु पुराणों में कृष्ण की गात अथ महिषियों के नाम मिलते हैं। 'हरिबंध' के अनुसार इन सात महिषियों के नाम हैं—कामिनी मित्रवृन्दा नाम्नाजिती जाम्बवती रोहिणी लक्ष्मणा धीर सत्यमामा। रुचिमणी को लेकर कृष्ण की भाँट पत्नियों थी। विष्णुपुराण में भी प्रभाव महिषी के तौर पर रुचिमणी का तथा कामिनी मित्रवृन्दा नाम्नाजिती आदि सातों पत्नियों के नाम मिलते हैं। त्रिभी-त्रिणी पुराण में विष्णु की सोमह या सोमह द्वारा पत्नियों का भी उल्लेख मिलता है। कृष्ण की पत्नियों का विवेचन

१ तां वदन्तं तदा कृष्णो लक्ष्मीं साक्षाद्विच स्थिताम् ।

वक्षेद्याप्यत्र लक्ष्मणां देवतायतनास्तिके ॥

बह्मरिच गिजां शीपतां मायां भूजिगतामिच ।

पूर्वैर्बौमिच मग्नीरामुत्पितां पूर्वैर्बौतत्तम् ॥ २२ ॥ ३२-३६

सुमतीप—भीकृष्ण रुचिमणीकथ्यत गोपीजनमनोहर । पौपात्तापनी पूर्वभाष ४६ । दास्ता समहितः ।

रुचिमण्या लक्ष्मिनी विष्णु ॥ वही—उत्तरभाष ३६ । कृष्णात्विवा जयत्कर्त्री नूनप्रवृत्ती रुचिमणी । वही—उत्तरभाष ३६ ।

क्रिया चाय तो हम देखते हैं कि नीला में श्रीकृष्ण ने अपनी घण्टा प्रकृति की बात कही है। शक्ति के घण्टा भाग को लेकर ही शिव की घण्टा मूर्ति की बारना उत्पन्न हुई थी। तब तो है शक्ति या प्रकृति के घण्टा भाग को लेकर ही कृष्ण की घण्टा महिषियोंके उपाख्यान प्रादि गये गये हैं। दूसरी ओर हम देखते हैं कि शक्ति को सर्वत्र पोषण-कलात्मिका कहा गया है। उपनिषद् के युग से ही इस पोषण-कलात्मिका का प्रचार चला आ रहा है। तब तो है कि इन सोमह कसार्थों ने ही कृष्ण की सोमह पत्नियों का रूप मिया है। चन्द्र सोमह कसार्थों का है। संभारि में या सोमशास्त्र में सूर्य को वहाँ पुष्य या शिव का प्रतीक माना गया है चन्द्र को वहाँ शक्ति का प्रतीक माना गया है। श्रीसूक्त में बलिष्ठ लक्ष्मी या श्री श्री 'चन्द्रा' है। पुराणारि में भी लक्ष्मी के इस 'चन्द्रा' होने का उल्लेख है। यह पोषण-कलात्मिका 'चन्द्रा' लक्ष्मी ही संभवतः पुराणों में सोमह पत्नियों के रूप में दिखाई पड़ी है। कृष्ण की सोमह पत्नियों की जड़ में इन सोमह कसार्थों की बात स्कन्द-पुराण के प्रभास-खंड में शिव-नीली-मंदाक में साफ हो गया है। वहाँ कहा गया है कि पुराने जमाने में कृष्ण जब पादरों के साथ प्रभास के तीर पर आये थे तो उनके साथ सोमह हजार गोपियाँ भी आयी थीं। इनमें सोमह प्रभास गोपियों को गिना कर कहा गया है कि कृष्ण चन्द्र-स्वरूप है—ये सोमह गोपियाँ सोमह कसा-कपी सोमह शक्तिवाँ हैं। चन्द्र जिस तरह प्रतिपदा प्रादि तिथियों का व्यवस्थान करके संवरण करते हैं उन्ही तरह कृष्ण महाकर्म से इन गोपियों के साथ विहार करते हैं। प्रति-कलात्मिका प्रतिगोत्री से ही हजार गोपियों का उद्भव हुआ। इस प्रकार कृष्ण गोपियों की संख्या सोमह हजार हुई।' श्रीव गोस्वामी ने अपने 'श्रीकृष्ण-उत्सव' में कहा है कि लक्ष्मी ही श्रीमद्भाग्य की पोषण कलात्मिकास्वरूप शक्ति है—उस लक्ष्मीकी एक स्वरूप-शक्ति से ही सोमह कृष्णवस्तुना गोपियों का उद्भव हुआ है। दूसरी ओर सांख्यदर्शन की दृष्टि से देखते हैं कि प्रकृति ही सोमह विचार है। तब तो है सांख्य में कहे गये प्रकृति के सोमह विचार ने ही कृष्ण की सोमह पत्नियों के उद्भव में सहायता की है। पुराणकारों ने प्रकृति के इन सोमह विचारों की बात बहुतेरे प्रसंगों में कही है। घण्टा प्रकृति क इन सोमह विचार की

(१) तस्यैतां वास्तवो देवी पोषणैव प्रकृतितः।

चन्द्रकपी सतः कृष्ण कलात्पास्तु ता स्मृताः।

सम्पूर्णमष्टता तातां प्रातिनी पोषणी कता।

प्रतिपत्तिविचारम्य संवरणायु चन्द्रताः। इत्यादि।

बात पुराना युग में ही प्रसिद्ध थी। संक्षेप के अनुसार घाठ प्रकृतियों और सोलह विकारों की बात हमें मिलती है।^१ इन घाठ प्रकृतियों और सोलह विकारों का प्रभाव कृष्ण की महिषियों की घाठ और सोलह संख्याओं पर होना संभव है।

(१) अपने अ भाषांतरिका "घाटी प्रकृतय बोद्धमविवारा"
(गर्भो) हापनिशीपने। रामानुजाचार्य का बीमाप्य ४५
७५।

शास्त्रग्रन्थों में लक्ष्मी का स्थान बहुत सम्सेल्योप्य नहीं है। लक्ष्मी के बारे में दार्शनिक विवेचन भी बहुत थोड़ा सा है। लेकिन इस सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्त में भी या लक्ष्मी का स्थान मौन होने पर भी इनके बर्मेमत के अन्दर भी एक मुख्य स्थान अधिकार किये हुए है। प्राचीन और अपेक्षाकृत महीन श्री-सम्प्रदाय के आचार्यों की रचनाओं की विवेचना करने पर लगता है कि श्री या लक्ष्मी ईश्वर कीटि और जीव कीटि दोनों में भागों एक स्नेह प्रीतिमय सेतु बनाने हुए हैं। लक्ष्मी मंगलमयी हैं और कल्याणमयी हैं। उन्हें 'कल्याणानतमुत्ती' कहा गया है। अष्टोत्तर सङ्ख्यनामों में भी कहा गया है 'कल्याण वेदमातरम्' इसीलिए ईश्वर कीटि में रहकर भी इस करुणामयी देवी की दृष्टि सदा दुःख-दाय किण्वट अथवा अज्ञानों के प्रति—संसार के बंधे हुए जीवों के प्रति रहती है। इसीलिए वे अपनी कल्याण और प्रेम-स्नेह के द्वारा जीव को सर्वदा भक्तमुक्ती करने की चेष्टा कर रही हैं—अपनी ब्रह्म-विद्यास्वरूपता के द्वारा जीवों के सभी अज्ञान-तम—सभी मायाबन्धनों को दूर करने की चेष्टा कर रही हैं। इसी और वे विष्णु-स्वरूपमूला उनकी प्रियतमा प्रबान महिषी होने के कारण जीवों की ओर से परमेश्वर पर बहुत प्रभाव डाल रही हैं उनकी कृपा-दृष्टि प्रपञ्चार्थ जीवों की ओर बिंब रही है। मुक्त-जीव के तौर पर नित्यकाल ब्रह्मानन्द का आस्वादन करना ही जीवों-जनों का साम्य है—और इस साम्य के लिए प्रपत्ति या अनभ्युत्थता ही प्रबान साधन है। इस प्रपत्ति के मुख्य साधन होने के कारण लक्ष्मी का स्थान भी मुख्य हो उठता है।

प्रियतमा भक्तदत्-पत्नी और कल्याणमयी करुणामयी जीवमाता के तौर पर वे भगवान् और जीव इन दोनों के बीच रहकर जीव को सुबुद्धि दान कर उसे निरंतर भक्तमुक्ती कर रही हैं और भगवान् को जीवमुक्ती करके मुक्त हुए से कृपा-वितरण करने के लिए उत्सुक कर रही हैं। लक्ष्मी के इस प्रकार के बर्मेतों के पीछे महा एक

(१) यामुनाचार्य के 'चतुःस्तोत्री' के द्वितीय स्तोत्र का वेदंताव हस्त भाष्य देखिए।

(२) देखिए—

लक्ष्मी दास इति प्रपन्न इति च स्तोत्राभ्याम्भुं निर्मयो।

लोकेन्द्रेणरि लोकायदमिते दास्ये दयां से विदम् ॥

यामुनाचार्य का चतुःस्तोत्री २ स्तोत्र।

मानवीय दृष्टान्तने प्रभावित किया है वह दृष्टान्त है, मातृवर्त गृहिणी का दृष्टान्त। वह स्वामी के लिए प्रेममयी पत्नी है—दूसरी धोर संतान के लिए स्नेहमयी माता है। घाघारन पाईस्वयं जीवन में देखा जाता है कि पुत्रों और पिता में जो स्नेह का सम्बन्ध होता है उसमें धन्तर का एक बायीक पक्ष सा पक्ष रहता है, सगता है माता पुत्र हमेशा पिता की इच्छा मनी-माति नहीं समझ पाते हैं समझ पाने पर भी सभी पुत्र पिता की उच इच्छा का पालन करते उनके बिल्कुल प्रिय-स्नेहपात्र बनने की स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं दिखान पिता से कभी काट कर वे मानो बहिर्मुखी होना चाहते हैं। लेकिन माँ बीच में रहती है। वे प्रेममयी प्रियतमा के तीर पर पति के स्वरूप और इच्छा को भी सबसे अच्छी तरह जानती है, और स्नेहमयी संतान बल्लभा होने के कारण पुत्रों की बरिच प्रकषता दोष मुझ को भी मनीमाति जानती है। इस दृष्टा में वे स्नेहप्रीति द्वारा संतानों में शुभ-बुद्धि उत्पन्न करने की चेष्टा करती हैं और बीरे-बीरे उन्हें पिता की इच्छा की धोर मोड़ने की कोषिच करती हैं। इसके मसामा वे चेष्टा करती हैं किचित् उदासीन पिता की सक्रिय स्नेहदृष्टि को संतानों के प्रति प्राकृष्ट करने की और सहजात प्रवृत्ति के बध नमत घस्तेपर चलने वाले पुत्रों के धारे दोषों को क्षमा करके उन्हें निच्छट बुझाने की प्रेरणा देने की। लक्ष्मी का कार्य भी इसी प्रकार का है। धविघाहरी माया द्वारा मोहित जीवनन भयवत्-स्वरूप और भयवत् इच्छा मनीमाति नहीं समझ पाते हैं बितना समझ पाते हैं उसमे उनकी सहजात प्रवृत्ति उन्हें भगवद्-विपरीत विद्या में खीच ले जाती है। इसर पद्मपुत्रघाली ब्रह्माण्ड के धमीरवर—नेदिन मुगमय होठे हुए भी गुणातीत—ऐसे विष्णु की दृष्टि सायद सर्वदा बीच धमिमुली नहीं रहती है बीच की लक्ष्मी दोनों को एक दूसरे की धोर मोड़कर धपने प्रेममयी होने की साधना प्राप्त करती है। रामानुजाचार्ये क चतुस्सोरी के माप्य में बेंदटनाच ने कहा है, 'कर्मईष्टनर पति के (विष्णु के) प्रति धी देवी के दो इत्य है एक है तिग्रह ने बारन दूसरा है धनुग्रह का मन्वृषण।'" इसी प्रसंग में धी विष्णुवित का मत भी उद्धृत किया गया है। उन्होंने कहा है कि मातृकपी धी के धरण में लक्ष्मी जाते हैं। माता हित की प्रयेसा पुत्र की खी कष प्रिय है धमकी धोर ही ध्यान रगती है पिता की दृष्टि दोनों की धोर रहती है इसीलिए पिता मीठा रणरवर होना है माता

(१) धलि कर्मईष्टनरे लक्ष्मी इत्युद्धृत धियः ।

तिग्रहाचार्यं काने सत्यसतमनुग्रहे ॥

सी नहीं होती। इसका मतलब यह नहीं कि लक्ष्मी उसका समान नहीं करती है। सीता की लेबोमबी धार में चलकर ही रावण सीताम के कोप में पड़ा था। यह मातृस्त्री लक्ष्मीदेवी 'प्रतिपात-प्रसन्ना' 'सिद्धप्रसादिनी देवी' 'सदानुबहुसम्पन्ना' है वे 'सात्त्विकस्विनी' 'समाकृषिनी' 'धनुग्रह परा धनवा' है। वे सदा ही घनिष्ट निर्वर्तन और दृष्ट प्रायश्च-वर्ग कर्मा-निरीक्षण के द्वारा सब कष्ट की रक्षा कर रही हैं। इन्द्र-ब्रह्मादि सभी देवताओं का ऐश्वर्य उनके कलास के धनीन है। पुत्र्योत्तम देव जैसे श्रीकाल है भी भी उही तरह 'परबिन्दुतोषनमन-काला' है इस प्रकार की परस्पर की धनुकमता के द्वारा ही सभी मामलों में दोनों में सामरत्य रहता है इसीलिए भी के प्रसार के धनावा किसी को श्लेशाम नहीं होता 'केवम ऐहिक भोग नहीं इनकी कृपा के बिना भोग भी संभव नहीं हो पाता है। लक्ष्मी की इस धनत्व कृपामयी मातृपूर्ति के सम्बन्ध में लोकाचार्य ने अपने श्रीवचनमूषय नामक ग्रन्थ में और बरबर मुनि ने इस ग्रंथ के विस्तृत भाग में बड़े सुन्दर ढंग से विवेचन किया है। विष्णु और लक्ष्मी का प्रवृत्तार राम-सीता का प्रवत्तम्वन करके और वास्मीकि-रामायण में बलिष्ठ उपास्याओं का प्रवत्तम्वन करके लोकाचार्य ने इस विषय में विस्तृत विवेचन किया है।

रैष्यव जनों में लक्ष्मी के सम्बन्ध में इस दृष्टि का आधास हमें पुराणादि में ही मिलता है। पञ्चपुराण के स्वयंलक्ष में हम देखते हैं कि लक्ष्मी ही मध्यस्थ होकर सभी दोषों के धाकर हिरण्यकशिपु पर भी विष्णु की कृपा बरसाने का काम कर रही है। ब्रह्मपुराण में हम देखते हैं कि जगत् सप्ट्य जगन्नाथ सर्वभोग-विधाता प्रथम बामुदेव का प्रथम करके पञ्चा लक्ष्मी देवी सभी लोकों की हितकामता से प्रथम पूष रही हैं। यह जो सर्वभोग स्त्री महाशर्ष कमजुधि है—यह जो भोग मोहप्रसन्न काम जोष महाशर्ष है—यह जो विष्णुत संभार-आवर है—इनसे जीवन्म जीने

(१) बभ्रुज्योती तृतीय स्तोत्र।

(२) वैश्वानर ने वामुताचार्य के 'बभ्रुज्योती' के तृतीय स्तोत्र के माध्य में विभिन्न पंचरात्र संहिता और पुराणादि से इस धन का प्रतिपादन करने वाले बहूतेरे स्तोत्र इकट्ठे निकाले हैं।

(३) २३८।१२४—३ (बंभवाली)

छुटकारा पायेंगे मही प्रदनों का विषय है।' इस प्रसंग में हम देख सकते कि देवी-शक्ति को यह विशेषता वैष्णव शास्त्रों में शक्ति सद्यमी देवी की ही विशेषता मानी है इसे भी हम भारतवर्ष के शास्त्रों में शक्ति देवी-शक्ति की ही विशेषता कह कर उल्लेख कर सकते हैं। धीरे-धीरे प्राचीन भारत में शक्तिवाद शिव-शक्ति के प्रसंगों के रूप में मिले गये हैं हम सभी जगह देखते हैं कि जीवों के दुःख से विगत-हुआ देवी जीवों की हित कामना के लिए, जीवों की मुक्ति का उपाय निर्धारित करने के लिए परमेश्वर शिव से सारे तत्त्व धीरे धीरे पंचांगों के बारे में प्रश्न कर रहा है देवी के प्रति पहले प्रश्न के कारण ही महेश्वर शिव देवी के सामन जीवमुक्ति के सारे तत्त्व धीरे धीरे पंचांगों के बारे में उपदेश दे रहे हैं। मध्यमग के कुछ कुछ बंसा प्रश्नों में भी हम प्राचीन भारत के बिहू रिवाजी पढ़ते हैं। बहुतेरे बौद्ध तथा भी इसी तरह से लिखे गये हैं। वहाँ भी शक्तिवादित मन्त्र-प्रज्ञा ही जीवहित कामना के लिये सारे प्रश्न कर रही हैं भगवान् महेश्वर-हेवन् या हेरक इन प्रश्नों के उत्तर में सारे तत्त्व धीरे धीरे पंचांगों की व्याख्या की है। अतएव जीवों की मंगल कामना के लिए शक्ति-विगमित देवी की यह जो सत्त्वबलमत्ता मातृमूर्ति है यह भी भारतवर्ष की ही साधारण मातृमूर्ति है। विशेष सम्प्रदाय में प्राकर हमने एक विशेष मूर्ति धारण की है।

धीरे-धीरे प्राचीन भारत में पंचांग नामक धीरे धीरे पुराणों का प्रवृत्त करने ही सद्यमी के इन विशेष रूप को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की है। धीरे-धीरे प्राचीन भारत में धीरे धीरे या सद्यमी के विषय में जिन प्रश्नों में शक्तिवाद है उनमें प्राचीन महाकाली के तीर पर रम्ययामातृ मुनि का

(१) तत्र स्थितं जगत्प्रदं जगत्-जगत्प्रदमध्यमम् ।

सर्वलोकविधातारं कामुदेवात्ममध्यमम् ॥

प्रसन्न निरस्ता देवी लोकाणां हितसाम्यया ।

पद्मदेवं महाप्रदं पद्मजा तमनुत्तमम् ॥

धीरे-धीरे

इति त्वं सर्वलोकस्य संतप्य मे हृदि स्थितम् ।

सर्वलोकस्य महाप्रदं कामभूमौ शुशुभमे ॥

लोभमोहपहपस्ते कामकोपमहाप्रद ।

येन मुष्यन् देवेश धर्यान् संतारसागरान् ॥४११६-१६

(२) वर्तमान पद्य के लक्षण An Introduction To Tantric Buddhism धीरे धीरे Obscure Religious Cult इन दोनों शब्दों को देखिए ।

‘सास्त्रदीप’ और यामुनाचार्य के ‘बतुस्तोकी’ और ‘बीस्तोत्ररत्न’ का उल्लेख किया जा सकता है। यामुनाचार्य के दोनों ग्रन्थों और यामुनाचार्य के सुप्रसिद्ध ‘गद्यमय’ का भाष्य मित्रा है ‘वैश्वानरिका-सिंह’ भी बेंकट नाम सभी भाष्यों का नाम ‘रघुस्वरत्ना’ है। इन रघुस्वरत्ना नामक तीनों ग्रन्थों में ही श्रीबीष्णवों का श्रीरत्न सबसे पक्की तरह विवेचित हुआ है। लोकाचार्य के श्रीबचन-सूचक’ ग्रन्थ के सम्बन्ध में भी बहुत विवेचन है। श्री के सम्बन्ध में श्रीबीष्णवों के सभी विवेचनों में हम देखते हैं कि विष्णु-सैक्य को प्राप्य रखकर लक्ष्मी प्राप्ति को प्राप्य के तौर पर ग्रहण किया गया है। यामुनाचार्य के बतुस्तोकी के प्रथम स्तोक ‘कान्तस्ते पुस्तोत्तम’ धारि स्तोकों की व्याख्या करते हुए बेंकटनाथ ने मित्रा है कि लक्ष्मी केवल विष्णु की सहस्रमित्री नहीं है ‘सर्वप्रकार धर्ममत्तानुष्ठा’ बमपत्नी है। यहाँ इस ‘कान्त’ शब्द के अन्तर ही लक्ष्मी का विष्णु के सम्बन्ध में सभी प्रकार की अनुस्पृता का भाव व्यक्तित हुआ है। ‘वे’ शब्द के अन्तर लक्ष्मी का सर्वमत्ता के रूप में प्रतिष्ठ का परिचय है और पुस्तोत्तम-कान्ता होना के कारण विष्णुश्रिया के तौर पर लक्ष्मी का व्येष्टत्व भी विज्ञाया गया है। विष्णु की माई लक्ष्मी की फलितविद्यया और गङ्गा बाहू है। यह श्री ही वेद की आत्मा (अथवा वेद ही श्री की आत्मा) होने के कारण यह देवी ‘वेदात्मा’ है विष्णुबचन निरालम्ब-रिणी के द्वारा ‘भगवद्-स्वल्प-तिरोधानकारण’ होने के कारण से ‘धर्मिका’ है। श्री ही प्रवृत्तिरिणी माया है। श्री-मत्तमायादि विषयों में विपरीत-बुद्धि धुँटि करने के कारण से ‘बयम्बोहिनी’ है और यही देवी कुलि-प्रवा श्री है। कहा गया है कि “यह देवी खुद बना करती है (विष्णु की) और संवित होती है (वेद पर सभी के द्वारा) सब कृम मुनयी है, सब कृम की विधित करती है अगिल शेषों को मर्द करती है और पुन के द्वारा संसार को बरमनी है अखिल संसार जितका नित्य प्रापय करता है और जो परमपर को प्राप्य करती है—वे ही श्रीदेवी है।”

(१) धार, बेंकटस्वर एण्ड कम्पनी (मद्रास) से प्रकाशित।

(२) ‘बह्वेवं व्यं प्रविशेवं वेदम्’ इति सौपर्ण-सृष्टिविचक्षणं वेदान्त माविशेवतापिष्ठासुत्वम् इत्यादि। भाष्य।

(३) धर्मशी श्रीमन्मार्गं च युष्मन्तं भुक्तमोक्षयि।

युष्मन्ति निजितं बोवं भुञ्जीति च युष्मन्तम् ॥

श्रीमत्तं चक्षित्तैर्नित्यं धर्मो च परं परम् ॥

बेंकटनाथ के भाष्य में पुन।

परमात्मा रूप प्रभुत्व की आधारभूता होने के कारण इस देवी को 'धर्मलंकाऽमृतचारु' कहते हैं। क्योंकि भगवान् पुरुषोत्तम इस देवी के भाग्य हैं, और उनकी (पुरुषोत्तम की) मूर्ति भी तदात्मिका है। इसलिये पुरुषोत्तम 'धीनिवास' और 'धीवर' है। यह देवी निर्वोपमपत्न्य पुत्रों का धारक होने के कारण भयवती है। ब्रह्मादि देवतापथ भी इस देवी की महिमा का कीर्तन नहीं कर पाते हैं परिमितज्ञानधरिण बाबा मनुष्य फिर उनकी बात कैसे करेगा ?'

सदमी के बारे में कोई-कोई कहते हैं कि ब्रह्म की जो बगवत्प्रादिका धरिण है वही प्रकृति के नाम से प्रसिद्ध है यह मूल प्रकृति ईशानी ही थी प्राणि नाम-सहस्र के द्वारा कीर्तित होती है और प्रकृति-पुरुष के समान कोई तीसरा सत्य न होने के कारण सदमी और नारायण ही यह प्रकृति-पुरुष हैं। कोई करते हैं कि सत्कारिमुक्त भवान् ही थी है कोई कहते हैं कि देव्यादि मोह्यादि के लिये भगवान् ही कमी-कमी पुत्र ही कान्ठा विग्रह ग्रहण करते हैं वही थी हैं। लेकिन श्रीवैष्णवमन्त्र इनमें से किसी भी मन्त्र को नहीं मानते हैं प्रसिद्ध पंचरात्रमन्त्र और पुराणमन्त्र सं एकमत होकर वे भी समझते हैं कि नारायण प्रकृति-पुरुषात्मक है लेकिन दोनों से ऊपर अवस्थित पुरुष है। ब्रह्म की ज्योत्स्ना की भाँति सदमी और नारायण धर्मधर्मों के तीर पर अवस्थित है। किसी-किसी के मतानुसार धंक्रुरोपासनात्मक की भाँति बिस्वोपादान-स्वरूप 'ब्रह्म' के कार्पोपकुत्र-स्वरूप-वैकैय ही स्वभावतः धर्मता परिणति धरिण द्वारा या उपाधिभेद के द्वारा जो निम्नाहृता-ध्यायन ग्रहण करते हैं वही थी के तीर पर परिणतित होता है ऐसा मत भी समीचीन नहीं है क्योंकि ब्रह्म के रूप-परिणामादि वेदान्त में ही निरस्त है 'यह थी विष्णु की अनप्रायिनी धरिण है 'धर्मिताद्य देववर त्रिमोह के लक्ष बुद्ध को ग्रहण करके जैसे अवस्थान करत है यह करवा सदमी भी उसी तरह अवस्थान करती है 'इन दोनों से श्रेष्ठ और

(१) पतोज्ञेमाधपरात्माया मूर्तिमन्त्र तदात्मिका ।

वही भाष्ययुत सत्त्वत-संरिता ।

(२) कान्तास्ते पुरुषोत्तम धरिणवति-गुण्योत्तमं ब्राह्मं

देवताया बिस्वोत्तरो धरिणिका भाषा अपम्भोहिनी ।

ब्रह्मगादिपुरुष-प्रसूतवितस्वहृत्तदागीणयः

धीरित्यत्र च नाम ते भगवति बुक्-कर्म त्वां वदम् ॥

अनु-ब्रह्मोको ब्रह्म हत भाष्ये म धृत ।

पूर्वोक्त भक्त समाधीला सकृद्वि के भातुल धीर ईश्वर के हितकामी ब्रह्मचारी कठोर पितृत्व का ही उत्सर्ग किया गया है। ईश्वर निग्रहा मृगह दोनों ही के कर्ता है लेकिन सकृद्वि धनुषहृद-स्वभावा है, इसीलिए ईश्वर-रूपा से सकृद्वि-रूपा थोड़ा है। सीता के रूप में मनुष्याकार में सकृद्विदेवी का जो प्रथम प्राकिर्भाव है वह केवल अपनी रूपा प्रकट करने के लिए है। सकृद्वि की रूपा जीव के प्रति धनुषहृद करने के लिए भी है और ईश्वर को प्रेम के बंध में करने के लिए भी है। संतोषरक्षा में ईश्वर को बधीमूठ कट्टी है और बिस्तेय रक्षा में जीव को बधीमूठ कट्टी है। स्नह और प्रेम के उपदेश द्वारा ही वे दोनों को बंध में कट्टी है। और उपदेश से काम न बनने पर शेतन जीव को वे रूपा के द्वारा और ईश्वर को सीधे के द्वारा बधीमूठ कट्टी है।

पहले ही कहा है कि सकृद्वि के बारे में भीषणियों का विवेचन पंचरात्र और पुराण के मतों पर ही प्रतिष्ठित है। भीषणियों ने इसके साथ षोडशी-भीषणियों की दार्शनिक दृष्टि जोड़ दी है षोडशी-मा धर्मविरासत षोडशी-विष्णु-शक्ति के रूपामय रूप को प्रभावता दी है। लेकिन इससे भी लक्षणीय एक सत्य हम भीषणियों के विवेचन में देखते हैं वह है नीलाबाह। हमने पंचरात्र कारवीर-दीक्षमर्ष पुराणदि में भी इस नीला-बाह का उत्सर्ग देखा है लेकिन हमने पहले यह भी देखा है कि यह नीला बाह मृष्टि-नीला है जो बिस्तेय-मृष्टि के रूप में अपनी विविध धर्मव्यक्ति करती है और उसे फिर बीजस्व में अपने ही अन्तरनि-क्षेप संहरण करती है, यही नीला का ठालर्य है लेकिन स्वस्वभूता शक्ति में किमी नीला वा धामास हमें यह लक्ष नहीं मिला है। हाँ सकृद्वि या कमला के 'रमा' रूप को हम बहुत पहले से ही पाते हैं। उन्हें विष्णुप्रिया विष्णुवस्तमा के रूप में भी पाया है लेकिन इन स्थलों पर भी सकृद्वि का प्रकटस्वभ करने नीला का कोण स्पष्ट वर्धन हमें कहीं नहीं मिलता है। हाँ पद्मपुराण के उत्तर रात्र में एक स्वभ पर हम स्वस्वभूता का एक प्रस्यष्ट संकेत है। वहाँ कहा गया है कि परम व्योमरूपा जो विष्णु का स्वभाव है वही विष्णु का 'भोगार्थ' है और अगिन जगत् नीला के लिए है। इस भोग धीर नीला के द्वारा ही विष्णु की विभूतिरूप की संस्तिवि है। भोग में ही उनकी

१-अवध बचन ।

२-अयोध्या बचन ।

३-योद्धा बचन ॥

नित्यस्थिति है। उस में अपने अणुधुम्यापारस्वी सीता का संहरण कर लेते हैं। यह भोज और सीता दोनों ही उनकी शक्तिमत्ता के कारण विद्युत हैं। यहाँ स्वप्न में नित्य स्वल्प-सीता ही उनका भोज है और विद्युत् सृष्टि ही उनकी बहिर्सीमा है। इस सबकी का अक्षमम्बन करने सीता की धारणा थीसम्प्रदाय के अन्तर और अधिक तिलक उठी है। यामुना-चार्य ने अपने 'भीस्तोत्ररत्न' में कहा है—

अपूर्वतानारसभाभिर्निर-प्रबुद्धया मुग्धबिरग्यसीमया ।।

तप्तानुबत्किण्ठपयविकासया प्रहर्षयंतं महिषी महामुञ्जम् ॥

॥ ४४ ॥

अपूर्व माना रनों और मावों द्वारा पंभीर रूप से प्रबुद्ध जो सीता है—जो सीता केवल मुग्धसीमा नहीं है विरग्य सीमा भी है—जो सीता नित्यसीता है—परादि काम (अर्थात् ब्रह्मा का धामुन्मत्त) जहाँ धन के अनुमान की तरह परित्यक्त होता है—उसी सीता द्वारा ही महामुञ्ज पुरोहितम-ईश्वरा अपनी प्रियतमा को हर्षवृत्त कर रहे हैं। इसी तरह के वर्णन परवर्ती काम के रगनिर्भर स्वल्पसीमा का ध्यान से लेते हैं।

श्री ब्रह्म २४ और उनका इन चार नामों से प्रसिद्ध सम्प्रदायों में मध्वाचार्य द्वारा प्रचारित मत ही ब्रह्म-सम्प्रदाय का मत माना जाता है। मध्वाचार्य रामानुजाचार्य के कुछ बाद के हैं। इस माध्य सम्प्रदाय ने श्री श्री-सम्प्रदाय की भाँति सकामीचार को एक तरह से मान लिया है और लक्ष्मी-नारायण को उगाम्य के तौर पर स्वीकार किया है। इस मत के अनुसार ब्रह्म की 'अवहित-वटन-वटीपमी' धर्षित्यशक्ति है परमात्मा में यही शक्ति सकामी के नाम से प्रसिद्ध है और ब्रह्मादि देवता से निरक्षयिका है। शक्ति चार प्रकार की होती है—धर्षित्यशक्ति धार्यशक्ति सहजशक्ति और परशक्ति इनमें धर्षित्य शक्ति ही 'परमेश्वर में सम्पूर्णा' है। परमात्मा में धर्षित्यशक्ति द्वारा घटनेवाला कोई कार्य नहीं रह सकता है ऐसा नहीं समझना चाहिए क्योंकि सृष्टि में ही है कि वे धारण रह कर भी दूर गमन करते हैं अणु होकर भी महान्

(१) भीवार्थ परमं ध्येन सीतार्थमभिर्न जपन् ।

भोजन भीद्वया विज्जोविभूतिद्वयसंतिविति ॥

भोगे निरपतिपतिस्ताप सीता संहरते क्वा ।

भीगे सीता उभी ताप धर्मते शक्तिमत्तया ॥ २२७।६-१

(२) मज्जतिद्वान्तसार—पद्मनाभमृत (बम्बई निर्भयतावर धेत ले पोषी के धारण में धारण गई है) २१ (अ) पृष्ठ ।

रतिपात्रता प्राप्त की है। विष्णु की कमी बुधरे के साथ रति नहीं है इसलिए रमा की भी कमी रतिवशात् नहीं है। परमात्मा की भाँति लक्ष्मी भी मानास्या है। यी मू बुधा धम्मूणी ही महालक्ष्मी रतिवा सीता जयन्ती सत्या रतिमनी धारि के मेर से वे बहु-भाकार है। इनमें 'रतिमिणा' रूप की ही खेप्टा है क्योंकि इस रतिवा में ही परमात्मसंयोग की प्रथम सुख की धम्मिभ्यक्ति होती है। धारि मुवाभिभ्यक्ति का स्वात होने के कारण ही रतिमिणा की विधिप्टता है। परमात्मा की भाँति लक्ष्मी भी अङ्गदेहरहिता है। बङ्गा-रकारि सभी धरीर की रमा बरते है इसलिए लर है धररवेहृत् के कारण लक्ष्मी धसर है उगका विहेहृकाय है। इसलिए लक्ष्मी नी धराहृता है। परमात्मा की भाँति लक्ष्मी भी सर्वसम्पदास्या है। प्रकृति सम्बन्धी विवेचन में ह्य देसते है कि प्रकृति के दो रूप है, एक बड़ परिवर्तनशील है और दूसरा नित्य और मुक्त-स्वरूप है। यह नित्य मुक्त-स्वरूप ही (सुखसत्त्व) धराहृत तत्त्व का तात्पर्य है। जैसे प्रकृति का एक नित्य मुक्त लक्ष्म्यात्मक स्वरूप है त्रिभुज और पंचभूत के भी जती तरह त्रिभुज नित्यमुक्त एवं लक्ष्म्यात्मक स्वरूप है। यह लक्ष्म्यात्मक त्रिभुज और पंचभूत के धारा ही वैकुण्ठधाम और उसमें स्थित जो सुख है उन सब की मृष्टि हुई है। त्रिभुज सत्त्व रज और तम के धारा ही देवता और मुक्त पुरुषगण का मृष्टि-स्थिति-विगास धारित होता है। व्योम-भाकासारि का जैसे एक धनित्य रूप है जमी तरह एक लक्ष्म्यात्मक (केवल लक्ष्म्यात्मक नहीं यह 'ईश-लक्ष्म्यात्मक' है) रूप है। वायु का भी नित्य प्राधारिकरूप लक्ष्म्यात्मक स्वरूप है। सतिम का भी इसी प्रकार लक्ष्म्यात्मक रूप है। प्रकृति और परम व्योम इन दोनों में बिरता नही की कया और मध्यरोवरारि की कया पुराजादि

(१) तदुक्तमतरेधमस्ये

एवमप्योपगतो विष्णु रतः स्वस्मिन् लक्ष्म्यन ।
 रमया रममात्पोर्ध्वे तत्त्वे र्ध्वे स्थितारमना ॥
 रमते नाम्यता क्वापि रतिविष्णोः सुखसमन ।
 रमया रमर्धं तस्माद्गमाया रतिपात्रता ॥
 र्धवास्या रतिवशात्त्वं विष्णो र्ध्वाम्पनो रति ॥

वही २७ (घ) श्लो ।

(२) वही, २३(ग)-२४(क) ।

(३) वही, सुत्र ७२ ।

(४) वही सुत्र ७३ ।

में मिलती है। ये सभी महाम्यात्मक हैं। दूसरी पीर प्लास्मोपमाप्य के मठानुसार लक्ष्मी मुक्त बीजों के लिए कामरूपा होने के कारण उनका उदकनलमन्त्र ही युक्तिमुक्त है। फिर मगबस्तोक वैकुण्ठदि में भी पृथ्वी है (नहीं तो वहाँ पुरी मूहदादि कैसे संभव हूँगे ?) वह पृथ्वी भी मुक्तस्वभावा पीर महाम्यात्मिका है। ईश्वर पीर लक्ष्मी में नित्य मयुर रस का प्रबलान है। इस ईश-लक्ष्मी का भी ज्ञान है वह सदा ही प्रयत्न है कभी प्रनुमित या साध्य नहीं है। पू बोलते हैं कि प्राकृत गृष्टि के मन्दर जो कुछ है वह सब नित्यगुणमुक्त के रूप में वैकुण्ठ में ईश-लक्ष्मी के मन्दर है।

बहुर्विष्णव-मन्त्रदाय में रुद्र पीर सनक सम्प्रदाय में हम लक्ष्मी की जबह भीष्मिका का प्राविर्भाव देवते हैं। गौरीय वैष्णवधर्म में इस राधातत्व का सम्यक विकास हुआ है। यह हम इस राधातत्व का ही अनुसरण करेंगे।

(१) लक्ष्मी कामरूपादुदकनलमन्त्रं यक्तम् । वही, ५ (क) पृष्ठ।
 (२) ईशतन्मो बभूवत्त- वही, २१५ सूत्र।

सप्तम अध्याय

श्रीराधा का प्राविर्भाव

श्रीराधा के विषय में विचार शुरू करने पर हम इसके दो पक्ष देखते हैं। एक है तत्त्व का पक्ष और दूसरा है इतिहास का पक्ष। वर्तमान के साथ कुछ तत्त्वाभित्ति धीरे से श्रीराधा का सम्मिश्रण हम बारम्बार सही से देखते हैं। श्रीराधा की परिपूर्णता बुध्दावनवासी गौड़ीय वैष्णवों के व्यास और मत्स्य में विकसित पड़ती है। लेकिन काव्य धारि में श्रीराधा का उल्लेख बहुत पहले से ही मिलता है।

पुराणादि के अन्तर्गत माना प्रकार से श्रीराधा का उल्लेख मिल रहा है। लेकिन हम अपने धार के विवेचन में सिद्ध करने की चेष्टा करेंगे कि किसी विशेष दार्शनिक मत या तत्त्वमत का अवलम्बन करके राधावाद की उत्पत्ति नहीं हुई है। राधावाद मुख्यतः पुराणमूलक भी नहीं है। हमारा विश्वास है कि पुराणों में राधा के जितने उल्लेख मात्र कम दिखाई पड़ रहे हैं उनमें से अधिकांश अर्थात्काल काम में जोड़े गये हैं। इनके बारे में तत्त्व धीरे तर्क की विस्तृत प्रवृत्तिका हम यथा-स्थान करेंगे। राधा के बारे में हमारे सामने जितने प्राचीन तत्त्व हैं उन्हींसे भयंता है कि साहित्य का अवलम्बन करके ही राधा का प्राविर्भाव और अभिव्यक्ति हुआ है। साहित्य धारि के उद्भवन इस के माध्यम से राधा का वर्तमान में प्रवेश हुआ है। वर्तमान में एक बार प्रवेश करने के बाद राधा का तत्त्वत्मक पोषण-बोझ करके विकसित होने लगा। इस तत्त्व के विकास में राधा सबसे ही 'कर्मिणी' है। अर्थात् बारम्बार सही के पहले तक विष्णुशक्ति के बारे में जो कुछ विश्वास बिना धीरे तक है, उस उर्वर भूमि पर माना अन्तःस्थित नपुर राधा का बीज जेया गया था उस बीज ने पुरानी भूमि से जोड़न संघट्ट करके अपने से बने मूल लौकिक धीरे भाग्य में अभिव्यक्ति बना कर गौड़ीय वैष्णव धर्म में पूर्ण विकास प्राप्त किया। इस राधावाद के विवेचन में इसमिसे पहले साहित्य धारि में राधा के प्राचीन उद्भव का अनुसन्धान करेंगे। इसके बाद मुख्यतः बुध्दावन के शैशवाचारियों के मत का अवलम्बन करके राधावाद किस प्रकार से वहाँ तक पूर्ण-वैशेषिक तन्त्र तत्त्व पर प्रविष्ट धीरे इस विषय में गौड़ीय शैशवाचारियों धीरे वैष्णव शक्तियों में वहाँ

किन्तु उक्त कितने धमिनबल का संभार किया है इसका विवेचन करेंगे।

(क) ज्योतिष-तत्त्व को रूप में राधा-कृष्ण की व्याख्या किसी किसी पंडित का क्या है कि राधा-कृष्ण तत्त्व में मूलतः कोई परमतत्त्व नहीं था यह मूलतः एक ज्योतिषतत्त्व है। बिष्णु सूर्य है वेद में सूर्य के धर्म में बिष्णु शब्द का प्रयोग प्रसिद्ध है। वह सूर्य स्त्री बिष्णु ही सबसे दोषहृत् और घाम इन त्रिपाठों में परिष्करण करते हैं। इन्हीं से त्रिपान् ब्राम्हण का प्रयोग उत्पन्न हुई होगी। कृष्ण इसी बिष्णु लोकों में उनके परलोक की कल्पना उत्पन्न हुई होगी। कृष्ण इसी बिष्णु के प्रकृत हैं अर्थात् सूर्य के रश्मि स्थानीय या प्रतिबिम्ब हैं। श्री योगशास्त्र राम से एक निबन्ध में लिखते की ज्योतिष की है कि पुराणादि में मर्गमुक्ति का जो बर्णन मिलता है उससे यह मनीषादि समस में घा जाता है कि वास्तव में वे एक ज्योतिष विशेषज्ञ से इसी सिद्धे धारित्यके प्रकृत कृष्ण का वे पहले प्राधिकार कर सके थे उन्होंने कृष्ण के नामकरण से लेकर सारी गिरा-बीजा का मार निबा। कृष्ण सूर्य का प्रतिबिम्ब है योही कारण है। इस के कृष्ण के जन्म से लेकर ब्रह्मणी धर्मीकिक सीमायें हैं वे सभी सूर्य के प्रतिबिम्ब और तारों को लेकर हैं। कृष्ण की समीक्षा की ज्योतिषिक व्याख्या करते हुए योगशास्त्र ने लिखा है—“राधानाम पुराणा या और बिद्याया का नामान्तर वा। कृष्ण-यदुर्बेद में बिद्याया धनुषाया धादि तन्मयी का नाम है। राधा के बाद धनुषाया का नाम है। अतएव बिद्याया नाम राधा है। धनुषीय में ‘राधो बिद्याये यह स्पष्ट कथन है। बिद्याया नाम का कारण यही है। इस नाम में पादर विपुल होना वा और बर्ष दो शाखाओं में बँट जाता था। यह ईसा पूर्व २३ वी की बात है। पादर इसके पहले नाम का नाम राधा था। राधा का धर्म है सिद्धि। यह नाम क्यों पड़ा या यह नहीं बताया जा सकता। वास्तव में राधा और बिद्याया एक ही गये हैं। महाभारत में बर्ष की बानु-माता का नाम राधा है और धर्म राधेम के नाम से संबोधित होने से।

“कार्तिकी पूर्णिमा में सूर्य बिद्याया की धीर, बिद्याया में रहता है राधा से सूर्य का बिलन होता है लेकिन धनुष्य बिलन होता है। सुपपत्

- (१) वास्तविक पत्रिका माघ १३४ बंदाय।
- (२) वो राधे का एक धर्म है ‘रश्मि’ अतएव सूर्य ही योग धीर तात्वा ‘मौरी’ है।

ताप और सूर्य वृष्टिबोध नहीं हो सकते हैं। प्राचीन काल के लोग
 समझते थे कि सूर्य की रोशनी से ही ताप का उत्पन्न है, चन्द्र की
 चमक है। वो एरिस है तोम इत्य है, योनी ताप है। कवि ने इत्य-
 एरिस को एरिस-मध्यस्थ और योनी-ताप को मंडलाकार में बताया है।
 चन्द्र पूर्ण नहीं होता तो वह इसी नाम से राधा की प्रति-नायिका बन सकता
 था। कारण यह है कि पूर्णमा में चन्द्र एरिस की विपरीत दिशा में
 रहता है। प्रतिनायिका के लिए धारक बननीय कवि को चन्द्रावती नाम
 नकना पड़ा था। प्रभास की रात को चन्द्र-सूर्य का मिलन होता है,
 इत्य गुणक से चन्द्रावती के कुंड में जाते हैं। योपेचचन्द्र ने इस विषय
 में और भी बताया है कि राधा रूपमानु की (धनप्रद में बुलमानु,
 रूपमानु) कथा है। रूपमानु रूप-राधित्व मानु एरिस है। इतिहास
 रूप राधिस में है। राधा की जन्मी का नाम इतिहास होना चाहिए वा
 पपपुराण में 'कीर्तिदा' नाम है। राधा के पति का नाम प्रायण (बाब में
 प्रायण) बोध है। 'प्रयने भव प्रायण' प्रयण में उत्तरायण के दिनों
 में ब्रह्म होने के कारण प्रायण नाम पड़ा है। वह उत्तरायण फलश्रुत्य
 अनुसक्त हुआ। इस तरह माना विद्याओं से विचार करके यानेचन्द्र ने
 ही किया है कि कुछ ज्योतिषतत्व ही कविकल्पना का धारण प्रहृण कर
 रूपक बर्मी हो गए हैं। परवर्ती काम के लोगों ने पौराणिक युग के इन
 ज्योतिष तत्व को मुला कर रूपक को ही सत्य मान लिया है और इसी
 प्रकार स्वकायय से बहुपस्तकित राधा-इत्य सीमा उपाख्यात का उद्भव
 हुआ है। योपेचचन्द्र के विचार में हम पुराचारि में ब्रह्म के ब्रह्म इत्य का
 उल्लेख पाते हैं उक्त काल ई ५ तीतरी गरी और राधा का काम
 ईसा की तीसरी सदी है।

राधा के बारे में प्राचार्य बोधचन्द्र का मत ध्यान देने योग्य तो है
 ही। वैदिक युग के विष्णु का सूर्य के साथ सम्बन्ध मत्वीनार नहीं दिया जा
 सकता। परवर्तीकाल में इस देखते हैं कि राधा की मत्तियों में 'विद्याना'
 मुख्य है। इनके प्रभावा सत्तियों में धनुराया (मत्तिया) ज्येष्ठा विद्या
 मत्ता प्रादि नाम हमें मिलते हैं। ब्रह्म की देवियों में एरिस का
 नाम टारका है (मत्तियोत्तर, और स्कान्दगीता के मत्तानुसार जीव-मत्तवामी
 के श्रीइत्यसद्वर्ग में उल्लिखित) चन्द्रावती का (चन्द्र ?) का इत्य
 नाम गोमना मिलता है चन्द्र में गोमना नाम का सम्बन्ध भी सत्तियों
 है। राधा और उनकी मत्तियों के प्रभावा हम देखते हैं कि इत्य के
 विचार की कई स्थितियों का नामकरण भी कई ब्रह्म मत्तियों के नाम के

अनुसार किया गया है जैसे बागुदेव की पत्नी रोहिणी बलदेव की पत्नी रेवती इत्यादि की बहुत विधा (सुमहा) प्रादि । इन्हें देखने से लगता है कि पौराणिक युग में बलिष्ठ इच्छुनीसा के मूल में भी उपयुक्त विविध प्रकार के ज्योतिष तत्त्वों का काफी प्रभाव होमा सम्भव है लेकिन इस विषय में और भी घनेक स्पष्ट तथ्यों के न मिलने से गोपियों और राधा को लेकर इच्छु-श्रेय के जो समूह उपाख्यान मिलते हैं उन सबको इने-विने नहीं मान लिया जा सकता । लेकिन श्रीकृष्णमात्मामी के नाटक प्रादि पत्र में बहु बात नाक समझ में आ जाती है कि राधा का जो तारकाव्य है उसमें उनका पवित्र परिचय था । उनके बलिष्ठोचित साहकार बर्षन के अन्तर इनके बहुनेरे परिचय मिलते हैं । सतितामायक (प्रथम अंक) में हम देखते हैं कि राधा का दूसरा नाम ताटा है—ताटा नाम लोपोत्तरा कथ्यथा । दूसरी जगह राधा को लेकर एक मुखर वचन हमने है—

दनुजबधनबल-पुच्छरे चास्तारा ।
 जयनि जगदपूर्वा कवि राधाविधाता ।
 "दनुजबधन की इच्छु के बलवपी पाकरा में जो राधा नामक एक जयदपूर्वा चारारा है—उनी की जय । विहायमायक नाटक में मुख-बार-दमोक में देखते हैं—

सो ज्ये बलमतमय-समियाय यस्मिन्
 पूर्ण तबोरतरमयोदुनबागुरामम् ।
 गङ्गहा रक्षितया तद्द राधयाली
 रंगाय लोपमयिता निर्दिष्टा पीर्यमाती ॥
 बैंगाम पूषिमा में राधा या विगाया नारा के माय पूषिमा का प्रादि भाव देखते हैं । दूसरी ओर इच्छुमिलन के लिए इसी पूष्यमाती के माय राधिया का प्रादिर्भाव । इस तरह के इच्छुनात रूपमात्मामी की रचना में घनक मिलने हैं ।^१ इनके अलावा इन नाटकों में एक और चीज दिगाई

- (१) प्रति बैंगामपूषिमायी प्रत्यो विगायाजगदत्राय लोप्यबागु । विहायमायक
 बलवपी की टीका ।
 (२) सुनतीय—इसमें राधाजगदत्राय जानन विघर्षक मधुरीकृत्य
 मायबीया बोधवाणी । —दानकेलोकोमुहो ।
 और भी—
 सतिता—सह अष्टरहि बन्धे बहतिर्ध विहायहति विज्याने ।
 विहायहि विमलिकरबाए सतिपत्रज्ज बाएयो मुपये ॥
 बदा—सहि राधाविधय्या ।
 इच्छु—यकनिर्धं यैंगामपर्यायी मायवराची ।—विहायमायक सत्यन अंक ।

पड़ती है यह यह है कि राधा बहुतेरे स्वर्गों में सूर्य की उपासिका है। अठेय योगेश्वर ने 'अन्नावली' के सम्बन्ध में इमर जो कृप कहा है उस से हम गोस्वामी के नीचे सिद्धे दो स्तोत्रों का मिलान किया जा सकता है—

पद्या । इमा सर्वं मन्नाधि । तन्नाहि—

विष्णोवन्ती राधा वैकविन्द्यई ताव तारमासीहि ।

गणगे तमातसाये न नाव अन्नावली पृक्कुरद ॥

सन्निता । (विहृत्न संस्तुतेन)

सहृत्तरि नृपमानुषाया प्रादुर्भवि वरत्विषोपगते ।

अन्नावलीघताम्पि मन्नाधि विभूतकान्तीनि ॥

(ख) विविध पुराणादि में राधा का उल्लेख

विविध पुण्यों में विविध प्रसंगों में हमें राधा का उल्लेख मिलता है लेकिन इसके अन्दर विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जिस पुण्य में श्रीकृष्ण की सब लीला का सबसे विस्तृत और मञ्जूर वर्णन है और जिस पुण्य में राधात्मक और कृष्णरततत्व की स्थापना में बौद्धीय-वैष्णवों ने प्रधान भक्तत्वज्ञ बनाया है, उस भायवत-पुराण में राधा का स्पष्ट कोई उल्लेख नहीं है। लेकिन फिर भी बौद्धीय गोस्वामियों ने भागवत में ही राधा का आधिष्ठात किया है। भायवत के सबसे स्वल्प में राधा लीला के वर्णन में हम देखते हैं कि राममण्डल में कृष्ण अपनी एक शिष्यता गोपी को लेकर भायवत हो गये हैं और दूसरी गोपियों को छोड़ में उन्होंने उस शिष्यता गोपी को लेकर विविध प्रकृत की शीला की थी। कृष्ण को बुझते-बुझते विद्वान्मूर्ख गोपियों ने कृष्णवन के एक वन में श्रीकृष्ण के अन्वय-आकृष्ट घाति मुक्त वरविह्व के साथ एक और बचमाना वा परविह्व देखा और इस परम सीमाप्यवती कृष्ण की शिष्यता को लक्ष्य करके कहा था—

अनयात्कितो नूनं भयवान् हरिरीरवत् ।

यन्तो विहाय गोविन्द प्रीतो मामनयइह ॥ (१ । १ । १२४)

"इसके द्वारा (इस रमणी द्वारा) निश्चय ही भयवान् ईश्वर हरि घात विह्व हुए हैं इसलिये गोविन्द हमें छोड़कर प्रसन्न होकर इसे हम निघन्ती अयह से भाये हैं।" इस "अनयात्कित" शब्द के अन्दर ही राधा का नाम

बता । सनातन गोस्वामी और बीच गोस्वामी का अनुसरण करने इच्छा रख
 कविचन्द्र महाशय ने भी खरिठामृत में कहा है—

इच्छावाच्छास्त्रि क्य करे घाराबने ।
 घटपद राधिका नाम पुत्रमे बाबाने ॥ घादि ५
 राध बागु यहाँ 'परिचरन' या 'सेवन' के अर्थ में ली गई है । हम ने
 पहले देखा है कि परिचरन या सेवन के अर्थ में भी बागु से ही
 भी अर्थ की भी व्याख्या करन की जरूरत थी है । लेकिन यह बात
 बकर है कि भायबतकार ने यहाँ इच्छाप्रियतमा एक प्रथमा गोत्री का
 उल्लेख किया और इसीसे उनके राधा नाम का प्रमाण दिया । लेकिन
 इस अर्थ में साफ-साफ राधा नाम का उल्लेख क्यों नहीं किया इस बात
 में भी संका हो सकती है और यह अर्थ स्वामाधिक है कि इच्छाप्रिया
 प्रथमा गोत्री के राधा नाम से भायबतकार गायक परिचित नहीं थे ।
 लेकिन राधा नाम का व्यवहार भायबतकार करे या न करे, गोपियों में
 एक गत्नी इच्छा की प्रियतमा भी यह मत्त भागवत के राम अर्थ में बहुत
 स्पष्ट हो उठा है । इच्छा की गोपियों के साथ बुद्धावन लीला की प्रथ

(१) यहाँ 'अनया आराधित' या 'अनया राधित' इन दोनों प्रकार के
 पाठों की स्वीकार किया जा सकता है । दोनों पाठों का अर्थ एक ही
 और गोस्वामी ने इस श्लोक की टीका में कुछ भी नहीं लिखा है । लेकिन
 सनातन गोस्वामी ने अपनी बच्चबनोपनी टीका में कहा है—
 "अनया आराधित आराध्य बानीकृत न स्वस्मादि । राधयति
 आराधयतीति राधेति नामकारणं च दर्शितम् ।"
 बिबनाब बच्चबनों ने कहा है— "भूतं हरित्यं राधित । राधा इत
 भाव्य इत्यादि ॥

(२) लेकिन इस विषय में बिबनाब बच्चबनों ने अपनी टीका में
 कहा है कि गोपियों ने परबिद्य से ही इस इच्छा-प्रिया विदेव गोत्री की
 बच्चबनोपनी के रूप में पूजा किया था । लेकिन पूजा कर जो
 होते नहीं पूजा है इसका अर्थ अर्थ के बहाने माने राधा के गुरुद्वारा
 ने उनका नाम दिया गया था । और नामनिर्दिष्ट के द्वारा राधा के
 लीलाय की ही अर्पित करके उन्हें 'अनया आराधित' धारि कहा है ।
 —परबिबनोपनी तां श्री बच्चबनोपनी परिचित्यान्तरां बस्ता बहुविध
 गोपीबनोपनी तत्र बहिरपरिचयनिर्दिष्टव्यस्तया गुरुदस्तामनिर्दिष्ट-
 गता तस्या लीलायं लक्ष्यं भागवतस्य च ।

चारणा पहले पहल जिस-हरिवंश में मिलती है इस हरिवंश के विष्णुपर्व के बीसवें अध्याय में संक्षेप में गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की उस लीला का वर्णन है, वहाँ किसी प्रियतमा प्रबाना गोपी का उल्लेख या धामास नहीं है। लेकिन प्राचीन पुराणों में अन्यतम विष्णुपुराण में विषयवस्तु धीरे वर्णन की दृष्टि से भगवत पुराण के अनुसंग-उप बर्णन है धीरे यहाँ भी उसी प्रियतमा 'वृत्तपुष्पा महाभवा' गोपी का उल्लेख मिलता है। यहाँ 'धन्याराचित भाद्रि स्मोक' की अपहृ निम्नलिखित स्मोक मिलता है—

धन्योपविश्य सा तेन कापि पुणैरभङ्गता ।

धन्यजग्मनि सर्वात्मा विष्णुरभ्यर्चितो मया ।

'यहाँ बैठकर कई रमणी उस कृष्णद्वारा पुष्पों से धमकता हुई है जिस रमणी के द्वारा हमारे जन्म में सर्वात्मा विष्णु अभ्यर्चित हुए हैं। यहाँ 'राचित' या 'पाराचित' धम्य की जगह 'अभ्यर्चित' धम्य मिल रहा है। इससे पुराणों में उस का इस प्रकार का वर्णन धीरे कृष्णप्रिया किसी गोपी विशेष का उल्लेख नहीं मिलता।

पद्मपुराण में एकाधिक स्वप्न पर राधा का नाम है। रूप गोस्वामी ने अपने दशमस्कन्ध-नीलमणि स्कन्ध में धीरे कृष्णदास कविराज ने अपने पौतव्य शरितामृत में पद्मपुराण से राधा नाम का उल्लेख उद्धृत किया है। लेकिन पद्मपुराण से गोस्वामियों ने एक-आध स्मोक उद्धृत किये हैं धीरे भावनात्मक प्रवर्तित पद्मपुराण में विभिन्न स्वप्नों पर राधा नाम की एक प्रकार से बहुलापन है इसीमें हमारी शंका धीरे भी जटिल हो जाती है। फिर हमने है कि जयन्ती-व्रत माहात्म्य-स्थापन के प्रसंग में एक बार राधाष्टमी का उल्लेख मिलता है। इसके बाद जामीगर्भे व्रत में राधाष्टमी व्रत का माहात्म्य बतलाया गया है। इस राधाष्टमी में प्रेमानुराग वृद्ध भी नहीं है, इस व्रत को करने से गोहत्या ब्राह्मण-हत्या स्त्री-हरण आदि पापों से बड़ी घामानी से छुटकारा पाया जा सकता है धीरे धनन्त मृत्यु प्राप्त किया जा सकता है यही कहा गया है। लीलावती नामक एक केया राधाष्टमी व्रत करने जिस प्रकार विष्णुपुर मो-मोद निषाम की अचिरारिणी बनी थी इसका भी वर्णन है। इस वर्णन से

(१) इन्होंने पद्मपुराण से निम्नलिखित स्मोक उद्धृत किया है:—

यथा राधा प्रिया विष्णोरतरया कुण्डं प्रियं तथा ।

सर्वगोपीषु सर्वथा विष्णोरत्यन्तवत्सलमा ॥

प्रकार एक प्राचीन पाश्चिमात्य-ग्रंथ नहीं मान सकते इनीसिय पाश्चिमात्य पर विचार करते समय हमने इन ग्रंथ का कोई उल्लेख नहीं किया। इस ग्रंथ के मयस्कार इसीक में हम देखते हैं—

नगमी धरत्त्वती दुर्गा मादिनी राबिका पय ॥ १।२
'राबा' शब्द के तात्पर्य के सम्बन्ध में कहा गया है—

रायभोञ्जाराणाद् भक्तो भक्तिं मुक्तिञ्च राति स ।
पायभोञ्जाराणैश्च वास्त्येव हरे पश्य ॥ २।३।३८

यहाँ 'रा' शब्द के उच्चारण से ही मन्त्र हुआ है और वह भक्ति और मुक्ति को प्राप्त होता है और 'भा' के उच्चारण के द्वारा हरि के पर ही घोर बाधित होता है। राया शब्द की इस प्रकार की व्युत्पत्ति और तात्पर्य परबर्ती काल में भी कुछ कथ्य मिलता है प्राचीन काल में भी या या नहीं इसके बारे में हमें संदिग्ध है। माभारतयत्त देना जाता है कि कोई बार पय की कोटि में धारत बहुत दिना तक भक्ति घोर विस्वास के द्वारा परिपुष्ट होने के परवान् ही इस प्रकार की शब्द-व्युत्पत्ति स्पष्टी बाने लगती है। अत्याय्य न्यनों पर राबिका की जो नगमी प्रवृत्तियाँ निमग्न हैं उनमें यू दिगार्थ पड़ता है कि राबिका पयान्ति है, वे ही निमग्न-निमग्न येशों में निमग्न-निमग्न पर्य-मलया में निमग्न-निमग्न देवी के रूप में पाबिर्भूत हानी है मार्कण्डेय चरणी में कहा गया इनीया का मयापरत देवी और इस परा-भक्ति राबिका को धर्मिय माना जा सकता है।

(१) तुलनीय—पड़वती महाविद्या कथिता तत्रसिद्धिदा ।
प्रकवाद्या महाभावा राबा लक्ष्मी सरस्वती ॥ २।३।१२

- (२) प्राजापित्यात्री या देवी रायाकपा च सा मुने ।
- रत्नराबिप्यात्री या देवी स्वयमेव सरस्वती ॥
- बद्धपित्यात्री या देवी दुर्गा दुपतिनामिनी ।
- प्रवृत्ता या देवी हिमलिदे बन्दा नाम्ना च पार्वती ॥
- तर्कपायाय देवता तेत्रानु तत्रचित्ता ।
- संहन्त्री सर्वैभ्यस्तं देवदेवी विवर्दिनी ॥
- स्वल्पपात्री च तेषां च श्री विव्रगनाभारि ।
- सुगुणियाया कया निद्रा दुष्टिः दुष्टिः कया तथा ॥
- लज्जा भ्रान्तिरश्च सर्वैराकपिदेवी प्रकीर्तिना ।
- मनोऽपित्यात्री देवी सा ताबिनी विप्रदायिनी ॥
- राया कार्यानाम्बता महालात्री प्रकीर्तिता ॥
- पेरवर्षापित्यात्री देवीःशरत्पत्र हि शारव ।
- तर्क्या नित्युत्थया च श्री पत्नी श्रीरोहमबनीःपुत्रा ॥
- मर्त्यताबीरव सा देवी पत्नी श्रीरोहनायिन ।
- तर्क्या स्वर्गताबीरव पत्नी ताकादीनां पुत्रे यद्दे ॥
- स्वर्ग देवी महालात्री पत्नी संकष्टनायिन ।

पुरुषार्थ में हम सखी का जो विभिन्न वर्णन देना चाहिए, मारद-संघराज में राजा के वर्णन में यह मिसला और भी बढ़िज हो गई है ।' इन वर्णनों को पढ़कर लगता है कि यह इतने प्रेमोपासकान-संनूता सोपी राविका को मारदवर्ण को सर्वस्वकपा शक्तिमूर्ति के साथ एक कर देने की कुछ परवर्ती काम की धनियुज केप्या मात्र है ।

मत्स्य-पुराण के स्तोकार्य में भी राजा का उल्लेख मिलता है वहाँ कहा गया है कि रुक्मिणी द्वारावती में है और राजा है बुन्वावन के वन में ।

(१) श्रीकृष्णो रति या राजा पद्मानाभेन सम्भवा ।

महामतकीश्व ईकण्ठे ता च तारायनोरति ॥

गररखनी ता च देवी विभूया जवनी वरा ।

श्रीरोरतिशुक्लया वा विष्णुरति च मायया ॥

ताविभी ब्रह्मणे लोके ब्रह्मवला-स्वतस्विता ।

पुरा सुरांभी तेजःशु प्राविभूत्वा यथा हरेः ॥

स्वर्प मूर्तिमती भव्या जघान वैत्पर्णप्रकान् ॥

दवी राज्यं महेन्द्राय कृत्वा निष्कण्ठं वरम् ॥

कालेन ता जयवती विष्णुवाया तवसती ।

धभूव दलकया च वरं कृष्णामवा मुने ॥

त्वस्त्वा देहं विगुर्यं मर्मव निष्कया मुने ।

श्लुभा माकली कया देवा कया वभूव ता ॥

प्राविर्भूता पर्वते ता तेनेयं वावती लगी ।

सर्वप्रस्तित्वकया ता दुर्गा दुपतिमाशिनी ॥

वद्विस्वकया वरवा कृष्णस्य परमप्रमन ।

सम्पद्वपेग्रपेहे ता स्वर्पतन्मीस्ववविभी ॥

कर्णं लक्ष्मी राजगोहे गृह्णतन्मी गृहे गृहे ।

वृषक वृषक च सर्वत्र पामेत् प्राव देवता ॥

कम लप(संभव ?) स्वकया ता कयाकया च भूमिषु ।

सम्कया च भवति घोभाकया विभाकरे ॥

प्रभाकया भाकरे ता मुनेश्वे च सर्वत ।

बद्धो सा बाहिका शक्तिः सर्वं शक्तिरथ जगुषु ॥

शुक्तिवार्त्तं च सा देवी मृतग्रहनिरीवरी ।

वसता भवेन्महोविष्णोः स एव च म्भान् विरम् ॥

इत्यादि २।६।१४-२२

(२) रुक्मिणी द्वारावत्यां तु राजा बुन्वावने वने । मानन्वावन सं०

हमने सम्बन्ध में कहा गया है कि नारे मम्मयपुराण में नहीं भी बिष्णु व इन्द्रावतार में ब्रह्मसीता का वर्णन नहीं है। यहाँ तक कि हमने पहले ही बिनाया है कि बिष्णु-सक्ति मन्त्री का वर्णन भी मम्मय-पुराण में बहुत कम है जहाँ मन्त्री का उल्लेख है वहाँ भी भारतवर्ष की श्री भी धनश्री सक्ति-विद्या के साथ एक सक्तिदेवी के रूप में है वहाँ भी बिष्णु में उतरा प्रयत्न सम्बन्ध कम है। इस हालत में प्रभावक स्वीकार में राधा का उल्लेख हम प्रामाणिक मानन में प्रथमर्ष है। हम यह भी देखते हैं कि पद्मपुराण के मूर्च्छि-अण्ड में यह उल्लेख मिल रहा है। वहाँ बिष्णु के द्वारा सर्वव्यापिनी साक्षिणी के स्वर में कहा गया है कि सक्ति-रूप यह साक्षिणी भारतवर्ष की तावन् तीर्थ-भूमि में निम्न-निम्न स्त्रीभूमि बाण करके प्रकल्पान कर रही है श्री उनी प्रथम में कहा गया है कि के द्वारा में रक्षिणी कृपावन में राधा है। कृपावन की राधा यहाँ पुराण-त्रादि में बर्णन बहुतेरे देव-देवियों में एक देवी है। इस प्रकार वायु-पुराण बराह-पुराण भारतीय-पुराण साहि-पुराण प्रभृति पुराण

- (१) साक्षिणी पुण्ड्र में साक्षिणी बाराहनी व बिनामाली मैमिय व निगपारिणी, प्रयाग व कलिका देवी, पम्बरावन व कामुदा, मानस में कुम्हवा प्रम्बर में बिदवटाया, योगल में योगिनी, मम्बर में कामबाहिनी केरव वन में महोदटा, हस्तामपुर व जयन्ती वाण्यकुम्बर व पीरो मनपावम व रम्भा, एराण्ड वातन व जयन्ती वाण्यकुम्बर व पीरो बर्बिक व पुपहस्ता केदार व मार्यदाविहन, हिमात्य में लम्बा, गोरभ में मरुवातिवा स्याभीषर में भवानी विम्बर व विम्बरविवा भौतीन व मापवी देवी प्रदेवर व भद्रा बराहगिरि व जया वमतालय में वमसा लकोटि में वराभी पार्यवर व कामो वामिय व बर्णिना बरकोट व मंगलावरी है इसी प्रकार श्री भी बीम जगहों व बीम देवियों का उल्लेख करके साक्षिणी देवी को इतरकनो में रक्षिणी श्री कृपावन में राधा कहा गया है। (बंगवामी) १७१८२—१९६।
- (२) राजा-विनाय-रतिक इन्द्रावर्ष पुरर्ष परम् ।
 भतवानरिख देवेभ्य- यनल्लुगोबरीज्यम् ॥
 धानवापय मं १ ४१२०

- (३) तत्र राधा समाहित्य इन्द्रमदितलटकारणम् ।
 लनाम्ना विदितं कुण्डं कर्त्तं तीव्रमदूत ॥
 राधाकुण्डमिति र्वायं सर्वपापहृत् समम् ॥
 (बंगवामी) १६४१११ २४
- (४) (बंगवामी) ११६३ ४४
- (५) इन्द्रोत्थानो के लपुत्रावधनायुन से उद्भूत स्त्री-
 मैनीत्ये बुविरी यन्वा तत्र कृपावन पुरी ।
 तत्राधि पारिवा पात्रं तत्र राधात्रिया मम ॥

में एकाग्र स्तोत्रों में राधा का उल्लेख मिलता है, इस तरह के एक-आध स्तोत्रों के आधार पर कुछ कहना कठिन है, इनमें कौन-सा ठीक है और और कौन-सा प्रक्षिप्त है इसे निर्दिष्ट रूप से नहीं बताया जा सकता है।

राधा का प्रबलम्बन करके ब्रह्मवैवर्त-पुराण में इष्यतीता वाक्यावली भङ्गीसी हो उठी है। लेकिन कुछ की बात है कि, प्राञ्जल प्रचलित ब्रह्मवैवर्त-पुराण के बारे में ही हमारा संशय और अभिप्राय सबसे अधिक है। बहुतेरे पंडितों ने प्राञ्जल प्रचलित ब्रह्मवैवर्त-पुराण की प्रामाणिकता के बारे में संदेह प्रकट किया है।^(१) संदेह का पहला कारण यह है कि मत्स्य-पुराण के दो स्तोत्रों में ब्रह्मवैवर्त-पुराण का जो परिचय है उससे प्राञ्जल प्रचलित ब्रह्मवैवर्त-पुराण से आधार या प्रकार किसी भी दृष्टि से मेल नहीं है। दूसरी बात यह है कि तारे ब्रह्मवैवर्त में राधा इष्य की प्रमत्तीता की भरमार है लेकिन वैष्णव गोस्वामियों ने इस पुराण की राधातीता का कोई उल्लेख क्यों नहीं किया? ब्रह्मवैवर्त-पुराणकार में एक और अभिनवत्व है। उन्होंने बड़े भूमनाम से राधाइष्य का ब्याह भी करवाया है। स्वयं ब्रह्मा इस ब्याह में कन्यादान-कर्ता है। राधा का प्रबलम्बन करके इस प्रकार के बहुतेरे प्रकार के उपाख्यान और वर्णन बहुधा ऐसे भौतिक लिम्पस्टर पर उतर आए हैं कि प्राचीन पुराणकारों के लिए भी यह हमेशा शोभन या स्वामाधिक नहीं लगा।

ब्रह्मवैवर्तकार ने मानो कुछ उपाख्यानों का बहुत ज्यादा बड़ा बढ़ाकर वर्णन किया है। यह घातिघाय्य भी बहुधा संशय का कारण होता है। एक दुष्टान्त दे रहा हूँ। जयदेव के गीतगोविन्द काव्य के पहले स्तोक को पढ़ने से भली-भांति मानस ही जाता है कि कवि ने राधाइष्य तीता के एक विशेष उपाख्यान को लक्ष्य करके ही इन स्तोक की रचा है। इस स्तोक में बर्णित उपाख्यान का कुछ विसृत प्राचीन रूप पाने की हमें इच्छा होती है लेकिन ब्रह्मवैवर्त-पुराण में इस उपाख्यान का जैसा वर्णन दिया गया है उसे पढ़ने से समझा है कि बरकनी काल के किंगी ध्यपिन ने हमारी घाटीला भी बात समझकर मानो बहुत कुछ खून रंग से उस घाटीला की निवृत्ति की चेष्टा की है। हम नारद-वचन में 'राधा'

(१) बंकिमचन्द्र ने कहा है—'इसकी रचनाप्रणाली प्राञ्जल के ब्रह्मवायों जैसी है। इसमें घटी, मनता की कथा भी है'।
(इत्थनचरित्र)

(२) ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीहृत्सुत-अध्याय १२ अध्याय (वैपरीणी)।

राष्ट्र की पुण्यकार प्रवृत्त जो स्वयंसेवकप्रवृत्त व्युत्पत्ति हम देख पाए हैं ब्रह्मसंहार-पुराण में भी राधा राष्ट्र की व्युत्पत्ति नामा बही श्लोक बिछाई पड़ता है। इन कार्यों से ब्रह्मसंहार-पुराण में राधा उपासना का प्राचुर्य और राधा माहात्म्य-स्थापन के बारे में धार्मिकों के बाबजूद ब्रह्मसंहार-पुराणबिना राधा के उच्च या तत्त्व किसी का भी धर्मसम्बन्ध कम का बिना उल्लाह हमारे धर्म में नहीं दिखाई पड़ता है।

हम देखते हैं कि पौड़ीय शैलियों ने प्रसिद्ध पुराणों में केवल पद्मपुराण और मत्स्य-पुराण में राधा का उल्लेख माना है। दूसरे पुराणों में राधा उक्त तत्त्व राधा का प्रयोग नहीं हुआ था। इसीलिए रूपगोस्वामी जीब गोस्वामी और कविराज मान्दामो ने भिन्न-भिन्न स्मृतियों उक्तों और उपपुराणों में राधा की प्राचीनता का प्रमाण जुटान की चेष्टा की है। इन गोस्वामी ने अपने उक्तनीतमणि व राधा प्रकरण में कहा है कि "गोपालोत्तर तापनी में राधा नामों नाम से बिधुता है। ऋषिपरिनिष्ठ में राधा मायके नाम उद्धृत है।" तत्त्व की वधा का उल्लेख करके रूप गोस्वामी ने कहा है—“ह्यारिणी जो महाशक्ति है—वा सर्वशक्ति बरीपणी है—बही राधा तत्त्व मायका है तत्त्व में यह बात ही प्रनिष्ठित है।” जीबगोस्वामी और इन्द्रदान कविराज ने 'बृहद् गौणमीय तत्त्व' में भी राधा के बारे में एत श्लोक बूझ निकाला है। जीबगोस्वामी ने

(१) राधादेवकालाद्भक्तो इत्यादि - ब्रह्मसंहार - महानिष्ठ, ४८१४ (बंगवामी)

- (२) राधा कथ्याने बने इति मत्स्यपुराणाय । जीबगोस्वामी इति 'ब्रह्मसंहार' की टीका ।
- (३) गोपालोत्तरतापन्यां यद् गान्धर्वोति बिधुता । राधेत्यर्परिनिष्ठे च मायकेन सहोरिता ॥ जीबगोस्वामी और बिबलाब कविराजों की उक्तनीतमणि की टीका में और जीब गोस्वामी ने 'ब्रह्मसंहार' की टीका में 'ऋषिपरिनिष्ठ' व इति श्लोकों को उद्धृत किया है— 'राधया मायको देवो मायकेन राधिय' ।
- (४) उक्तनीतमणि राधाप्रकरण ।
- (५) देवी इन्द्रायै प्रोक्ता राधिका वरदेवता । सर्वगौणमीयौ सर्वशक्ति सम्पत्ति परा ॥ जीबगोस्वामी की 'तत्त्वमायकायुग' 'ब्रह्मसंहार' की टीका और इन्द्रदान कविराज के 'मत्स्य-वर्तितान्त' आदि राधा परिचय देणिय ।

‘ब्रह्मसंहिता’ की टीका में ‘सम्प्लोहन तन्त्र’ से भी राधा के सम्बन्ध में एक श्लोक बूझ निकाला है।^१ बंभवासी संस्कारण के देवीमायवत में बड़ोटे स्थलों में राधा का उल्लेख मिलता है। ‘महाभागवत’ उपपुराण में भी राधा का उल्लेख दिखाई पड़ता है।^२ इसके अलावा ‘राधा तंत्र’ जैसे जो ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनका कोई विशेष उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं।

(ग) प्राचीन साहित्य में राधा का उल्लेख

पुराणों-उपपुराणों में श्रुतियों-स्मृतियों तन्त्रादि में राधा के जो उल्लेख हैं उनकी प्राचीनता और प्रामाणिकता बिलकुल बढ़ा देने की हमें हिम्मत न होने पर भी इन तन्त्रों-ग्रन्थों के आधार पर किसी विशेष ऐतिहासिक निष्कर्ष पर पहुँचने में भी हम असमर्थ हैं। कृष्ण की प्रेम-बहानी से ही राधा का उद्भव हुआ है—इस मौलिक सत्य को मान लेने पर भागवत पुराण में वहाँ उस-वर्णन के उपलक्ष्य में प्रबाल गोपी का उल्लेख है वहाँ राधा का उल्लेख मिलने पर हम उसे बड़ी आसानी से प्रामाणिक मान ले सकते थे। बिन दूरची श्रुतियों-स्मृतियों-तन्त्रों में राधा का उल्लेख किया गया है उन ग्रन्थों के रचनाकाल के बारे में निश्चित कर स कष्ट नहीं कहा जा सकता है।

छारी शर्तों पर विचार करने पर हमें लगता है कि वैष्णव धर्म वर्धन और साहित्य में राधा का प्राविर्भाव और नमस्कार मूलतः भारतवर्ष के साहित्य का अवसम्बन्ध करके हुआ है। लगता है, जन के चरवाहे कृष्ण की गोपियों के साथ प्रेमशीला पहले आभीर जाति में कुछ चरवाहों के पीठों के ठौर पर बिछरी हुई थी। ‘अपम आभीर वपुषी’

(१) यथाभ्या नाम्नि दुर्गाहं गर्भेर्गुणवती ह्यहम् ।

यईमहात्म्यहातस्वी राधा म्रिया चरत्तया ॥

(२) यहाँ बिल्लुतस्वो कृष्ण-राधा ब्रह्म-तरस्वती, शिव-गौरी इन सब को अभिन्न मानकर वर्णन किया गया है।

कदाचिद् द्विभूत्वा च कामे च समतातया ।

रायया सहितारुस्मान् कदाचिन् कृष्णरूपिणी ॥

कामाकापिपता कामी कदाचिद्ब्रह्मरूपिणी ।

कदाचिद्विद्वत्त्वा च पीरी कामाकर्मस्वित्ता ॥ इत्यादि ॥

(३) तुलसीय—बाएरुषी शनाथी म तंगुहीत तनुस्त्रिभूमिम् मे
‘वर्धमान’ कवि का पद —वन्त त्वं नवपीवभोर्जन चरता-
प्रायण गौरस्त्रिय इत्यादि । गुरुचिन्कर्त्तव्यम्, कृष्णवोधनम् ३

घौर लौकबाणी में घनिष्ठ सुन्दर वाप युवक कृष्ण की विचित्र प्रेमसीता के उपाख्यानों ने योग जाति में घनेक गानों की प्रेरणा उत्पन्न की थी। मोकगीठ के माध्यम से ही वे भारत के मिस मिस संघर्षों में फैल रहे थे। भारत के मिस-मिस संघर्षों में काशी प्रसिद्ध हो जाने के बाद बुन्दारन की कृष्ण-सीता धीरे-धीरे पुराणों में स्थान पाकर कवि कल्पना में घौर भी पस्मकित होने लगी। कृष्ण की इस विचित्र गोपी-सीता की कहानी के अन्दर एक घास बोयी उभा है कृष्ण की विरोध के प्राचीन प्रेम-साहित्य के अन्दर से प्रवाहित होती प्रवीत हाती है। बिष्णु पुराण और मावकत के राम बर्नन के अन्दर ही उसके प्रमाण मिल रहे हैं। घौर इतर-उपर बिगरे कुछ प्रमाण मिल रहे हैं प्राचीन भारत के कुछ प्रेम-नील-संघर्षों में—कुछ कुछ लिपियों में—कुछ कुछ इनके साहित्यों में।

कृष्ण की प्रियतमा प्रजात बोली के सम्बन्ध में हम सावित्राय इनका साबित्वा कब हुआ या इस विषय में जाना प्रकर के मतमे है। य माना जाता है कि उगमाग पर भजन करन बामे य वैष्यवयन ईता की पीबर्बी सरी य नर्बी सरी क अन्दर निम-निम समयों में साबित्वा हुए थे। य सोय धपने को नापिना घौर बिष्णु या कृष्ण को मायक मानकर उममार्न पर भजन करले थे। उनक इन भजन-संगीतों में बार हजार नवीन 'विष्य प्रबन्धम्' के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ उन्होंने दिव्य साबावेन में साबित्वा होकर बिष्णु का जो बर्नन किया है उमक अन्दर बिष्णु ने कृष्ण घनतार में बुन्दारन सीता वा नाना प्रकार से उज्येय है। इसरी बहुतेरी सीतामा में बोपियों क माब कृष्ण की प्रेम-सीता वा भी नाना प्रकार से उज्येय है। इन पाना में भी बहुतरे स्थानों पर कृष्ण की प्रियतमा एक प्रपान गोरी वा उज्येय मिमता है सेबिन यहाँ भी 'उपा' का उस्तान बही नहीं मिल रहा है। इस प्रपान कृष्ण की प्रियतमा पारी वा नाम लामिम पानों में 'नापिप्राइ' मिमता है। 'नापिप्राइ' एक कुन वा

१ इन बिबद में मोबिहाबाय इत The Dark Wisdom of the Dravida Saints, The Holy Lives of the Ashvats इन दोनों पबों गोरीनाय राब इत Sir Subrahmanya Ayyar Lectures इन दोनों पबों एत के धार्यवर इत Early History of Vaishnavism in South India साबि संघों को बेगिये।

नाम है। इस नाप्पिन्नाइ गोपी का कृष्ण की मिष्ठ घात्मीया कहकर भी बर्णन किया गया है और कृष्ण की प्रियतमा बही गोपी लक्ष्मी का अवतार है, ऐसी बात भी उल्लिखित है। जैसे—

Daughter of Nandagopal, who is like
A lusty elephant, who fleeth not,
With shoulders strong Nappinnai, thou with hair
Diffusing fragrance open thou the door !
Come see how everywhere the cocks are crowing
And in the *mathai* bower the Kuil sweet
Repeats its song—Thou with a bell in hand,
Come, gaily open, with the lotus hands
And tinkling bangles fair that we may sing
Thy cousin's name ! Ah, Elorembavay !
Thou who art strange to make them brave in fight,
Going before the three and thirty gods
Awake from out thy sleep ! Thou who art just,
Thou who art mighty thou, O faultless one,
O Lady Nappinnai with tender breasts
Like unto little cups, with lips of red
And slender waist, Lakshmi, awake from sleep !
Proffer thy bridegroom fans and mirrors now
And let us bathe ! Ah Elorembavay !¹

नाप्पिन्नाइ राधा की तरह ही बलवामिनी है और है—मौन्द्य की प्रतिमा है। सारे बर्णन को देखने से इस बात में कोई शक नहीं रह जाता कि यह नाप्पिन्नाइ ही गोपियों में प्रधान और कृष्ण की प्रियतमा है। पुराणों में वर्णित कृष्ण की कृष्णावन-नीला को सेते समय इस प्रियतमा विशेष गोपिका की कल्पना का भी भक्त बर्णियों ने किया होगा। सचिन् इस पौराणिक कल्पना को उन्होंने स्थानीय उपास्यार्थों से मिलकर बाड़ा बहुत बढ़ा दिया था। इस कृष्णिया नाप्पिन्नाइ के ग्रन्थों में देखते हैं कि वर्णित देव की एक प्रसिद्ध सामाजिक प्रथा भी माय ही ली गई है। तामिल भाषियों में प्राचीन काल में एक प्रथा थी इसका अवलम्बन करने को अनुप्यन

१ J S M Hooper इति Hymns of the Alvars एवं में कवि संज्ञा की बहिना देखिए।

होता है उसे 'दूध-बारीकरण' कहते हैं। पहले बमारी बन्ध्याएँ अपनी इच्छा से बीर युवकों को पति के रूप में चुनती थीं। इस बीरता की परीक्षा के लिए एक प्रथा थी। एक घरे के प्रन्वर बस बलवान् नाईकों को बन्ध कर दिया जाता था। फिर बाजे बजाकर तथा दूसरे उठायों में उन्हें मड़काना जाता था इनके बाद उन जिल्प साईकों को बाहर घाल दिया जाता था। रातों में वे बीर युवक रहते थे। उनका काम था घणन बाहुबल से नाईकों को बस में लाना। जो इस काम को करते घोर बीर समझे जाते थे उन्हीं के गने में कुमारियाँ अवसाय बाणकर अपने लिए बर चुन लेती थीं। इन गानों में बहुतेरे स्वभा पर मिमता है कि बलवान् भूजायों के बमबर भीड़ण्डन न दूध को बस में बरके गोपबामा नापिनारा को प्रिया के ठौर पर प्राप्त किया है। परबती माहित्य की राधा ही तामिन माहित्य में नापिनारा बन गई है। इस प्रकार का मत प्रथम ही प्रनीत होता है।

इस प्रसंग में यह लक्ष्य किया जा सकता है कि ब्रह्मिण्य देवा में 'कर बरक' नामक एक प्रकार के नृत्य का प्रचलन था इसमें रास-नृत्य की तरह ही त्रिकयी एक दूसरे का हाथ पकड़कर नाचती हैं। कहा जाता है कि इन्ध ने एवबार घणन प्रथम बलराम और प्रेयमी नापिनारा को लेकर यह नाच नाचा था।

इस प्राचीन माहित्य में राधा का पहला उल्लेख हाय के प्राइत पागो के मंजुन-संघ 'पाह-मलमई' में पात है। हाय मातबाहन ईमा की पहली सरी में प्रतिष्ठानपुर में राज करते थे। हाय ने उन समय प्रचलित प्राइत बरियों की प्रम-बबिनाषों का बहुत बन गब करके इस संघ में मंजुन किया था। इस मयुरमामरु गायापां में ब्यरहुत माया पर विचार करके यह रचना रंगा की पहली सरी की है या नहीं इन बिषय में बरियों ने गदेह प्रारट किया है त्रिमी-रिमी न इन गायापां को ई २ में ४५ के बीच की रचना बनाई है। इनके रचनाकाल को त्रिमी ने भी अपनी सरी के बाद नहीं माना है। रंगा मानती गरी के बरि बाणमट्ट ने अपने 'हंजलि' में कई प्राचीन संघारों का नायोपन्य किया है। बरों मातबाहन के बारे में कहा गया है कि "मोग जैन विमुञ्जबानीन रणों के प्राय मोग (पल-मोग) निर्मान बन है मातबाहन राजा ने भी उमी तरह

(१) घात्र भी तामिनारा की त्रिमी-रिमी जाति में यह प्रया प्रचलित है। मद्राज के बिदेकानम बाणर के संघरी के प्रन्वर भी न भी त्रिबाल बाणरु न मात्र यह बात बनाई है।

मुभाषितों के द्वारा प्रबिनायी घोर प्रधाम्य कोस का निर्माण किया था।" प्रत्यक्ष लपटा है हाम द्वारा संकलित ये बाबाएँ घोर उसके माय राधा कृष्ण की प्रेम-कहानी ईसा की सातवीं सदी के पहले ही काफी प्रसिद्ध हो चुकी थीं।

हाम की 'गाहा-सतसई' में कृष्ण की ब्रज-सीता के सम्बन्ध में कई पद हैं। केवल एक पद में स्पष्ट रूप से राधा का उल्लेख है। एक कविता में लिखा है "धाम भी दामोदर बासक है यमोदा जब ऐसा कह रही थी तब कृष्ण के मुखड़े की घोर निहार कर ब्रज की बसुएँ घोर में हँस रही थीं।" एक घोर पद में पाठे है "नाथ की प्रसन्ना के बहाने बगल में धाई कोई निपुणा गोपी प्रपनी जैसी गोपियों के बपोम प्रतिमापठ कृष्ण का चुम्बन कर रही है।" एक घोर पद में है "कृष्ण प्रथम प्रमग करत हो तो इमी तरह मे सीमापगणित होकर इस गोष्ठ में प्रमग करो महिलाओं व बपो-गुण का विचार करने में प्रथम ममर्से हो।" एक दूसरे पद में राधा-कृष्ण को ही मधुर रूप में पाठे है—

मुहमारएव तं कृष्ण पोरथ राहिएर्य प्रबन्तो ।
एताथै बलबीमं धन्नाथै वि गोरथ हरति ॥ ११२६

"हे कृष्ण तुम मुझ मारुत के द्वारा राधिका के (सँह में लय) गारव (भूमि) का प्रपतयन करके इन बस्तमियों तथा इमरी मनी नारियों के गोरव का हरण कर रहे हो।

ईसा की सातवीं सदी के पहले ही राधाबाब का प्रथम या इग रूपन उल्लेख किया जा सकता है। कृष्ण की बुम्बाबन-सीता के बहूनेरे बुर्यों के माय यह मुमम मूर्ति मिलती है। पुरय की मूर्ति कृष्ण की मूर्ति है इग विषय में कोई संदेह की नुंजाइस नहीं सैकिन नारीमूर्ति राधा की है या रक्षिमबी या नल्पभामा की इसके बारे में जिमी-किमी ने संदेह प्रकट किया है।

- (१) धरत्रवि बाभो दामोदरोति इय जग्गिपु बन्नोपाप ।
बद्धमुहपेतिप्रचर्यं जिहुमं हृतिमं बपबहृहि ॥ २११२
बम्बई निर्बलतापर संस्कृत ।
- (२) बबबनतलाहबबिहूय पालपरिमिठिषा बिउबनबोबी ।
तरितनोविषाभं बुम्बड बबोन्नगिभापयं कद्दमु ॥ २११४
- (३) जड बबनि बबनु एयेप्र बहू सोहुयुवर्माधरो बोदुडे ।
बहिलाभं बोनगुणे विचारइडं जड लमो ति ॥ २११७

कवि मट्टनायक इत (कहा जाता है कि वे बंगाली थे) 'विभी-संहार' नाटक के गान्धी स्लोक में कालिन्धी के बल में रास के समय बेतिरपिता धम्मकमुपा राक्षस और उनके लिए किए गए कृष्ण के धनुष का उल्लेख है। धार्मिक शायद ही प्रसन्न माना जा सकता है कि मट्टनायक की कविता का उल्लेख किया गया है प्रसन्न माना जा सकता है कि मट्टनायक ईसा की साठवीं सदी के पहले के कवि थे। इसके बाद ईसा के बारे में एक प्राचीन स्लोक का उद्धरण पाते हैं—

तेषां योगबभूविषामगुह्या रायारह्यशासिषा
 दोमं मद्र कलिन्दराजतनयातीरे सज्जवेरमनाम् ।
 विभिन्ने स्मरतन्नाकल्पनविभिन्नेदोषोयोगेषुना
 ते जाने करडीमकलि विमलप्रीनत्विय पत्सबा ॥

प्रवागी कृष्ण बुन्दावन स ध्याए सता से पूछ रहे हैं—'हे म' उन योगबभुषों ने बिसाम-गुह्य और रासा के पुत्र शापी कालिन्धीतटवर्ती सतागृह कल्प से तो है न ! स्मराम्याकल्पनविभि के लिए तोड़ने की धारम्यकता न रहने के कारण लगता है जब वे पत्सब गुरुकर विषय होने जा रहे हैं।'^{११}

घनात लेगक द्वारा मिलित रासा-बिरह का एक और पर ध्वन्यालीक में उद्धृत किया गया है। मयुरिणु कृष्ण के द्वारा जाने के बाद उन्हीं बगई को पीर पर लगे कर पीर कालिन्धी-नरकंठ की मंत्रुस सताओं ने निपट कर सोचेंटा रासा ने देहे हुए परगद कंठ में विपलित तारस्वर ने माना पाया या कि उसने यमुना के बसचरण ने भी उच्छ्रित होकर कूजन करता गुरु कर दिया या।
 याने शारवणी पुटी मयुरिणी तद्भ्रमंभ्यालय
 कालिन्धीतटकंठबंभुनलनामानस्य मातृकंठ्या ।
 उन्नीनं गुरुताणगदुपदुपनतारस्वरं रासया
 यैनात्मरंभवादिभि जंसचरीत्कंठमातृत्रिमम् ॥

(१) कालिन्ध्या बुल्लिनेषु बेतिरपितामनुष्य राते रत्नं
 मरुन्धीनदुपच्छुनो-धम्मसुबा कंतद्विषो रापिकाम् ।
 तन्वाचप्रतिभाविषीत-महायोधूनरोषोदुपने-
 रत्तयो-जुतवं प्रतप्ररविभादुपस्य बुचानु ब ॥
 (२) बहोवदबभमवचप में भी यह श्लोक मिलता है

यह पर ईसा की दसवीं और प्याण्डी छवी के प्रसिद्ध धार्मिक कृष्णक के 'बर्धोक्ति-वीवित' धर्तकार धंभ में भी उद्धृत दिखाई पड़ता है ।

'मल्लभम्' रचयिता त्रिक्रम मट्ट ने सन् ११११ में राष्ट्रकूट-गुपति तृतीय इन्द्र की मौसरि त्रिपि की रचना की थी । 'मल्लभम्' में मल्लभ-यन्त्री के वर्णन के प्रसंग में रचे गये कई इवर्षक स्तोकों में इन्द्र और उनके जीवन के बारे में उल्लेख मिलता है । 'मल्लभम्' के एक स्तोक का धर्ष इस प्रकार बताया जा सकता है—“कला-कीधस में बतुर उषा परम पुरष मायामय त्रैविहृता के प्रति धनुरक्त है ।”^१ विभिन्न काव्यों के टीकाकार बल्लभदेव दसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में काश्मीर में वर्तमान थे । उन्होंने माण्डव्य 'धिसुपाल-वच' के ४।११ स्तोक की टीका में 'लोचक' (धोङ्गनी यानी कुण्डा के किस्म का धिरोवस्त्र) धम्ब की व्याख्या करते हुए किसी प्राचीन धंभ से उषा-इन्द्र का नाम मुक्त एक स्तोक उद्धृत किया है । इस स्तोक में इन्द्र को न देखकर उषा दुःख प्रकट करती है— 'निदधय ही धाव किसी धमापिनी ने मेरे इन्द्र का हरष किया है ।' उषा की बात सुनकर किसी धली ने कहा—“उषा तुम क्या मधुसूदन की बात कह रही हो ? उषा ने बात की उमटते हुए कहा “महीं नहीं धपने 'प्राधप्रिय धोङ्गनी की बात कह रही थी ।' दसवीं शताब्दी के एक और धम्ब लेखक मोमदेव मूरि के 'धमस्तिमक' धम्ब में धमृतमति

(१) डा मुसीत कुमार से द्वारा सम्पादित पद्यावली में उनके द्वारा लिखी गई कवि-परिचयि (धपरचयित) हैकिण्,

यह पर लघुवितर्धामृत म धज्जत ललक के नाम में और पद्यावली में धपरचयित कवि के नाम म मिलता है । कुष पाठान्तर के साथ हेमचन्द्र से काव्यानुशासन में भी उद्धृत है । (डा नरेन्द्र नाथ लाला लिखित 'प्राचीन धी मध्ययुगे भारतीय साहित्ये धीराधार उल्लेख' क नामक निबन्ध 'मुषभ धमिक-समाधार' धर्ष १४ धंभ १ हैसिय) ।

(२) त्रिभिलवर्धधम्बकसावरधालिधवा परपुष्ये
मायाविनि हृतधेतिधधे रागं धज्जाति ।

यह लघ्य और इस प्रकार के और भी कई लघ्य मुने धम्बानक धुर्यामोहन धट्टाधर्ष से मिले थे । धार में डा नरल्लनाथ लाला के एक निबन्ध में इसका उल्लेख मिला । डा लाला का उपर्यक्त निबन्ध हैकिण् ।

(३) बहो ।

नामक माटी अपने आधार के समर्थन में बहती है 'राधा क्या नारायण के प्रति प्रभुरासिनी नहीं थी ?'

"कबीरचरितसमुच्चय" एक सुन्दर संस्कृत-कविता संग्रह है। इसके संकलन-कर्ता के नाम का पता नहीं चला है। यह संकलन स्वामी गताश्री का माना गया है कवियों व शीर भी प्राचीनतर होने की सम्भावना है। इस संकलन में राधाकृष्ण के बारे में चार पर संगृहीत है। इनमें राधा का केवल उल्लेख भर ही नहीं है बल्कि जरा ध्यान से देखन पर पता चलेगा कि इसका अन्तर भाव उस शीर प्रतिपद्यमाना की सीमा समी दियार्थों से परवर्ती काल की रूप्यक कविता की समी विशेषताएँ निरर उठी है। एक पर में राधाकृष्ण उक्तिप्रामुखि क बहने प्रसवकपस ह स्वाभाव मिलता है "इत्यपर कौन है ? हरि (कृष्ण अन्तर) 'अपन में काधो शाश्वामुग की यहाँ कौन-सी प्रकृत है ? हे दयित मे कृष्ण है 'तब ता शीर भी डर सम रहा है अन्तर ईश (वासा) हा हो सकता है ? हे मुखे मे मधुसूदन (मधुकर) हूँ' तो पुष्पिन लता के पास जाधो। प्रिया के शारा इस प्रकार निर्वचनीकृत मग्नित हरि हूपारी रखाकर ।" एक दूसरे पर में देयत है कि कृष्ण की लसाय में राधा ने एक दूनी को भेजा था मसीमति डूबने पर भी कृष्ण नहीं मिले तब वह मीरकर राधा से कह रही है "शरी मेने लारी पत उस धरय ही जगने दूसरी गानी क गाय धमिगार बिया है। मुरतिपु का मेन बट दूध के लने नहीं देगा गावधनमिति के नीके भी नहीं देया कासिरी के कम पर भी नहीं देगा केलमकर मे भी नहीं देगा। एक शीर द्वाक में है—"गाय के दूध का बचना सन्तर गोपियो पर जाया जा गाएँ कभी

- (१) क्यो।
- (२) कौन्ये हरि हरि प्रयाहृपवनं शाश्वामुगनात्र नि कृष्णोऽहं दयिते विभक्ति मुतरा कृष्ण' कर्म वातर । मुयेऽहं मधुसूदनो यत्र लता तायेव पुष्पातदा- मिरवं निर्वचनीकृतो दयितया हृणीको हरि कानु व ॥
- (३) कयाप्यिच्छो धर्म स लनि त्रिनितामेव रजनीम् इह त्पारत्र त्पारिनि त्रिपुत्रमग्यामिमित्त । न कृष्टो भाषीरे ततकचि न गोपकनदिरे न कासिद्या (दूध) न च निवचनुञ्ज मुरतिपु ॥ हरिदय्या, १५ ।

भी झुड़ी नहीं गई हैं उनके बुढ़ जाने पर यह राधा भी तुम लोगों के बाद जायगी। दूसरे अमिषाम को हृदय में गुप्त रखकर जो इस प्रकार से ब्रह्म को निर्जन कर रहे हैं वही तन्त्रपुत्र के रूप में अन्तर्धीर्य देव तुम्हारे सारे समस का हरण करें।^१ एक धीर पद में देलठे हैं कि कृष्ण मोक्षार्थनिरि को कराम से चारण किये हुए हैं उनको देखकर राधा की दृष्टि प्रियवृष के कारण प्रीतिपूर्ण हो उठी है।^१

एक धीर पद में राधा का नाम प्रत्यक्ष रूप से न मिलने पर भी उस को पढ़ने से भासूम होता है कि यह राधा ही के लिए कहा गया है। कोई सखी कह रही है—“कृष्णों के कियेपन को कियेने पोंछ दिया है ? अर्धों के अर्जन को कियेने पोंछ दिया है ? तुम्हारे पहरों के राग को कियेने प्रमथिन किया ? केस की मासार्थों को कियेने गप्ट किया ? ‘सखि यह पदोपजन-ज्योत के करमपमादी नीसपधभास के हाठ हुआ है। (तो) कृष्ण के हाठ हुआ ? ‘नहीं’ बभुना के जस से हुआ। (‘समस गई’) कृष्ण के प्रति ही (कामे क प्रति) तुम्हारा अनुप है।

‘कबीरबचनममुष्णम’ में कृष्ण की अन्तर्धीर्य सम्बन्धी एक सुन्दर पद मिलता है। दिन बहता जा रहा है इन समय नार्यों को डेर कर मन्त्र मन्त्र बोलू बजाते हुए कृष्ण बर लीट रहे हैं। उनके निर पर मोक्षनिबृध मोर के पूछ की चुडा है, गले में दिवस म्मात बतमासा है मास होने पर भी बह रम्भ है—ये कृष्ण हैं गोपस्त्रीनयनोत्सव ।

धानुमानिक म्माहृषी सखी के प्रथम भाग में बाकरति की निधि में कृष्ण के सम्बन्ध में एक सुन्दर स्तोत्र मिलता है। इस स्तोत्र में कृष्ण क लिए राधा का प्रेम ही श्रेष्ठ है इस तरह की स्पंजना है। वहाँ भी कहा

- (१) () येनुगुपकलाप्रतादाय गौणो नृहं
 कुण्ठे बन्धुनिबोधुने पुनरियं राधा शर्नैर्यास्यति ।
 इत्ययमध्यपदेशानुपलब्धयः कुर्वन् विचिन्तं ब्रह्म
 देवः कारुण्यबभूवुरसिधं कृष्णः स मुष्णानु ब ॥
- (२) वही, ४२; लोभोक विरचित सतुदिनकर्त्तव्यत धीर पठावली
 में भी उद्धृत ।
- (३) अस्तं देव विमपनं कुबपुने केनाञ्जनं लेख्यो
 रागः केन तवापरे प्रमथितः केपु देव लज्जः ।
 तेना(दोषत्र)भीबन्धमपमुवा नीतास्त्रमाणा सखि
 हि कृष्णन न कामनेव कपना इत्यानुरागस्तथ ॥ वही-४१९
- (४) वही, २२; कवि का नाम नहीं है ।

यथा है—'सकमी के बहनेन्दु द्वारा जिस मुक्त नहीं प्राप्त था जो शेष
 नाम के हजार पत्तों की मजदूर साथ है भी प्राप्तवाचित नहीं हुआ था—
 बिष्णुपुर मुरारिपु की ऐसी वा कर्मित वेह है वह तुम्हारी रता करे।"
 'कबीरचरितसमुच्चय' में उद्धृत राधा का उल्लेख मुक्त वैदिक-लिखित
 एक स्लाक को ग्यारहवीं सदी में भास्कर ने अपने 'संस्कृती-कठामरल
 में उद्धृत किया है। जैन संस्कार हेमचन्द्र ने बारहवीं सदी में लिखे अपने
 'काव्यानुशासन' ग्रंथ में भी इस स्तोत्र को उद्धृत किया है। हेमचन्द्र ने
 अपने 'काव्यानुशासन' में राधा-वृष्ण का प्रेम सम्बन्धी एक धीर स्तोत्र
 पढ़ा है। यह स्लाक श्रीधरदास की 'सदुक्तिकर्णामृत' में भी लिखा है
 चन्द्र नामक एक धीर स्तोत्र के साथ मिलकर 'नाट्य-दर्पण' नामक नाट्य
 शास्त्र सम्बन्धी एक ग्रंथ लिखा था। इस ग्रंथ में भोजस कवि लिखित
 'राधा-विप्रसन्न' नामक एक नाटक का उल्लेख है। यह भोजस कवि
 धीर अभिनव गण्ट द्वारा मरठ क नाट्यशास्त्र की टीका में उल्लिखित
 भोजस कवि धर एक है तो 'राधा-विप्रसन्न' नाटक को हमकी सदी के
 पहले की रचना माना जा सकता है। बारहवीं सदी में रचित पारवा
 समय के 'मात्र प्रकाशन' में 'रामाराधा' नामक राधा सम्बन्धी एक नाटक
 का नाम मिलता है। उसमें प्राये स्तोत्र का उद्धरण 'मात्र प्रकाशन' में
 मिलता है। कवि कर्णभूषण के 'पंचवार-कौस्तुभ' में राधा को लेकर लिखे
 गए 'कर्म-सकरी' नामक एक नाटक से उद्धरण मिलता है। महामु

(१) पल्लवमोचनेमुता न मुपिनं पमार्चितम्बारिय
 र्वाता यम निजन नाजितरतीपद्येन धामितगतम् ।
 पन्देवाहिकनासहस्रमपररकासेन चाद्रवातितं
 तदाधाविष्णुपुरं मुरारिकोष्मैस्तद्वु पातु क ॥
 The Indian Antiquary, 1877 ३१ पृष् इत्यथ ।

- (२) कर्मकविपल्लवमु रा(पा)पयोपरमङ्गल इत्यादि । कबीरचरित
 सनस्य ४६ ।
 यह स्तोत्र 'सुक्तिमुक्तावली' धीर 'मुक्तापिनरत्नकोश' में भी
 उद्धृत है ।
 (३) डा लाहा का उपर्युक्त निबन्ध इत्यथ ।
 (४) श्री । डा लाहा का निबन्ध ।
 (५) लिखेना कौमुदी लिखा नाच्यारत्नो नाम ।
 इत्यादि रामाराधायां तदाय इत्यत्रापि ॥—श्री

चतुर्थशतक के समसामयिक या परवर्ती काल के कवियों में कर्ण-मञ्जरी नामक नाटक किंचित् नै लिखा है, यह हमें मामूम नहीं। क्या यह नाटक भी चैतन्य के पहले किसी समय लिखा गया था? ठैरहूँबी सरी के अन्तिम भाग में सर्वप-दिनामिपि में भी हम कृष्ण को 'राधापथ' के तीर पर बसित पाते हैं। 'समुक्तिकर्णामृत' में मृत माबौरु कवि रचित एक पद में भी कृष्ण को 'राधापथ' कहकर वर्णन किया गया है। ठैरहूँबी सरी के सामरसम्बी के 'नाटकतत्त्वपरत्नकोश' में राधा नामक 'बीबि' किस्म के नाटक का उल्लेख है। 'प्राकृतविषय' नामक प्राकृतग्रन्थ के अन्त्य के एक प्राकृत श्लोक में कृष्ण द्वारा 'राधामुख-मधुपान' करने की बात मिलती है। एक दूसरे श्लोक में राधा का स्पष्ट उल्लेख न मिलने पर भी गीता-विलास सीमा में यह राधा की उक्ति ही मामूम पड़ती है। वहाँ कहा गया है—
 कृष्ण सो लेधो—बचन इगमय की कुपति मुझे मत बो। तुम इम मरी को पार करो फिर तुम जो चाहते हो सो।"
 रामार्णव के 'प्राकृत कल्पतरु' के अष्टमस्कन्ध में राधा-कृष्ण के बारे में अष्टमस्कन्ध की वा कविताएँ ही गई हैं।

बारहूँबी मरी में आकर हम राधा के आधान पर पूर्ण विकसित काव्य अक्षरेण का 'गीतगोविन्द' पाते हैं। सीमा-गुण विश्वमंगल ठाकुर रचित 'कृष्णकवामृत' अन्त में भी बारहूँबी राधाजी के आस-नाम लिखा माना जा सकता है। बारहूँबी राधाजी के प्रथम माय में संस्कृत शीघरनाम की 'समुक्तिकर्णामृत' में कृष्ण की ब्रजसीमा तीर राधा कृष्ण के प्रेम के उल्लेख में बिलनी ही कविताएँ संयुहीत हैं। अतएव परवर्ती काल के साहित्य

(१) The Indian Antiquary 1893 अ२ पृष्ठ इत्यथ्य।

(२) केजुनाथ ३।

(३) आनुर विहङ्गिण निघण्टुन मञ्जरी

राधा मुह महु बाब करे बिनि भरबरबरे।

पात्रावृत २०७

(४) अरेरे बाहूँहि कण्ह भाब

छोड़ि इगमय कुपति न बैहि।

तइ इरिब बाहूँहि संतार रेइ

जो बाहूँहि सो लेहि ।।पात्रावृत ३

(५) Indian Antiquary पत्रिका (१९२३) विपरीत के प्रथम

'The Apabhramsa Stobaka: of Rama-Sarman

प्रथम इत्यथ्य।

में राधाबाय के विकास की बाय की अच्छी तरह समझने के लिए बाण्डी सताश्री में मिसे राधा कृष्ण सम्बन्धी साहित्य को मसी-भाति देलना जरूरी है।

सीता-सुख विश्वमंगल ङाङ्कुर के कृष्णकर्णामृत ग्रंथ का परबर्ती वैष्णवधर्म और साहित्य—बिनेय करके गौड़ीय वैष्णव धर्म और साहित्य पर बहुत प्रभाव दिखाई पड़ता है। श्रीमान् महाप्रभु शैतन्यदेव अपने दक्षिण भ्रमण के समय दो ग्रंथों को 'महारत्न' तुल्य समझ कर लिखवा माये थे। वे दोनों ग्रंथ हैं 'ब्रह्म-सहिता' और 'कृष्णकर्णामृत'। दक्षिणालय में प्रचलित इन कृष्ण कर्णामृत ग्रंथ के पाठों के अन्दर कितने ही स्थानों पर राधा का उल्लेख मिलता है। बंगाल में प्रचलित पाठ में दो स्तोत्रों में राधा का उल्लेख मिलता है। एक स्तोत्र इस प्रकार है—

शैतन्येश्वरु ममो येनुपासिने मोरुपासिने।

राधापरोपरोत्समपासिने रोपपासिने ॥७६

“उम शैतन्य की ममस्कार—ओ येनु पासक और मोरु पासक है जो राधा के पयापरोत्सम पर दयित है—ओ रोपनाम पर दयित है। इनका स्तोत्र इस प्रकार है—

यानि लक्ष्मरितामृतानि रमनामह्यानि बभ्यात्मना

य वा शैतन्यपलभ्यतिरुवा राधापरोपोम्मुषा।

ये वा भावितवेमुर्षीगणना सीता मृताम्बोरुहे

पारावाटिकया बहुषु हुरये ताम्येव ताम्यव मे। १६

मुन्हारा जो चरितामृत बभ्यामार्षी (सीताम्बकान् पुष्यामार्षी) की रचना द्वारा सेहतपोष्य है राधा के अक्षरोप (राधा को माना प्रकार में

(१) इस ग्रन्थ के दो पाठ मिलते हैं। अक्षरोप के पाठ के आधार पर डा मुशीलकुमार दे ने इसका एक प्राथमिक सं द्वारा विश्वविद्यालय से प्रकाशित कराया है। अक्षरोप के संस्करण में ११२ श्लोक ही मिलते हैं। दक्षिणालय में जो पोपी मिलता है उसमें तीन 'प्राथम' हैं। पहले प्राथम में १७, दूसरे में ११ और तीसरे में १२ श्लोक मिलते हैं। यह ही बाबूबिताल प्रथ से प्रकाशित हुई है। बिबिध कारणों से बंगाल का पाठ ही प्राथमिक मयता है। देखिए डा दे की नुमिरा।

(२) अह्मद बखि द्वारा समूहीत 'भूविनयकनाबनी (बड़ीया सं)

में 'राधा' नामांकित सीता-शक का एक श्लोक मिलता है।

(नं १)

प्रबन्ध करने) के लिये उम्मुक्त तुम्हारी ओ सीराह-आपस-श्रमूत बन्द्यारै
है या तुम्हारे मुक्त-कमल पर भावसबस बेमु-गीतवति-समूह की नीतारै
है—वे बाउबाहिक रूप से मेरे हृदय में बहती रहीं” ।

इन दो पदों में राधा का स्पष्ट उल्लेख मिलने पर भी जगता है
कि इस काव्य के मधुररसाभित प्रजनीता सम्बन्धी पद राधा को
समय करके ही कहे गये हैं कृष्णदास कबिपति ने अपनी टीका में
इन सारे स्वर्णों पर राधा का उल्लेख करके ही पदों की व्याख्या की है ।
कृष्णकर्णामृत में राधा का यह उल्लेख नामा कार्यों से तात्पर्यपूर्ण है ।
यह बात सच है कि प्रत्येक रचनाकाल के बारे में मतभेद है । ईगा
की १ वीं सरी से लेकर १५ वीं सरी के प्रथम भाग तक रचनाकाल
बताया गया है । अमर हम बहुत में न पढ़कर कृष्णकर्णामृत का रचना
काल सिद्ध दिखाओं से इस ग्रन्थ के समर्पण प्रत्येक 'बीतगोविन्द' के रचना
काल १२वीं सरी को मानें तो राधा हम सत्य से बहुत दूर नहीं जाएँगे ।
इस ग्रन्थ के रचनाकाल के सम्बन्ध में हमें एक विधान तथ्य यह मिसता
है कि श्रीधर श्याम के 'सुकुणिकर्णामृत' में 'कृष्ण-कर्णामृत' के पूर्वावृत्त
१६ संस्कृत पद को उद्धृत पाते हैं (१।१५।३) इसमें 'कृष्णकर्णामृत'
का रचनाकाल कम से कम १२ वीं सरी मान लेने में कोई स्कावक नहीं
दिखाई पड़ती । इस ग्रन्थ का रचना-स्थान दक्षिण भारत है इस विषय
में कोई मतभेद नहीं है । विचिन्ती है कि कवि शशिशास्त्र की कृष्णवेष्णा
नदी के तीर पर रहन वाले थे । महाप्रभु बीतन्येव ने भी कृष्णवेष्णा
(कृष्णवेष्णा ?) नदी के तीर बाल तीर्थों में वैष्णव शास्त्रियों में इस ग्रन्थ
का बहुत प्रचार देना या धीरे उन्हीं में प्रायः के साथ इस ग्रन्थ को
निलका साये थे । उसे प्रतीत होता है कि ईगा की बाह्यही नदी क

- (१) तबे महाप्रभु घाइसा कृष्णवेष्णा तीरे ।
नामा तीर्थे देवि ताहा देवता जन्दिरे ॥
कृष्णस्य समाप्त तब बंरुवच चरित ।
बंरुवच सरल पड़े कृष्ण-कर्णामृत ॥
कर्णामृत शुनि प्रभुव घातन्व हइल ।
घातह करिया बुधि सेवाइया लइल ॥
कर्णामृत तम बस्तु नाहि त्रिभुवने ।
घाहा हइते हम शय्य कृष्णप्रम ज्ञाने ॥
सौन्दर्य मापुयं कृष्णतीनार घबधि ।
से जाने ये कर्णामृत पड़े निरुचि ॥

घासघास राधाबाब का प्रबलम्बन करके बैप्यब बम दक्षिण में भी काफ़ी फैल गया था । घासघासों की मधुररसायिन साबनताओं बगैरहू की बात हम पहले ही लिख आये हैं ? इसी समय दक्षिण देहा में राधाबाब के प्रसार का एक ध्यान देने योग्य प्रमाण हमें कृष्णदास बबिराज हूत ब्रह्म-ब्रितामूत ग्रन्थ में मिलता है । दक्षिण की इसी गोदाबरी नदी के तीर पर ही महाप्रभु ने रामानन्द राय से राधाग्रम के मुड़ तत्त्वों को सुना था । बहुत दिनों के प्रचार और प्रसिद्धि के न होने पर रामानन्द राय के लिये राधाग्रम के मुड़ तत्त्वों का विस्तारपूर्वक विवेचन करना सम्भव नहीं होता । कृष्णदास बबिराज न इस विवेचन का जो विस्तृत विवरण दिया है वह पूरा का पूरा ऐतिहासिक प्रमाण के रूप में न लिये जान पर भी कम से कम राधाग्रम के सारे तत्त्व राय रामानन्द को मामूम य इसे स्वीकार करना ही होगा ।

कृष्णकर्मामृत से राधा के उल्लेख युक्त जिस दुमरे एगोत्र को हम लोगों ने उद्धृत किया है "राधाबरोपोममुल" बीदाब-बापस्यनित बप्यमों के हाथ परबर्ती काल में विस्तारपूर्वक बयिन रामनीना नाबनीना आदि कृष्ण की लीलाओं का ही घामान उम में मिल रहा है । पहले जिस एगोत्र को उद्धृत किया है उमक प्रबन्ध बसते हैं कि राधा बर्ती सधमी के माय एक हा परई है । रोपामन में बयिन कृष्ण जिस राधा के पयोपरोलाम पर बयिन है वह राधा सधमी का ही ब्यान्तर है इन बात को समतने में दिखन नहीं होती । प्रपदेश क भीमगोबिन्द में भी हमें राधा के इस प्रकार के बर्णन मिलने हैं । देगा जाना है कि जिस सधमी तत्व और राधा तत्व के परबर्ती नाम में जा स्पष्ट पाथक्य दिगाई पड़ा है वह पाथक्य घनी तक नाक नहीं हा पाया है । घर्णन

(१) कृष्णदास बबिराज ने अपनी 'सारपरंगरा' टीका में लिखा है "बात-मुप्यारण-बर्त्यम्यादी राधाया पौत्ररोप सत्रोमुगा ।" पोरामनद न अपनी कृष्णबन्तभा टीका में लिखा है—"राधाया बबरोपोत्रोपनं पृथ्वयं तत्र तर्ब बोमुगा । पदा राधे-बाबरोप दिया तायाममगा ॥"

(२) स्वामराय भयि बबबरपरं शौरौहनीरोदरे
 राके मुन्दरि बालकृतमपिउममो मङ्गलीरनि ।
 इयं कुरबामिरम्यमनमो निजिय बलो उचरं
 राधायामनरोदरोदरि यिनप्रो हरि पापु क ॥१२१२७

सबकी वार्षिकिक व्यक्ति रूप छोड़ कर बीरे-बीरे मधुर-स्वामिता होती वा रही है और इस मधुर रस के आधार पर ही पूर्ववर्ती सबकी पूरवर्ती रचा के साथ मिल गई है। ऊपर हम लोगों ने जिस पार्वक्य की बात केली उसने प्रबल साकार बारण करके सोसहमी घटावरी के वीह्वर वैष्णव साहित्य में सबकी घोर रचा को वरुष की दृष्टि से बिलकुल समप कर दिया और इस तरह प्रभावित वैष्णव-साहित्य में सबकी घोर रचा का मिलन फिर नहीं हुआ लेकिन सबकी घोर रचा का मिलन न होने पर पूर्वमिलन के कारण ही सबकी अपने जन्म का कुछ-कुछ इतिहास परवर्ती काल की रचा में छोड़ गई है। पुणजदि के मतानुसार रूपमानु गोप रचा के पिता और कसावती या कौतिला रचा की माता है। मरिन नद बन्धीराम के 'वीह्वर-वीरतन' में हमें रचा का जन्म परिचय इस प्रकार से मिलता है—

ते कारने पदुमा उदरे ।
उपजिता सागरे घरे ॥

यहाँ कहते हैं कि 'पदुमा' (पया) रचा की माँ है और सागर उनके पिता हैं। सबकी सागर से उत्पन्न हुई है अतएव यह ठीक है कि सागर ही रचा के पिता हैं सबकी का जन्म पय से हुआ है इसलिये 'पदुमा रचा की माता है यह भी ठीक ही है। वीह्वर-वीरतन' में बहुतेरे स्वतों पर रचा सुब भी 'पदुमिनी' अर्थात् 'पयिनी' है सबकी भी पया या पयिनी है। परवर्ती काल के पदावली-साहित्य में भी रचा 'कमला' नहीं भी हो सकती है मरिन 'कमलिनी' अरथ है।

अपदेव के नीलमोबिन्द' काव्य में फिर रचा वहाँ-वहाँ नहीं मिली बरिन्क सारे काव्य के इन्ध सायक और रचा ही नायिका है मरिनी नीलम-गहवरी है। वैष्णव-जर्म और साहित्य में रचा यहाँ पूरी तरह प्रतिष्ठित है। अपदेव के नीलमोबिन्द काव्य में ही रचा पूरी तरह प्रतिष्ठित हुई है ऐसा कहना उचित नहीं होता अपदेव के सुम-साहित्य में रचा की प्रतिष्ठा है। अपदेव के समय बंभ देग या बृहत्तरुण में मरमुब ही साहित्य का एक सुव निर्मित हुआ था। अपदेव ने गुर ही घाने कान में उमापति बर, मरय घोष्यताचार्य और कौी बरि का उन्नेग क्रिया है। मन्त्रबन यह बरिपोष्ठी बंगाल की नेल-गजममा को केर करने ही बनी थी। नेल राजा वैष्णव से सायक इतीन्द्रि इन युग के काव्य में वैष्णव-जर्म को ही प्रपाजना मिली थी। 'मनुक्तिरर्चाजुन में अपदेव ने उनके पूर्ववर्ती और उनके मरतामयिक बटुनेरे बरिनी की

यहाँ तक कि राजा लक्ष्मण सेन और उनके पुत्र केदारसेन की लिखी
 वैष्णव कवितायें संग्रहित हैं। इसके अन्तर राजा-कृष्ण-सीता सम्बन्धी
 अवदेव के लिये ऐसे पद भी मिलते हैं जो 'मीतगोविन्द' में नहीं हैं।
 इससे मान्य होता है कि राजा-कृष्ण के सम्बन्ध में अवदेव ने केवल
 'मीतगोविन्द' काव्य की ही रचना नहीं की थी बल्कि राजा-कृष्ण के
 सम्बन्ध में दूसरे तरह की कवितायें भी लिखी थीं।

'मुद्रितकर्मामृत' में जो वैष्णव कविताएँ उद्धृत हैं उनके विविध
 कविता की शाला वास्य वासस्य और मधुर प्राय सभी रसों की कविताएँ
 मिलती हैं। इनमें मधुर रस की कवितायों के साथ वासस्य रस की
 कविताएँ भी भाव और धर्मिष्यजता रीति की चमत्कारिता के लिये
 उन्नततयोग्य है। कृष्ण की कौमारसीता के हो-एक पदा से परवर्ती
 भास की कोष्ठ कविता का सावुष्य देता या सज्जा है।'

अवदेव के तमामामयिक कवि उमापति वर के कौमार-सीता सम्बन्धी
 पदों में देखते हैं कि कृष्ण कुमार की धरम्या में वासिन्दी के बल में
 धरम्या रीत में या अपराध में (मौन के छोर पर) धरम्या धरम्य के पेड़

(१) लघुलिङ्गकर्मामृत, चौबर्धनोद्धार, २।

(२) राजा-कृष्ण-प्रम की कवितायों के असावा अवदेवकवित्त दूसरी
 कविताय भी संग्रहपत्रों में मिलती हैं। अन्तर ये दोनों
 अवदेव एक कवि हों तभी यह बात मान्य होती है।

(३) मयूने के लिए दो पद उद्धृत किए जाते हैं—

बलत स्वावररन्ध्रेषु विवररन्ध्रेषु चारे यथा

हिसान् बीक्ष्य दुर दुराणपुस्व मारायथं प्यास्यति ।

इत्युक्तस्य यागेय्या धररिपोरध्याज्ययन्ति ह्युर

द्रिम्बोष्ठययादुरीदुनय्याहय्यनवाव तिनम् ॥ (अत्रिनम्)

चौड़ भावान्तर के साथ यह पद कहीं-कहीं मिलने के
 भी उद्धृत है।

ना दूरं बज तित्थ निठनि दुरस्ते लूनरुणो बृकः

भोतामति इति अरंभचतुरोवारा यागेवागिर । इत्यारि ।

वाल्मीक्य रस के कृष्णान्त स्वरूप मधुर कवि के वर को भी
 (इत्यारिवागिरिम् १) देखिए। बाह बाधे बुध में हिन्दो के
 कवि कुरदान के वाल्मीक्य रस के वर में इस उन्मोह की प्राणा
 देती या लक्ष्मी है।

के नीचे घूमते फिर रहे हैं। उसी प्रकार राधा के पिता के घर के प्रांगण में भी घा-जा रहे हैं।' उमापति घर का हुरिबीड़ा का एक घीर नकुर पर मिलता है। इन्का जब रास्ते से जा रहे थे तब कोई यौव रमयी भीड़ों से कोई भीगी गयनों से कोई यौवी बरत मुस्कृत कर भावनी छिन्का कर मुष्ट रूप से इन्का रूप का घाबर स्वागत कर रही थी। राधा ने घायर दूर से ही इन्के देख लिया है। इन्से अर्धवर्णित धवहेतन से राधा के मुञ्जमण्डल ने विजयघी धारण की थी उन्कर इन् विनव धीमामाटी राधा क केहरे पर केहारे इन्का का जो बुद्धिपात है, उन्के धन्वर भी धार्तिक घीर धनुन्य था गया है—

धुञ्जनीचलने कयापि नयनोन्मेयः कयापि स्मित-
 ज्योत्स्नाविष्कुरितं कयापि निवृत्तं लम्बाकितस्वात्पनि ।
 गर्भोद्भूतकृताच्छेत्स्मितयथीभाभि राधालम्बे
 धर्मकानुभवं जयन्ति परित्या कंठत्रियो दुष्यन् ॥^१

इस कवि के एक दूसरे पर में घामीर बन् राधा को लेकर विद्यमान में इन्का की विहार की इच्छा देखते हैं लेकिन यौवदुमारो से की संघ नहीं घुड़ाया जा रहा है। इन् हात में इन्का यौवदुमारो का लम्ब करके कह रहे हैं कि तमाम-नवारों नापों से भरी हुई है बुधावन भी बन्वों से भर गया है। यमना के बल में मगर है घीर पहाड़ की सगि में विकराम घेर है, नोन बासकों के सिमे इन बातों को कहकर घीर घालें तिकाड़ कर गंठ से के कितिकृपित घामीर बन् राधा की पना कर रहे हैं। उचिननी धारि के प्रेम से राधा के घुन प्रेम की धेयला का सिद्ध करने नाम उमापति पर के सुन्दर पर का ज्ज्येत्त हमने पढ़ने ही कर घाये हैं। इस कवि के एक घीर पर में इन्का के विन केधु स्वर से बोध से नाचें नीट घाठी है, जो केधु स्वर यौव नारिओं के बिल की हुरत

(१) कान्तिनीनुतिने यथा न न बन्ना दल्लावराधे म न
 न्यप्रोपस्य तन्ने ममा न न यथा राधापितुः प्राङ्गणे ।
 बुद्ध्या इन्का इति । इत्यादि ।

(२) यद् पर 'पद्यावली' में भी उद्धृत है ।

(३) ध्याता लसि तमालवर्जितेषु कुर्न बुधावनं बासरे-
 दमर्भं यकुनाम्ब घोरवदनप्यादा विरेः लम्बय ।
 इत्वं यौवदुमारकेषु बहताः इन्कास्य लुब्धोत्तर-
 स्वेरावीरकपूनिषेपि नयनस्याङ्गुञ्जवर्भं बालु क ॥ हुरिबीड़ा ४

(४) केलिये वर्ननाम बन्ब का १३६ पृष्ठ ।

करने में सिद्धमन्त्र स्वरूप है जिस वेगु स्वर से वृन्दावन के पंचिक मूर्तों का मन सानन्द धाड़ट्ट होता है, उसी वेगु स्वर का अवगान किया गया है ।^१

प्रसिद्ध कवि के एक पद में नवयौवन पर पहुँचि हृष्य क्य राधा के साथ नम-श्रीका में सुनाया बित्त—भक्ति यद्योदा से डर कर—यमुना के किनारे विमङ्गल निर्जन लतागृह में प्रवेश करने का संकेत पाठे है^२ । लक्ष्मणसेन के नाम में भी हरि श्रीका का एक सुन्दर पद मिलता है । लक्ष्मणसेन के पुत्र नवकेसवसेन का भी एक पद मिल रहा है^३ तो सगता है कि ये लक्ष्मणसेन राधा लक्ष्मणसेन ही है । पर इस प्रकार है—

हृष्य लक्ष्मणसेनया सह हृत्तं केनापि कुञ्जान्तरे
गोरीकुन्तलवर्हराम तद्विषं प्रार्त्तं भया मृष्टानाम् ।
इत्वं दुग्धमुलेन घोषशिघ्रान्तर्याने त्रयानभ्रयो
राधाभाषवजोर्भवन्ति वनितस्मेरानता वृष्यम् ॥

'हृष्य ! एक दूसरे कुँज में कोई घाकर लुम्हारी बनजाता के साथ गोरीकुन्तल के नाम मयूरपुष्प एक साथ कणक रख गया है । मुझ यह मिमा है यह ना । एक दुग्धमुँही पार्ष्णिगु के ऐसा बहने से राधामावक की या वनितस्मेरानता धीर सज्जानभ्र यो इष्टि समूह है, उनकी जय हो । लक्ष्मणसेन का वेगुनार सम्बन्धी एक धीर पद मिल रहा है । वहाँ वीर्य-स्वरूप हृष्य धरणी घामोमित इष्टि गहरी व्याकुलता के साथ राधा पर सड़ा कर वेगु बना रहे है ।

लक्ष्मणसेन के पुत्र केजवसन के सिले एक पद से जयदेव के मोत मोबिन्द के 'मिधर्मैतु'—घारि प्रथम श्लोक का मेल घटपल पतिष्ठ है ।

घट्टताघ मयोत्सवे तिमि पृहं शब्दं त्रिमुष्पापता
लौक प्रप्यजन कर्षं कुनवपूरेकादिनी घास्यनि ।
वत्त त्वं तद्विषां मयातयमिति भत्वा घजोदापिरी
राधाभाषवजोर्भवन्ति जपुरस्मेरानता वृष्यम् ॥

- (१) वेगुनार ३; यह पद 'पद्यावनी' में भी उद्धृत है ।
- (२) राधापावमवृद्धनवनिभूताकारं घाशोदा भया-
दभ्यन्तेतिनिर्जनम् यमुनारोषोन्तावोदवन्तु । इत्यारि ।
हृत्नयौवनम् ३
- (३) धीरपलक्ष्मणसेनवत्तस्य ।
- (४) वेगुनार, २ यह पद वद्यावनी में भी उद्धृत है ।
- (५) यह पद वद्यावनी में भी उद्धृत है ।

‘भात्र रात को इसको उत्तम में बुझा सार्ई हैं । यह घर सुता रख कर बत्ता घाका है, नीकर भी मठवाले हैं पर यह धकेली कुतबबु कीसे प्रायबी,? बेटा तो तुम्ही इसको इसके घर से जाओ । यसीरा की यह बाते सुन कर राधा-भाष्य का जो मधुरस्मेरतत इष्टि-उमूह है—उनकी पत्र हो ।’ इस प्रसंग में ‘कवीन्द्रवचनसम्बन्ध’ में उचुत पूर्व-निश्चित ४१ संस्करण पर की भी सुसता की जा सकती है । कपदेव के एक पत्र में हम देखते हैं, ‘बुझा ससी सुसरी गोत्र रमभियों से कह रही है—यहाँ इस निधुम-निधुम के बिसकुम धम्बर मुसायम बास की यह बिजन रीपा क्रिय रमज की है ? इस बात को सुन कर राधा-भाष्य की जो बिबिध मुहुहास्यमुक्त बिचवन है वे तुम सोनों की रखा करें ।’^१ प्राचार्य गोपक के एक पत्र में इष्ण के धमिसार का एक चातुर्यपूर्ण वर्णन मिलता है । नहरी रात को इष्ण राधा के घर के पास धाकर कोपल बनीरू की बोनी बोस कर राधा को इशाप कर रहे हैं । इधर इशाप सुनकर राधा भी दरवाजा खोल कर बाहर भा रही है । राधा के बंधस बंध बतय धीर देखता ध्वनि को सुन कर ही इष्ण राधा के बाहर घाने की बात समझ पड़े । इधर धाइट पाकर बुझा (बटिटा कुटिजा) कौन है कौन है कह कर बार-बार बिस्ता रहे हैं धीर इसते भी इष्ण का हृदय ध्यवित हो रहा है । ऐसी हालत में ही इष्ण की यह रात राधा के घर के प्रांथन के कोने में जो कैमिबिद्य है उसी की गोत्र में बीती ।

संदितीहस्तकोकिताबिनिन्दं बंसद्रियं कवंतो
 इारोम्भोचनलौकशांतबलप्रपनिाचनं शुष्कत ।
 केवं कैयमिति प्रगात्रजरलौकारेण दुनहमनो
 राधाप्रीगणधोबकेतिबिदपिबोहे गता धार्वरी ॥^२

प्रनोसर के बहाने राधा-इष्ण के स्नेहपूर्ण रमाताप धीर बडाक वा नमुना ‘कवीन्द्रवचनसम्बन्ध’ की एक कविता में मिसता है । ‘सुशुक्ति-कर्णामृत’ में कई धीर नमुने मिलते हैं । [एक पत्र में राधा-इष्ण से पूछती है “इस रात को तुम कौन हो ? इष्ण ने उत्तर दिया मैं केपब हूँ (स्नेहार्थ केच है जिसके) “मिर के केगी से क्या गर्व कर

(२) हरिबीह, १; यह पत्र पद्यावली प उद्धृत है ।

(३) यह पत्र भी पद्यावली में उद्धृत है ।

(४) यह पत्र ‘सुशुक्ति-कर्णामृत’ में भी उद्धृत है ।

रहू हो ?" "नडे, में छीरि हूँ" (स्तेपार्ब—बुर का पुत्र) "यहाँ पिता के गुणों से पुत्र का क्या होगा ?" "हे चन्द्रमुनी मैं बनी हूँ" (स्तेपार्ब कुम्हार) "अच्छी बात है तो मुझे गायर हाड़ी बूब तुम्हारे का मटकी कुछ भी क्यों नहीं दे रहे हो ?" मोन-बपुर्षों के सज्जामनक उत्तर से इस प्रकार दुःख पाये हुए हरि कुम्हारी रमा करे।' इस प्रकार के स्नेहात्मक प्रतीति धीर भी हैं।

राजानन्द ब्रह्म के एक पर में बोलते हैं कि गोवर्धन को धारण करने में बृष्ण को कष्ट हो रहा है यह समझ कर राधिका व्यथित होती हैं धीर उनकी सहायता करने के भाव के प्रतिपक्ष में वह दाम्प्य मन में ही गोवर्धन-धारण करने की नकम करने बुझा ही हाथ हिला रही है। पञ्चात नामा एक धीर ब्रह्म के पर में है—बृष्ण गोवर्धन धारण किए हुए हैं सभी गोपियों के साथ राधा भी उनकी साथ धीर रही है। दूसरी गोपियों न राधा में कहा तुम बृष्ण के दृष्टिपथ से बहुत दूर हट जाओ तुम्हारे प्रति धामक-दृष्टि होकर बृष्ण के हाथ नहीं चिपित न हो जायें। लेकिन गोपियों के मुँह में राधा को नकरो से दूर हटा देने की बात सोच कर निरि धारण के भ्रम से बृष्ण पागों ओरों से सींग सेन भय से।—

दूरं दृष्टिपथातिरोधव हरेषोवर्धनं विप्रत-
स्त्वप्यातस्तद्गुणं कुञ्जीवरि करं जस्तोत्रय मा भूदिति ।
योवीनाभित्तिस्रस्यितं बलपतो राधा-निरोधाभयं
रवाता धैतभरधमधमकराः बृष्णस्य बृष्णस्यु व ॥

- (१) बलं भी भिदि के-व- गारतिरं कि नाम गर्वापते
भरं धीरिर्दुं मुयं फिनुर्ली पुत्रस्य कि स्यादिह ।
बभी चन्द्रमुनी प्रपदति न मे कुरादीं पदीं बोहिनी-
भित्थं गोवर्धनार्हितोत्तरतया दुस्को हरिं पापु व ॥
प्रतीतिरन् ३ पर 'पद्यावनी' में भी उद्धृत है।

(२) एक पर है—

बलं साम्प्रति केपारं क्व भवतो भुवनेभ्य नन्विर्दं
बलं बहिं शठ प्रदानमुनने त्वद्गुणमसंभयत ।
याभिव्यामूर्धिनः क्व पूर्णं विननुसुखाति कि यापिनी
धीरिषोर्दबुं एने परिहृमप्रबिर्षं वानु व ॥

(३) तीर्थोद्धारतहायनां विभविनीरघासपोवर्धना ।

राधायाः भुविर्दं अवन्ति गपने बभ्रवाः करभ्रास्य ॥

(४) 'पद्यावनी' में यह पर सुभाद्र के नाम से उद्धृत है।

‘बोयी-सन्देश’ के नाम से ‘समुक्तिकर्णामृत’ में जो पर उद्धृत है वे चमत्कारियाँ के लिए जिस प्रकार लक्षणीय हैं, उसी प्रकार परवर्ती कास की ‘बिरह’ पदावली से अपने गहरे सम्बन्ध के लिए भी लक्षणीय हैं। इच्छा नृत्तावन छोड़कर द्वारका चले गये हैं। राजा तथा दुसरी गोपियों ने इनके द्वारा बड़ी मात्रा में बिरह-वेदना का निवेदन किया है। एक पर में कहा गया है—‘बोधार्थनविरि की वे कल्पराएँ, यमुना का वह क्रियाएँ वह वेपारत वह भागीर बनस्पति वे तुम्हारे सहचराण—तुम्हारे पोथ का वह भागन—हे द्वारकतीमुञ्ज (सर्प की भाँति क्रूर) वे क्या कमी मूलकर भी याद नहीं पाते? हरि के हृदय में ब्रजभूमिविद्यकपी यह कुछ इस्य तुम मोनों की रसा करे।’ एक दूसरे पर में गोपियाँ द्वारका जाने वाले एक रात्री की बुलाकर कह रही हैं—‘हे पवित्र तुम धरत द्वारका जाता तो देवकीतन्त्र कृष्ण से नीचे सिखी बात कहना—स्मरमोहमंत्रविद्यया गोपियों को तो तुमने त्याग ही दिया है। तबिन से जो घृण्य विद्याएँ केतकर्मभूति समह के द्वारा मर गयी हैं इनकी घोर देवकर भी क्या उस कासिन्धी लट भूमि धीर बहों के कुलो की बात तुम्हारे मन में नहीं जाती है? —

पान्थ द्वारकती प्रयासि यदि हे तद्देवकीतन्त्रो
 वस्तव्य स्मरमोहमंत्रविद्यया पोष्योऽपि नामोऽगिता ॥
 एषा केतकर्मभूतिवदन्तरातोऽप्य श्रुत्या विद्या
 कासिन्धीतदभूमयोऽपि तरवो नापान्ति विम्लारपदम् ॥६२॥२

वीरारस्वती की सिखी सपूर्व बिरह की एक कविता है। यहाँ भी गोपियाँ कह रही हैं—‘हे मधुरापविक मुसरी के द्वार पर तुम पौरी की इस बात को याद कर जकर मुनाना—कि उत यमुना के जल में कासिन्ध-परमानल (कासिन्धपरन की भाँति बिरहानल) जल रहा है। मधुरापविक मुरारैःशुणैर् द्वारि वस्तवोवचनम्। मुनरपि यमुनासतित्ते कासिन्धपरमानली वचतति ॥६२॥३

(१) से मोक्षार्थनविरा स यमुनाकण्ड स वेपारतो
 भागीरः स बनस्पति सहचरास्ते तत्र पोथ्यमनम् ।
 कि से द्वारकतीमुञ्ज हृदय नापान्ति बोधैरकी-
 त्यप्याडो हृदि कुस्तर्ह ब्रजभूमिवेदनास्य हरेः ॥
 ‘पदावली’ व यह पर नील के नाम से उद्धृत है।

(२) ‘पदावली’ में यह पर मोक्षार्थनविरा के नाम से उद्धृत है।

प्राचार्य घोषीक के एक विषयामिसार के पद में है—

मध्याह्नक्षिप्य भार्गवीवितिवत्सत्संमोषवीपीपय-

प्रस्वानभ्यविताहवाङ्गतिवत्सं राधापरं माधव ।

शैली स्वकप्रवसे मुहु समवितस्वेवे मुहुबंलति

व्यस्य प्रावपति प्रकम्पविपुरं इवासोमिवातर्मुहु ॥

(सदुक्तिकर्णामृत, २१६३१४)

पुष्पसों की शक्ति घण्टाङ्गति वनों में घोषित जो राधा के कमनीय चरण हैं वे घाव संमोष-वीपीपय पर प्रस्वान में व्यपित हैं क्योंकि वह पय मध्याह्न के होने मूर्ध-ठाप से लपट है इसलिये वृष्ण राधाके पगों के ताप को दूर करने के निमित्त बारबार उसे मास्ययुक्त मस्तक पर रख रहे हैं पानी में शीतल बख पर रख रहे हैं प्रकम्पविपुर इवासोमिवात से बारबार उपरामित कर रहे हैं ।

हमने 'कबीन्द्रवचनमनुष्य' से राधा-वृष्ण-प्रेम-सीमा सम्बन्धी कुछ कविताएँ पहले उद्धृत की हैं । 'सदुक्तिकर्णामृत' से भी हम तरह की कुछ कविताएँ उद्धृत करके उनका विश्लेषण किया । हम तरह की कविताओं के बारे में कुछ विवाद विश्लेषण का तात्पर्य यह है कि हमके अन्दर में जयदेव कवि का युग और उनके बा-टीन घाताग्निवी के पूर्व के युग की राधा-वृष्ण-सीमा सम्बन्धी माहिल्य की भाव का पठा और परिचय मिलेगा । साधारणतः कवि जयदेव के बारे में हमारे मन में एक विस्मय वर्तमान है कि किम प्रकार उन्होंने उम युग में गीतगोविन्द जैसे राधावृष्ण सीमा से सम्बन्ध और त्रिपुत्र वाच्य-जनामदित वाच्य रचा था ? हमें आशा है कि जयदेव के मममावयिक और पहले के श्रिन कवियों की कविता के बारे में जब तक विश्लेषण किया उसे घण्टी तरह में बेगन पर पना जनेगा कि बारहवीं शती में जयदेव कवि का 'श्रीतपोविन्द' वाच्य क्या सीमा रम की दृष्टि में क्या वाच्य की दृष्टि में—किंगी भी दृष्टि में घावस्मिक नहीं बल्कि किमरुम रवाभाविक है । जयदेव के युग में और उनके बा-एर घाताग्निपो चरने ही गवावृष्ण प्रेमयुक्त वृष्णव-वचिना का चिन्ता प्रसार हुआ था जगसा और पवित्र परिचय मिलना है जगसोसामी द्वारा संसुहीन 'पदावनी' नामक गंजनन-संघ में । हम संघ में राधा-वृष्ण के सम्बन्ध में क्या

(१) बावहिं तपन तपत वच वाचक

घानप बहन विचार ।

शौनिक पुनुरति तनु चरण जमन जनु

विमहिं जयन घमिस्तार ॥ इत्यादि घोषिकवत्स ।

पोस्वामी के समसामयिक कवियों उनके कुछ ही पहले के कवियों जयदेव के समसामयिक कवियों और बहुतेरे प्राचीनतर कवियों की कविताएँ संयुक्त की गई हैं। बंगाल में महामुमु भी वैष्णव के आधिपत्य के पहले जयदेव चण्डीदास ने ही वैष्णव कविता नहीं सिद्धी की और भी कितने क्यात-अक्यात कवियों ने वैष्णव-कविता सिद्धी की इसके प्रमाण मिलते हैं। 'पद्यावली' के संकलन के अन्तर हम यह भी देख सकते हैं कि केवल बंगाल में सिद्धी कविताओं का ही संकलन लपगोस्वामी ने नहीं किया वा बाबिजाय उक्तस तिरनुक्ति (तिरहुत) आदि दूसरे इलाकों से भी कविताएँ संग्रहीत हुई हैं। अतएव देखा जाता है कि ठेरहूँ औरहूँ पद्महरी और सोमहरी छताम्बी में वंशम विहार, उड़ीसा के एक व्यापक भूभाग में राधा रूप्य के प्रेम की कविताएँ रची गई हैं। हम कहते हैं कि जयदेवहूँ के बाद चण्डीदास-विद्यापति का नाम गिनाकर वैष्णव कविता के लिए में सीधे सोमहरी छताम्बी में आ पहुँचना पड़ता है हमारे अन्तर प्रकथित यह विरवास बहुत कुछ आनन्द है।

इस प्रसंग में और भी कितनी ही बातें ध्यान देने योग्य हैं। छाठवीं व बारहवीं शताब्दी के अन्तर देवताओं के विषय में जितनी भूगाररमात्मक कविताएँ मिली गई हैं वे सब राधारूप्य को लेकर मिली गई हैं ऐसा समझना ठीक नहीं होगा। हमने पहले ही उल्लेख किया कि सबकी नाशयन को लेकर भी इस युग में इन प्रकार की भूगाररसात्मक कविताएँ मिली गई हैं। हर-गौरी के सम्बन्ध की भूगार रसात्मक कविताएँ राधा रूप्य सम्बन्धी भूगाररसात्मक कविताओं से कुछ कम नहीं होती। बाबिजाम न लेकर मैत्रिन कवि विद्यापति तक हर-गौरी की भूगार मीमा न आगनीय माहित्य की रससम्पदा में कुछ कम सामग्री नहीं ही है। जयदेव के समय में भी हर-गौरी को लेकर बहुतेरी भूगार रसात्मक कविताएँ मिली गयी हैं। सचिन लगता है कि भूगार रसात्मक कविता में राधा रूप्य की प्रेमकीला के उपाख्यात की ही धीरे-धीरे प्रधानता होती गई। बारहवीं शताब्दी में भूगार रसात्मक कविता में राधारूप्य की ही प्रधानता प्रतिष्ठित हुई। बारहवीं शताब्दी में प्रेम की कविता के क्षेत्र में राधारूप्य की प्रतिष्ठा भी व्यापक वा कार्यों में हुई थी। पहली बात यह है कि तीन राजाओं का पारिवाहिक पद वैष्णव धर्म का और बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दी के बंगाल तथा बहुतर बंगाल की कवि-गोष्ठी में मैत्र राजाओं का प्रभाव अन्वीचार नहीं किया जा सकता। दूसरी बात है राधारूप्य वा चण्डीदास का जीवन प्रेम की कविता के लिए अधिकतर उपयोगी था, साथ ही

सीमा की विविधता में भी सबसे अधिक समृद्ध था। इस सीमा का प्रव-
सम्बन्धन करके रही गई कविताओं के माध्यम से कवि मन एक धीरे
देव-सीमा के वर्त्मन की शक्ति वाले से धीरे साय ही उसके माध्यम से
मानवीय प्रेम की मूर्ध्नातिमूर्ध्नात्मक रसविशिष्ट सीमा को स्थापित करने का
उर्ध्व पूरा सीमा भी मिलता है। इसी प्रकार राधाकृष्ण सम्बन्धी प्रेम कवि-
ताओं का अम-प्राचाप्य प्रतिष्ठित होने लगा। प्रेम की कविताओं में इस
प्रकार जब एक बार राधाकृष्ण का प्राचाप्य स्थापित हो गया तो फिर
प्रेम की कविता मिलने बैठने पर "कानू छाड़ा नीत नई"। इसीलिए
बंगाल में प्राचीन युग से लेकर घटाछुड़ी घटाभी तक नीति-कविता के
दोष में इसी राधा-कृष्ण-कविता का निरन्तर प्राचाप्य दिखाई पड़ता है।

(घ) संस्कृत में राधा-प्रेम-गीतिका और पायिद प्रेमगीतिका का सम्मिश्रण

छठी से बारहवीं शताब्दी तक मातृगीय साहित्य में राधा से
कित्त प्रकार प्राचाप्य प्राचा है और किन तरह इन साहित्य के नीतर
उमका अविवाह हुआ है। इस विषय पर विवेचन करने के लिए एक
मौलिक विषय पर विचार करना जरूरी है। वैष्णव-कविता के बारे में
साधारण तौर से यह समझा जाता है कि वैष्णव-कविता की मूल प्रेरणा
वर्म से प्राची है। वर्म की प्रेरणा से ही साहित्य-मूलक के अन्दर से
रस-विशिष्टता और रस-मूर्ध्ना प्राप्त की है। वैष्णव-युग के वैष्णव साहित्य
का अन्वयन करते ही इन तरह की बात हमारे मन में लगी गई है।
लेकिन यदि हम राधाकृष्ण सम्बन्धी प्राचीन कविताओं और ममतामयिक
भारत के कविता द्वारा उचित साधारण पायिद प्रेम-कविताओं पर विचार
करें तो देखेंगे कि प्राचीन वैष्णव प्रेम-कविता में प्रेम की प्रेरणा विमरुप
ही बौध की प्राचा-प्रेरणा ही वहाँ मुख्य थी। राधाकृष्ण सम्बन्धी कविताओं
में हमें विभिन्न प्राचीन कवियों का उल्लेख मिलता है वे वैष्णव से इसलिए
राधा-कृष्ण के बारे में वैष्णव कविता मिली गई थी। इन तरह के विचारों
पर बहुरूप के लिए हमें कोई भी तथ्य नहीं मिलता है। बल्कि हम देखें

(१) हम इन बात का उल्लेख किसी प्राचाप्य ऐतिहासिक प्राचा
पर प्राचित होकर नहीं कर रहे हैं। साधारणतया से एक सम्प्राप्य बात
के रूप में ही ल रहे हैं। राधा-कृष्ण-प्रेम सम्बन्धी कविताएँ छठी शताब्दी
से शुरू हुई हैं एता नहीं बहा का लगी छठी शताब्दी के बहने भी
इस प्रकार की प्रेम-कविताओं का उल्लेख हमें किन लगी है।

है कि वे कवि ने सर-भारी प्रेम के सम्बन्ध में उन्होंने विविध कविताओं की रचना की थी। उसी एक ही दृष्टि एक ही प्रेरणा का प्रयोजन करके उन्होंने राधा-कृष्ण को लेकर कविताएँ लिखी थीं। राधाकृष्ण उनके लिए प्रेम-कविता के आत्मन्-विभाव मात्र से इतने अधिक कुछ कह भी नहीं। सगता है कि छत्री मठाम्बी के अन्तर ही राधाकृष्ण का असाधारण प्रेमगीत और लुक्कवधियों के रूप में घामीर-जाति की छोटी परिधि का प्रतिरूप करके विद्याभारत के निम्न-विम्न अंशों में फँस गया था।

रमण कवियों ने उच्च लक्ष्य विषय-वस्तु को ही अपने काव्य-मूजन के अंदर जोड़ा-बहुत स्थान दिया है। लेकिन देवता सम्बन्धी होने से लक्ष्य संस्कार के कारण राधाकृष्ण के प्रति लक्ष्मी-लक्ष्मी पर (बहु भी शर्ज नही) उनके अन्तर सम्भ्रम दिखाई पड़ता है। प्राचीनतर कवियों की बात छोड़ ही देता है। वैष्णव-कविता के समूह सुग-बादली मठाम्बी के काव्य-कविता पर विचार करते से दिखाई पड़ेगा कि इस प्रेम के फिरी भी कवि ने केवल वैष्णव-कविता की ही रचना नहीं की है। गीत गीतिका के प्रसिद्ध कवि जयदेव ने केवल राधाकृष्ण सम्बन्धी कविताएँ ही नहीं लिखी थीं उन्होंने अन्वय विविध विषयों की पांचव प्रेम की कविताएँ भी लिखी थीं। उनकी ये रचनाएँ 'सुक्लिर्कामृत' में उद्धृत हैं। जयपति चर, पोषर्वाचार्य सरण पीपी—यहाँ तक कि लक्ष्मण सेन की लिखी राधा-कृष्ण-प्रेम सम्बन्धी वैष्णव-कविताएँ भी निम्न-विम्न लक्ष्य अंशों में मिलती हैं और मानवीय बहु प्रकीर्ण प्रेम कविताएँ भी जगता अंशों में मिलती हैं। अतएव हम देखते हैं कि ये उन समय प्रसिद्ध कवि ने काव्य के विषयवस्तु के रूप में राधाकृष्ण को इन्होंने स्वीकार किया था। इन समय के कवियों में केवल लीला-मूक विन्मर्षण ठाकर रचिन 'कृष्ण-कामृत' को पढ़ने से जयता है कि यहाँ एक बलत वर्तमान लक्ष्य है। इन अंश के रचयिता कोई भी क्यों न हों इसके बारे में यही लक्ष्य है कि वह उन लक्ष्य से वैष्णव से। अपनी वैष्णव दृष्टि से लीला-प्रकार और लीला-आवादन के लिए ही उन्होंने इन काव्य की रचना की थी। लेकिन लीला-वैष्णवों के परमपदापर भी जयदेव कवि के सम्बन्ध में इन विषय में हमारा विचार निरिचन नहीं है। 'कृष्ण-कामृत' अंश में शुरू न धारित एक एक असाधारण आकारा विन्मर्षण प्रथम रूप में देनी जाती है जयदेव के गीतवीर्य

(१) बहु लक्षी लक्ष्य होती है लक्ष्य एकाधिक जयदेव के होने का लक्ष्य नहीं किया जाता।

काव्य में सभी जगह इस धम्मालम्बना स्वर ठँबाई पर पहुँचा है ऐसा नहीं कहा जा सकता है। काव्य के धारम्भ में उनके काव्य की फलभूति क्या है इस विषय में एक श्लोक जयदेव ने दिया है—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो
यदि विलासकामासु कुतूहलम् ।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं
धुनु तदा जयदेवतरस्वतीम् ॥ १।३

“यदि हरि का स्मरण करके मन को सरस रखना चाहते हो और यदि विलास-कामासु के प्रति कुतूहल हो तो इस जयदेव-भारती की मधुर कोमल कान्त पदावली सुनो। गीत-गोविन्द काव्य के अन्तर ‘हरिस्मरणे सरसं मन की प्रेरणा विलास-कामासु कुतूहलम्’ का पल ही स्वाग-स्वाग पर बढ़ा हो गया है। इस युग के और इसके बाद वाले युग के रमचिरम्य कवियों ने नरनारी की विलास-कामासु के वर्णन में जो कुतूहल और निपुणता दिखाई है जयदेव के काव्य में भी उषा-वृष्ण का अवलम्बन करके उसी विलास-कामा का कुतूहल और निपुणता उसके वर्णन में हम पाते हैं। हम के स्वर को लेकर जहाँ जयदेव ने लिखा है वहाँ भी उनके जाने या धनजाने ही युवती केतिविलास की बात या पड़ी है। जैसे—

हरिचरणधारणजयदेवकविभारती ।
वतसु हरि युवतिरिच कोमलकामावती ॥ ७।१०

‘हरि का चरण ही जिनका धरण है एते जयदेव कवि की इन भारती (कविता) कोमल कामावती युवती की भाँति सबके हृदय में निवास करे।’ (‘कोमल कामावती’ विषयक युवती और भारती दोनों के लिए एक तरह से प्रयुक्त हो सकता है।) पहले ही सिंगा है कि जयदेव की सिंगी ऐसी कविताएँ भी मिलती हैं जिनमें नर-नारी के विलास-कामा-वर्णन की निपुणता प्रकट होती है।

हजारों कालों यह है कि भारतीय साहित्य का अन्तर्गत राधा-भक्त का जो प्रथम प्रकाश है वह रम-चिरम्य कवियों की प्रेम-वचिनाओं में ही है। उन प्रेम-वचिना के अन्तर्गत प्राकृत प्रेम और अशाश्वत प्रेम में जोड़े और लोभ का-मा स्वकाम-भेद नहीं था। यह स्वकाम-भेद ता आया है बहुत बाद में जयदेव, बिजयदा र्धन्य महादामु के पाविर्भाव के समय या उससे कुछ और पहले। साहित्यिक दृष्टि से विचार करके हम कहें कि

राधा-कृष्ण विषयक प्रेम-कविता ने भाव रस एवं प्रकाश-मञ्जी सभी दृष्टियों से भारतीय साधारण प्रेम-कविता की मारा एवं पद्धति का अनुसरण किया है। हम कुछ भाव बनकर घासोचना करके दिखायेंगे कि वैतम्य महाप्रभु के परवर्ती काल में जो सब वैष्णव कविताएँ रची गईं, उन्होंने भी काव्य-रस धीरे प्रकाशन-दीप्ती की दृष्टि से मूलतः भारतीय प्रेम कविताओं की बिरकास से बनी घाटी हुई बाप का ही अनुसरण किया है। यद्यपि इस साहित्यिक दृष्टि से हम राधा-कृष्ण की प्रेम-कविता को भारतीय साधारण प्रेम-कविता की बाप की ही एक विशेष रस-ममूद परिणति के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। ऐसा भी देखने में आता है कि परवर्ती काल में जब 'कान्हू बिना गीत नहीं घर्षित् राधा-कृष्ण का घबलप्यन किये बिना प्रेम-कविता हो ही नहीं सकती यह बिरकास जब दृक्कल्प से बढमूम हो गया तब पूर्ववर्ती काल में उचित पूर्णतया मानवीय प्रेम की कविताएँ भी राधा-कृष्ण के नाम पर ही चल निकलीं। एक प्रसिद्ध दृष्टान्त के रखा हूँ। स्वामीजी की 'पद्यावनी' में विन्नाहित स्तोत्र का निर्जन में मनी के प्रति राधा की उक्ति के रूप में उल्लेख हुआ है।

यः कौमारहर स एव हि वरस्ता एव चक्रतपा-
स्ते श्रीमोहितभास्तीनुरभयः प्रोङ्गा कर्मबानिता ।
सा चकास्त्रि तवास्ति तत्र मुष्टम्यावारलीलाविबी
रेवारीबलि वेतलीतदतले वितः समुत्कण्ठते ॥३८६

कविता का मतार्थ यह हुआ "जो मेरा कौमारहर है (घर्षित् जिसने मेरा कुमारीत्व हरण किया था) वही (घात्र) मरा वर है (घात्र भी) वही शैत की रात है वही विवर्णित मानवी की मुग्ध है कर्म-बन का वही परिणत वदन है धीरे मैं भी वही हूँ तो भी तब रेवा मनी के तत्र पर मोहित कर्म-रस के नीचे जो सब मुष्ट-व्यापार की नीचाएँ हुआ करनी थी उन्ही में मेरा वित उत्कण्ठित हो रहा है। स्वामीजी ने राधा की उक्ति के रूप में हम स्तोत्र का जो घर्षे ग्रहण किया है 'पद्यावनी' में इन स्तोत्र के बाव ही उद्युत स्वामीजी के स्व-रचित एक स्तोत्र में टीक वही भाव मिला—

प्रियः तोर्यं दृष्णः तदुपरि कुदज्ञानजित-
स्तवाहं सा राधा तद्विरमुनयो तद्गममुनम् ।
तवाप्यन्त-तन्मपुरपुरलीपञ्चबन्धु
मनो मे जातिम्वीगुतिवदित्वाय स्पृहवति ॥३८७॥

‘हे सखी बही प्रिय कृष्ण कुम्भोज में मिले वे में भी बही राधा है हम दोनों का सङ्गम-मुक्त भी बही रहा किन्तु तौ भी बिस बन में मधुर मुरली के पञ्चम स्वर का खेस हुआ करता था उमी कामिन्दी तटवर्ती बन के लिए भरा मन ससज रहा है ।

कृष्णदास कविराज के ‘शैतन्य-वरितामृत’ के दो स्वार्थों पर हम देखते हैं कि श्री भैतन्यदेव ने भी इस ‘य क्रीमाराहुर’ श्रादि श्लोक को घट्यन्त मूढ़ीय श्रवणक माना है । जगन्नाथदेव के एकरथं और कोनाहम से घटप्य होकर जब वे मन ही मन बुन्दावन की कामना कर रहे थे उगी समय इस श्लोक को भावावेध में दुहराया था । श्री जीवमोस्वामी के ‘गोपासकम्पू’

(१) मध्य प्रथम परिच्छेद; मध्य त्रयोदश परिच्छेद ।

(२) नाचिते नाचिते प्रमुर हृदय भावान्तर ।
हस्त तुनि श्लोक पड़े करि उच्च स्वर ॥

।।श्लोक।।

एइ श्लोक महामनु पड़े बार बार ।

स्वरूप बिना केहू धन ना बुझे इहार ॥

एइ श्लोकेर धर्म पूर्बे करियादि व्याख्यान ।

श्लोकेर भावार्थ करि संज्ञेये व्याख्यान ॥

पूर्बे धन कुबसत्रे सब घोषिगण ।

दृष्टर इधंन पाया धनभित्त मन ॥

जपघ्राव बेजि प्रमुर से भाव उठित्त ।

तेइ भावादि हृदया बुपा गायोघ्राइत ॥

धनदये रापाहृत्ने कीला निवेदन ।

तेइ तुनि तेइ धानि तेइ नव तद्गन ॥

तथापि धामार मन हरे बुन्दावन ।

बुन्दावन उदय कराहु धायन चरण ॥

इहां लीकारथ्य हानि-घोडा-रथप्राप्ति ।

ताहा पुण्यवन बुङ्ग-रिक्त-नार शानि ॥

इहां राजवेद्य तद्ग तब क्षत्रियपण ।

ताहा मोरपथ तद्ग मुरलीवरण ॥

बब तोभार तद्गे तेइ मुत्त-घात्वारण ।

तै-मुत्त तमडेइ इहां नाहि एकरथ ।

धाभा लइया पुन लीला कर बुन्दावन ।

तबे धामार मनोवाक्या हयन पुरबे ॥ बहो ।

नामक चम्पू काव्य के उत्तर भाग में हम देखते हैं कि कृष्ण से राधा के ब्याह के बाद विद्यासा तक्षी ने राधा के चित्त का उद्घाटन करने के लिए बहुत ही बेपटारी करके राधा के ही मुख से 'यः कौमारहरः प्रादि स्तोत्र उच्चारण करवाया वा धीरः कृष्ण ने भी राधा के मुख से स्तोत्र को सुनकर उसके चतुर्भुज शरण का पाठ सुनकर लोटे हुए कहा था—'कृष्ण-रोषसि तत्र कञ्चनदने' यह पाठ ही अब संपन्न है। वास्तव में इस स्तोत्र से राधा-कृष्ण का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। बोड़े-बहुत पाठान्तर के साथ किसी किसी संस्कृत-संग्रह ग्रंथ में यह महिला कवि धीमा मट्टारिका के नाम से मिलता है। 'कवीन्द्रचचनसमुच्चय' और 'सदुक्तिकर्त्तृमुक्त' में यह प्रजापति कवि की रचना के रूप में 'घसतीश्रग्मा' के अन्तर्गत घसती-श्रेम की द्रुमरी कविताओं में भी मिल रही है।

एक घार हम जिध प्रकार घसतीश्रग्मा की कविता को वैष्णव कवियों द्वारा राधा की उक्ति के रूप में गृहीत होना देखते हैं उसी तरह द्रुमरी और कामिन्वीतटवर्ती सतागृह में कृष्ण के साथ राधा के मुक्त प्रेम को लेकर रची कविता को प्राचीन काव्य-अंकसियगुणों न घसतीश्रग्मा में ही रखा है। राधा को कही द्रुमरी मानवीय घसतियों के साथ ही साहित्य में एक पंक्ति में स्थान मिला है। 'यः कौमारहरः स्तोत्र के ठीक पहले ही पद्यावली में 'कन्यचिन्' कहकर एक धीर पद उद्धृत किया गया है—

कि पादान्ते लुठञ्चि विमताः स्वामिनो हि स्वतःप्राः
कञ्चित् कालं स्वचिद्विरतस्तत्र कस्तेमराधः ।
घामस्कारिष्यहमिह मया भीबितं त्वद्वियोग
अतःप्राप्ता रिजय इति ननु त्व मर्नवानुमेप ॥१८२॥

(१) बहुतेरे आशुओं में इस कविता के बहुत से पाठान्तर मिलते हैं (केलिए इमात् इत्त डीटा)। कवीन्द्रचचनसमुच्चय में उद्धृत बोड़े का पाठ मिलता है ॥

यः कौमारहरः स एव हि वरत्तारचण्डकर्म निमा-
श्रीमतीनप्रचनापवीनुरमयसौ ते च विद्याविता ।
आ चैवार्तिव तत्रापि श्रीमनुरतप्यावारलीताजुनां
दि ये रोषसि वेतलीचननुवा चेतः समुत्पल्लते ॥

(२) पद्यालोके में मूल धीर वाद में 'कवीन्द्रचचनसमुच्चय' (२ ?) में उद्धृत ।

‘विमना होकर क्यों मेरे पैरों पर मिर रही हो ? पति स्वतन्त्र है, कुछ काल तक वे धर्म्य भी अभिरुठ रहे सकते हैं—इसमें तुम्हारा अपराध क्या है ? यहाँ मैं ही अपराधिनी हूँ क्योंकि तुम्हारे वियोग में मैं भीखित हूँ। स्थियाँ पतिप्राणा होती हैं अतएव तुम ही मेरे धनुनेम हो।

इस पद को भी कृष्णोत्सामी ने ‘धन रहस्यनुतपदं वृष्णं प्रति राधा वाक्यं’ कहकर ग्रहण किया है। किन्तु यह श्लोक ‘कवीन्द्रवचनसमुच्चय’ में वाक्युट-कवि के नाम से ‘मानिनी-वर्ग्या’ में और ‘सद्बुक्तिरुर्णामृत’ में मातृदेवी द्वारा उचित कहकर ‘नायकमानिनीवचनम्’ के रूप में मिस रहा है। ‘पद्यावली’ में कृष्णेश में राधा का वृष्ण से मिलन होने पर उपा-वेष्टित (धन कृष्णेशे श्रीकृष्णवनाधीश्वरवेष्टितं) कहकर सुभ्र कवि का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया गया है—

धान्योद्गतबाणपुरपिहितं धनुं नामं नञ्जितुं
बाहु सौहत एव कम्पविपुरी शपती न कंठप्रेः ।
बाणी संभ्रमगदुपशास्त्रपदा संशोभनोत्तं मन-
सत्यं वस्तुमातांमोर्जपि बुधिराज्जातो वियोगापते ॥३८४॥

‘धान्योद्गत बाण से धारों तक जाने के कारण कुछ भी नहीं बियाई पड़ रहा है। कम्पविपुर विकृत होनी बाहूँ कंठ को पकड़ने में सक्षम नहीं हो रही हैं। बाणी संभ्रम हेतु मनुष्यदागल्पदा संशोभनेनु मन बचन है, वचन ही बहुत दिनों के बाद मिला वस्तुम-संयम भी वियोग की आँठि हुआ।

इस पद के धनुस्व यह पद हम यादविल्लहाज के ‘जयोद्गरोद्धार’ के एक पद में पाते हैं—

(१) वरवनी काल के डीकाकार बोरचन्द्र योत्सामी न अपनी ‘रति-रङ्गदा’ टीका में इस श्लोक की व्याख्या करते हुए लिखा है,—‘विरविबियोगानन्दं साक्षाद्भूते प्रिय प्रेषति सद्गमाय संतुष्वाभवि चिरप्रजावागान् स्वभावाचित्काम्योदयेन मानिनीं तां विलस्य सन्प्रेमवयो रतिरु घोरतः स्वस्य तदधीनतां प्रकृतानिनु वारण्यभारिकं वरार, ततः धीराया तान्नेरं पराह तदुर्ध्वनि धरनि ।

दर्याने कोर नयनमुग साँप ।
 करइते कोर कुहँ मुग काँप ॥
 डुर कर ए सति सो परसंग ।
 नामहि माल अकस कबँ प्रंग ॥
 केतल ना रह बुम्बल बेरि ।
 को जाने कीये रस-रस-कैलि ॥ (इत्यादि) ॥

यह पर हमें 'सुकुणिकुर्वाभूत' में साधारण गरीबा नायिका के देह-मन के प्रवृत्तान्तर के दुःखान्त के रूप में मिलता है। 'पद्यावती' में रस के नाम से उद्या-विद्या का 'प्रसिद्धं मयनाम्बु बन्धुपु' धारि जो पर (३६२) उद्धृत है वही पर 'सुकुणिकुर्वाभूत' में कृष्ण पाठान्तर के साक साधारण नायिका की 'विद्युहिणी-वेष्टा' के रूप में उद्धृत है। 'पद्यावती' में बहजुति के 'माधवी-माधव' और 'अत्तररामचरित' नाटक की विद्या की कविता को 'उद्या-विद्या' में ही स्थान मिलता है। 'धमदधक' के प्रथम एक प्राचीन कवि से। 'धम्यासोक' के धानन्दकर्मण ने प्रथम की प्रेम-कविता की प्रशंसा की है। अतएव प्रेम-कवि के रूप में प्रथम की क्पाति गरी पद्यावती के पूर्व ही प्रतिष्ठित हो चुकी थी। इस 'धमदधक' ने विद्या-मन की कविताएँ पद्यावती में उद्धृत की गई हैं। प्रथम से उद्धृत इन कविताओं को देखने से पता चल जाता है कि प्रेम की तीव्रता और मूढम-मोहमार्ग की अभिव्यक्ति में इस प्रकार की प्रेम-कविताएँ ही परवर्ती काल की उद्या-प्रेम-कविता का केवल प्रारूप नहीं हैं, बल्कि धनेक स्वरों में आदर्शरूप हैं। प्रथम की एक कविता को इस प्रकार की 'सुनितरपिणोक्ति' कहा गया है—

निरवाधा बरन बहनि हृदयं निर्मूलमुग्मप्यते
 निद्रा भेति न दृश्यते प्रियपुतं रात्रिर्विषं वसते ।
 अर्धं शोचमुर्षति वसवतितः प्रेषास्तथोपैजित-
 तस्य बं गुणनाकलप्य दपिते मालं बवं कारितत ॥२३॥

'निरवाधा मेरे बरन का बहन कर रहे हैं हृदय धामूल उग्मपित हो रहा है नींद नहीं आ रही है, अथवा नहीं विद्या पड़ रहा है, उद्योग केवल से रही है। मेरी देह नून रही है पावपित प्रिय की भी उन्मत्ता कर ही है। लयियों ने न जाने मुझमें कीन-ना मुझ देखकर दमित के प्रति ऐसा मान कपया वा।' प्रथम की एक और कविता उद्या के रूप में गृहीत हुई है।

प्रस्थानं बन्धनं कृतं प्रियसखरत्नैरजसं पतं
 कृत्या न लणमासितं व्यसहितं चित्तैः पन्तु पुरः ।
 पन्तु निविशतपतसि प्रियतमे तवै त्वमं प्रस्यता ।
 यन्तम्ये सति जीवित-प्रियमुहुत्सार्थं कथं त्यज्यते ॥३१८॥

“बन्धन प्रस्थान कर गये हैं प्रिय मित्र भाँसू भी धीरे-धीरे बन्धे गए हैं लणमर के लिए भी धीरज नहीं है, चित्त भी पहले ही से जाने को उद्यत है। प्रियतम के जाने को कृत-अंकुश होते ही सभी साप-साप बन्धे। उनका जाना अगर ठीक ही है तो प्राणप्रिय मुहुत् का संग क्यों छोड़ा जाए ?”

मात्र धीरे बचनभङ्गिमा की दृष्टि से इन कविताओं को पढ़ने के साथ ही साप परबर्ती काल की इस प्रकार की वैष्णव कविताओं का स्पष्ट धीरे धसपट स्मरण आता रहता है। यही ब्रह्मव्यास ही परबर्ती काल में वैष्णव-नाहित्य में किस प्रकार से प्रभावित हुई है यह पूर्वर्षित पद धीरे परबर्ती काल में रचित पदों की तुलना करने में समझ में आ जाता है। धमक के अभाव में योमेड 'मम-बन्धु' के विविध रूपक धारि प्राचीन कवियों की पामिब प्रेम की कविता 'पद्यावती' में 'उपा-वृष्ण-मेम' की कविता के रूप में गृहीत हुई है। इसके अन्तर्गत समाहर्ता कपोतबामी का कोई हाथ नहीं था यह नहीं कहा जा सकता। जिनमें जिस प्रसंग में वह पदोत्त हुए हैं वही स्थान-काल-मान में यथासम्भव सामान्य रता की जा सके उन धीरे ध्यान रखकर कपोतबामी के पदों को जयह-जयह पर जोड़ा बहुत बरदा शिवा है। अतएव सामान्य रूप से हम देखते हैं कि प्रेम के स्थूल धीरे सूक्ष्म जितने प्रकार का वर्णन पूर्वर्षी कवि कर गये हैं उसकी कोई भी कविता परबर्ती काल में गौरीप्रेम या उपा-प्रेम के रूप में गृहीत होने में किसी प्रकार की बाधा नहीं थी।

उपा-प्रेम का जितने विविध धीरे विचार वर्णन है वे श्रुत भारतीय प्रेम-कविता की प्रायः से गृहीत हैं इस विषय में निःसन्देह होने के लिए दूसरी श्रुत भी है। पूर्वर्षी काल की संस्कृत धीरे प्राकृत में लिखित सभी भारतीय प्रेम-कविताओं से हम परबर्ती काल की उपा-प्रेम की अनगिनत कविताओं की यदि तुलना करें तो साफ़ देखेंगे कि

(१) डा मुजीबुद्दुमार के लिखित 'पद्यावती' की श्रुति (पृष्ठ १२) धीरे बरवारों के विषय में टीका (पृ० १११-२) देखिए।

भारतीय साधारण काव्यशास्त्र और कविरीति तथा कवि-प्रसिद्धि को ही वैष्णव कवियों ने जाने-अनजाने किञ्च प्रकार ग्रहण किया है। निम्न युगों में निम्न कवियों द्वारा रचित इस प्रकार की बहुतेरी प्रकीर्ण कविताएँ भारतीय संग्रह-ग्रंथों में संकलित हैं। हम इनमें से कुछ प्रसिद्ध संग्रह-ग्रंथों की कुछ कविताओं से रसा-प्रेम का प्रबलम्बन करके लिखी गई कुछ वैष्णव कविताओं की तुलना करके अपने कथन की स्थापना की चेष्टा करेंगे।

(४) वैष्णव प्रेम-कविता और प्राचीन भारतीय प्रेम-कविता की धारा

प्राचीन भारतीय प्रेम-कविता की धारा का विवेचन करने पर हम देखते हैं कि अवशेष से लेकर १२वीं शताब्दी तक भारत के निम्न-निम्न प्रांतों में—विशेषकर बंगाल में—रसा-प्रेम का प्रबलम्बन करके जो वैष्णव कविता लिखी गई है उसके अन्दर विकास-प्रसिद्धि विभिन्नता सूक्ष्मता और अपह-अपह पर उसकी उच्चता प्रबल ही सरासरी है। लेकिन इसी लिए भारतीय साहित्य के इतिहास में इसके प्रतिबन्ध को एकान्त रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता। रसाप्रेम का डीठा पूर्ववर्ती प्रेम-कविता ही से लिया गया है। प्रतिबन्धना की प्रथिमा के अन्दर भी हम उही भारतीय धारा को अनुसरण करते देखते हैं। लेकिन पूर्व-रचित पृथग्भूमि पर अध्यात्म-तत्त्व-बुद्धि की एक प्र्योतिर्मय, शीघ्र और कवि-कल्पना ने उसे और भी हृदयप्राही बना दिया है, महिमाश्रित किया है। रसिका की बय-सन्धि से लेकर लक्ष्मी के प्रेम-भावस्य प्रेम की निविद्धता और पहचान, मिसन-बिरह, मान-प्रतिमान बौरह जिस किती विषय का वर्णन हम वैष्णव कविता में पाते हैं पाकिश नायिका का प्रबलम्बन करके उही प्रकार के प्रेम का वर्णन—यहाँ तक कि प्रेमवर्धन वा कसा-कीदान तक सभी कुछ हम पूर्ववर्ती शक्य के अन्दर पाते हैं। यह बात सच है कि पूर्ववर्तियों ने संभोग की ही प्रधानता देकर प्रेम को प्रमेक स्वर्ती पर स्पृह बना दिया है और वैष्णव कवियों ने बिरह को प्रधानता देकर प्रेम में गुरुमता और अतमता की लुष्टि की है। बिरह का प्रबलम्बन करके प्रेम का यह गुरुम और पहच स्वर ही रसा प्रेम को प्राध्यात्मिक अगन् में गमय बनाने में सहायक हुआ है। साहित्य के तीर पर वैष्णव कविता पर विचार करन पर हम देखाते हैं कि पूर्ववर्ती कवियों द्वारा वर्णित प्रेम से रसा-प्रेम का पार्थक्य दो कारणों से हुआ है। पहली बात है एक तत्त्व-बुद्धि का प्रत्यत प्रभाव और दूसरी

बात है विरह का प्रकथन करने के प्रेम का रूप से प्रकृत—प्राकृत मर्त्य
भूमि से प्रकृत भूमिगत याम की बात ।

प्राकृत-भूमि से प्रकृत याम की बात किस प्रकार से शुरू हुई और
कैसे हुई—परन्तु प्राकृत नायिका ही किस प्रकार से याम में समाविष्ट हुई,
इसे मत्तीमति समझने के लिए पूर्ववर्ती कवियों की प्राकृत नायिका और
परवर्ती कवियों की यामिका में कितना योग है इन बात को विभिन्न
दृष्टियों से देख लेना आवश्यक है । इसके लिए प्राचीन भारतीय प्रेम-कविता
और परवर्ती काल की वैष्णव कविता का जोड़ा बहुत सुलगात्मक विवेचन
आवश्यक है । हमने अपने पूर्ववर्ती विवेचनों में परवर्ती काल के वैष्णव
कवों और साहित्य में पूर्ववर्ती काल की मानवीय कविता किस प्रकार से
सूझी हुई है उसका विवेचन करते यामिका से भारतीय विरहनायिका
का कितना योग है उसका कुछ आंशक देने की चेष्टा की है । लेकिन
गम्भीर विरहान उदास करने के लिए यही सामग्री काफी नहीं है । वर्त-
मान विवेचन में हम पूर्ववर्ती कवियों की प्रेम-कविता और परवर्ती कविताओं
में भाव और भाषा का कितना योग है इसी का सामान्य परिचय करने
की चेष्टा करेंगे ।

हाम की 'माहानतसई' की प्राचीनता स्वीकृत है इसलिए हम यही से
शुरू करेंगे । दीर्घ-विर्तही नायिका की लक्ष्य करते कहा गया है—

महानतसई श्रीप्यथन्वि धइववत्रिएनु रिषतेयु ।

धन्विमतामु ध यस्मि पुति कि बहुभामग ॥१४४॥

'बाटी का जीवन मटी के बल के उदेल की तरह होता है कि
विरहान के लिए बाटी का रहे हैं, याम भी फिर नहीं लौटती इस ज्ञानव में
इस जने बल को मरकर क्या होगा ? इन पर से कर्मीदास के प्रसिद्ध पर
की तुलना कीजिए—

बाल बलि बाला गल मयपुरे से बालर बल बाकि ।

बोबन-नापरे सरिलेये बाटा ताहारे केबने शक्ति ॥

बीघारेर पानी नारीर बोबन गेले ना टिरिबे धार ।

बीबन बाकिने बेपुरे पादक बीरनबिलन बार ॥

हम बल बाल की बल बहकर मयपुर बने गये । उस बल के
जाने में किनकी देर है ? जीवन की मरिता में बाटा का रहा है उसे
कैसे रोदू ? ज्वार का पानी और बाटी का जीवन एक बार बने जाने पर
फिर नहीं लौटते । त्रिन्दी रही तो जीवन की पाऊँदी मगर जीवन फिर
कही मिलने ना ।"

बहुत दिनों के बाद परवेशी मियतम के लौटने पर उसकी प्रेयसी किन प्रकार के मंगल अनुष्ठानों के द्वारा उसकी सम्पत्तिका करेबी उसके वर्तन में हम देखते हैं—

एत्यापइत्यनप्रभुपुत्रता तुमं ता पडिच्छय एप्तम् ।
वारनिहिपुहि बोहि वि मंगलकलतेहि च पगेहि ॥२१४

तुम्हें माते देस बहु सभी प्रकार से मंगल आयोजन करके प्रतीक्षा कर रही है अपने मयत्रोत्सवों के द्वारा उसने तुम्हारे धानमन-नप को प्रकीर्ण कर रखा है, और अपने दोनों स्तनों को द्वार पर के दो मंगल कलश बना रखा है ।

इसी प्रकार का एक स्तोक विविधम मट्ट रचित कहकर पार्श्वपर पद्यति में मिलता है—

किञ्चिद्वृत्तमित्वाविच्छेदभरवः पृथं ननु स्वागतं
प्रीङ्गानप्रभुप्रदातवया चरचयोन्मंस्ते च मेवीरत्रे ।
द्वारस्तस्तनपुगमपनपदे वता प्रवेद्यो हृदि
स्वामिन् किञ्च तवानिमे समुचितं सत्पानयापुच्छितम् ॥

(१२४)

अपइत्यादि में लिया है—

वीर्यो चंद्रनमालिका विरचिता कृप्येव नेश्वीरः
नुत्पाना प्रकर तिमतेन रचिता बो कुम्भप्रदादिनिः ।
वता स्तेरमुखा पयोवापुमेताप्यो न कुंभात्मना
स्त्रीवापयर्षीः निपत्य विप्रतस्तत्प्या वृत्तं मंगलम् ॥

इसके साथ विद्यापति के पद की तुलना की जा सकती है—

दिया अब घायीर इ धनु वेहे ।
गंगत अतहु करव दिन देहे ॥
धनघा कुंभ धरि कुचनुप चपि ।
हरपन धरव वाजर दंड धांवि ॥ इत्यादि ॥

(१) तुलसीदास—प्रीङ्गानप्रभुप्रदातवया चरचयोन्मंस्ते च मेवीरत्रे ।
तापव्यरणासकै मङ्गलान्तनी रत्नाराया ॥

वज्रोत्सवत समुच्चय, १२१४

(२) डा विमानविहारी लक्ष्मणार घोर वागवनाथ मित्र लखनऊ लीकराव)

परदेवी प्रीतम के लिए नायिका दिन भिन्नी लेकिन प्रेम के चाँदिय्य
मे प्रिय पात्र मया है पात्र बया है, इस तरह पिनते-गिनते विचर]के
प्रथमार्ध में ही विरहिणी ने रेखाओं से दीवाल को चित्रित कर दिया] है—

घरुं गमोति घरुं गमोति घरुं गमोति गमरीए ।

पत्रम विषय विषयुं कुटो रेहाहि बिललिधो ॥ ३१८

इसके विद्यापति के भिन्नभित्तिपत्र पर की तुलना कीगिए—

कालिक समधि करिष विषा गंत ।

तिघरते कालि भीत करि गेस ॥

भने प्रभात करत सबहिं ।

कइ कइ सकलि कालि कबहिं ॥

विरह में विष पिनने की बात एक घीर पर में मिलती है—

हृत्नेनु य पाएनु य संगुलिनबनाइ अइबधा विषहा ।

एवहिं उच केव मनिउजउ ति बधिऊ कइ सुडा ॥ ३१७

हाय घीर घीर की संघमियाँ दिन गिनते-गिनते समाप्त हो गईं अब
फिर तरह से दिन भिन्नी इस बात को कइ मुखा रो रही है ।
प्रिय-विरह से दिन गिनने की बात प्रत्येक बैष्णव कवि के पदों में माना
प्रकार से मिलती है । विद्यापति की राधा कहती है—

कतदिन माखब रहब मपुरापुर कबे मुखब बिहि नाम ।

विषस तिथि तिथि कजर औपापोस बिछरत गोकुल नाप ॥

फिर—

एधम-तधन करि विषस पयापोस विरत-विपत करि पात्रा ।

मात मात करि बरस गमापोस छोड़नु जीवन आता ॥ इत्यादि ॥

करी-गम के पदों में कहा गया है—

साक्षिदार साते निविनु दिखते छोपतनु नयैर एव ।

रडिने कपिने पब निरलिने हु धारि हइत धंय ॥

पद नाम आमशय-मोविगनाम धारि के बहुदेरे पदों में मिलता है ।

(१) तुलनीय—उपगत कपने हेरत घीम ।

प्रिति निरहते भत छोड़ति घीम ॥

बिर, पद छोड़ति वेद विविबत लखइ

पादि कपत-अवतम ॥

ज्ञानवास के एक प्रसिद्ध पद में देखते हैं कि प्रेम के एक प्रकार के देह-विकार को डंकने की कोशिश करने पर बुरा विकार घाकर मुसीबत में डालता है—

बुध गरवित जाते जाकि लखी संये ।
पुलके पुरमे तनु ह्याम-परतंगे ॥
पुलक हाकिने करि क्त बरकार ।
नयनेर बारा मोर रहे प्रविबार ॥

बघीरास विद्यापति घादि घनकों के इस प्रकार के पद हैं । यथा—

बघीरास—

मुदजन मासे भवि जाकिसे बसिया ।
परसये नाम मुनि बरबये हिया ॥
पुलके पुरमे संय घाजे बरे बस ।
ताहो निबाधिते आमि हइमे बिकस ॥

विद्यापति—

बसमस करए रह्यो हिय जाति ।
सगर तरीर भरए क्त जाति ॥
घोषहि न पारिष हूबय-जनास ।
मुननाहु बदन बेकत हो हाय ॥ इत्यादि ॥ (३३९)

‘शाह-सतसई’ की नायिका भी कहती हैं—

बघीरै ता बइसल बोहि बि ह्योहि बि तनुति बिदुडे ।
बंभं बलम्बकुमुभं ब पुलइधं कहे नु बरिभुत्तनु ॥ ४१४

उसे देखने पर मान भी दोनों हाथों से दोनों धातों को डक रगूगी मगर कदम्ब-कूम की भाँति पुलकित घनों को कीँ डक रगूगी ?
यमस्यतक में देखते हैं—

भूमये रबितैपि बुधिरधिर्कं तोरुष्टेवडीकते
काकंभं बमिते जिय बतति तनूरीमाधमालम्बते ।
बद्धायामनि जाकि सत्रिकामिभं हापाननं चापते
दुष्टे विधंहुर्बं बबिप्यति कर्बं मानाय ततिननु बने ॥

इस धारने हैं—

कष्टक शाङ्गि बयलमव परतल बंजिर औरहि जगि ।
पावरि-वारि हादि कब पीजल बलतहि संगुति जाति ॥

धादि योविम्बवास के प्रसिद्ध भ्रमिहार के पद हैं। यहाँ हम घोमेसार के लिए राधा को सारी रात जागने की आज्ञा करते देखते हैं—

माधव तुया भ्रमिहारक सायि ।

भूतर-गन्ध-गमन धनि सायये

मन्दिरे यामिनी सायि ।

इसका प्राम्थन देखते हैं—

घञ्ज मय यत्तद्धं घञ्ज्यमारे वि तस्त सुहृदस्त ।

घञ्जा यिजोतिघञ्छी पप्रपरिषादि घरे कुण्ड ॥ ३१४६

घात्र मुझे घने घञ्जकार में उस कान्त के घमिहार में जाना पड़ेगा इस बात की सोचकर वह बरनापटी निमीलितारी होकर अपने घर में ही बहसकदमी कर रही है। इतना हुआ रूप देखते हैं 'कान्त-वचन-समुच्चय' में उद्धृत एक कविता में।—

मार्गे पंक्तिनि तोयदान्धतमसे निजाम्भरंघारकं

गस्तप्या इयितस्य येऽद्य बतति मुग्धति कृत्वा मतिम् ।

घामानुद्धतनुपुरा कण्ठलेनाग्नाद्य नेत्रे भृत्

दृग्घास्तस्यपदस्थिति स्वभजने पन्थानमम्यस्यति ॥ ३१६६

'पंक्ति पद पर मेघान्धतमना के घञ्जर से निजाम्भर घरण करते हुए घात्र मुझे शिव के यहाँ जाना पड़ेगा ऐसा विचार करती एक मुग्धा रमणी पुरा की कुटने तक उठाकर, नयनों को हाथों से घञ्छी तरह डक कर बहुत कष्ट से पम सौभाग्य कर घर में ही राह चलने का सम्भाषण कर रही है।' एक दूसरे श्लोक में देखते हैं—

वेष्पद घतयत्तन्नं शीर्षं शीततद् मुग्धं हृदय ।

बह जम्पद घञ्जस्यं तद् से हिमघट्टिर्षं कि वि ॥ ३१६६

'मुग्ध दृष्टि या जरेत्यहीन दृष्टि से बार-बार देख रही है लम्बी शीर्षों से रही है। मुग्ध की घोर देगहर ईय रही है। घस्यट्ट बाजें कर रही है। इन सबको देगहर समझा है कि इनके हृदय में निश्चय ही मुग्ध है। इन कविता में नव-समुच्चय से घनुपिभी बिजना राधा के प्रति मतिनों की उक्तिवाणी जो कविताएँ हैं उन्हें उद्धृत करके दिगाने की आवश्यकता नहीं। घर की राधा-श्रीम के उच्चत्राव की कविता करने से इन विषय में दूसरी बात जोचने का मौका नहीं रह जाता। एक पं में है—

वतनिघञ्जुर्धना ज्ञानभूतिग्नाण सामपंशीए ।

अनविमुर्हि विजुता दसस्ति कप्याण व भएम ॥६॥३३

'नहाकर निकली क्यामलायी के निठम्ब का स्पर्श पाय हुए विह्वर समूह फिर बँध जाने के डर से ही मानी बल बिन्दु झाप रो रहे हैं। इत पर से विद्यापति के 'बाइठ पेसल महाएसि मोरी' या 'कामिनि पेसल समानक बेसा' आदि पदों की तुलना की जा सकती है।

मग्न लब्ध प्रसङ्गो हारो पीबुजाप्रार्थे बजप्रानम् ।

उद्विग्नो मम उरे अबुजागडकणुओ ब ॥७१९९

'पीनोमठ स्तन युगलों की यह न पाकर हार जमुना मरी के फेन पूज की तरह छाती पर मग्नो उद्विग्न होकर बन्दर फट रहा है।' इसके साथ विद्यापति के—

पीन पयोपर अपरबुध सुम्बर

ऊपर मोतिम हार ।

बनि कनकाधन ऊपरविमलबल

हुइ बह नुरसरि पार ॥

मयना बहुबन्दीराम के—

विए गबमुठी हार मणि माझ सीने तार

ऊब कुछ पुगत ऊपरे ।

हम्री समान घास्यरे सुरेरकरी हुई बारे

पड़े येन सुमेह शिखरे ॥

आदि को स्मरण किया जा सकता है ।

बुर्बय मान के कारण मायक का प्रत्याख्यान किया है, अगर परचाताप करती हुई नायिका के प्रति सती की इस प्रकार की उक्ति मिलती है—

पायपडिओ न नमिओ विघ्न भयसो बि घत्विघ्न भमिघो ।

पचसो बि न च्छी भन दस्त कए बघी मानो ॥ २१३२

'पैरों पर पड़ने पर भी उमै कुछ बिना नहीं। उनने भिम कहा तुमने उसे प्रिय कहा। जब बह जाने लगा तो तुमने उत्सव्य पारता नहीं रोका बठामो, किमए सिए तुमने मान किया या ?

'कवीन्द्र-बचन-समुच्चय' में भी हमी आगेय वा प्रसर वा एक स्मोक उद्धृत किया गया है ।

कबे पत्र इतं सखीजनबखो पत्राहुता बन्पुबाम्

यन्पाई निपतसवि प्रियतम कबोत्यतेनारत ।

तेनेभुईहनायते मलयब्रानेव इहुमिपायते

रात्रि बन्पुजाजायते पिताननाहारो उरि भारायते ॥४१३

(१) यह श्लोक 'सुखिनरसायन' में भी उद्धृत है ।

(दुर्बल मान के कारण) सखियों की बातों पर ध्यान नहीं दिया। बाल्यवर्षों की प्रवृत्तियों की प्रियतम जब पैर पर पड़ा तो कर्णोत्पन्न से उसे पाहन किया। इसीलिए धन चन्द्रमा रहन का कारण बन रहा है। चन्द्रमा का प्रलय स्फूर्तिग की तरह सम रहा है। उत उत कल्प की तरह सम रही है। और मृगालहार भी मापी सम रहा है। इसके साथ रूपोत्सवामी की कविता की तुलना की जा सकती है—

कथाम्बे न हृता प्रियोक्तिरधना जित्तं मया दूरतो
मन्तोदामनिकामपम्यबधते सख्य इव कस्मिन्ता ।
लौणातम्भप्रिञ्जिडमेवमसौ मान्दर्ययमीक्षित
स्वाम्तं हन्त ममाद्य सेन जदिरांपारेण ब्रह्महृते ॥

विह्वल-मात्रक नाटक, ५ म अंक ।

दुर्बलमान के कारण पैरों पर गिरकर गिड़गिड़ाते हुए हृष्य की राधा ने भर्त्सना की प्रत्याख्यान किया। बन्धोक्ति की मगर प्रत्याख्यात प्रिय के लिए वह सखियों से परचाताप कर रही है। राधा के प्रति इस तरह की उक्तियाँ ब्रह्म कविता में तरह तरह से पायी हैं। धनक कवि उचित इसी प्रकार की एक कविता को 'पद्यावली' में रूपोत्सवामी ने 'कमलहन्त' रिया राधा के प्रति बधिय छगी वाक्य' कहकर ग्रहण किया है।

पद इस प्रकार है—

धनालोभ्य प्रमणं परिपत्तिमनासुत्य गुह्य
स्त्वया कामे मान किमिति सरते प्रेयति हत ।
समारितप्युते ह्येते विष्टुह्नोऽङ्गामुरगिन्नाः
बहुस्तैर्नागासस्तद्वनमपुनारस्वरिति ॥२३ ॥

"हे सरने प्रेम की परिपत्ति पर विचार न करके गुह्यों का धमर करके शिव काम के प्रति मन क्यों किया वा ? तुमने इन विष्टुण्डि में उठने वाले धंगारों का घातितन किया है। धन धरष्यराशन करने से क्या लाभ होगा ?" यह पद 'करीश-बदन-ममुक्यय' 'सुविचरुर्धामु' मूक्तिमुष्णावनी धारि बटुनेरे मधु-धर्मों में 'भानिनी' के सम्बन्ध में दिने गने परों में बोड़े बटु पागालर के साथ धामा है।

ऊपर जिन धायामो पर हमने विचार किया उनके धनाया 'दाहा मतग' में लेवी बटुनेरी गायार्ने मिमनी है जिन्हें माठ तीर से रिमी बिजय ब्रह्म कविता से न जोड़ सकन पर भी उदने बटुनेरी ब्रह्म कविताओं का धराल रमरण हाना है। तथा इन कविताओं धीर ब्रह्म कविताओं में एक श्रमानी-गा माठ रियाई पकी है। एक याचा में है—

न मुच्यन्ति बीहसार्तं न वच्यन्ति चिरं न होन्ति क्वचित्प्रायो ।

पण्यार्थो तार्थो वार्थं बहुवस्तुहवस्तुहो न तुमम् ॥२१७७

'सम्बी साँस' नहीं सेती है। बेर तक नहीं ऐसी है। रूप भी नहीं होती है। ये ही गारियाँ पन्थ हैं—जिनके, हे बहु वस्तुम तुम वस्तुम नहीं हो। यह पद विरहिणी योपियाँ की बबानी बहुवस्तुम रूप के प्रति बहुवस्तुम बैठता है। वस्तुम की प्रपेक्षा बर्षा ही विरहियियों की बेदना को तीव्र कर देती है। इसीलिए एक प्रोपिठभर्तृका गारी कहती है—

सहिं बुमेति वसम्बाई बहु न तह न सेतकुनुमाई ॥२१७७

'हे सखी (इस बर्षाकाम में) वसम्ब के पूल मुझे जिस तरह पीड़ा देते हैं। वसम्ब (वसन्त ऋतु में पूलने वाला) कोई पूल इतना ब्यबा नहीं पहुँचाता।

एक दूसरी गाथा में एक दूती नायिका की धोर से नायक के ही पास गई है। मगर नायक से जैसे कोई प्रयोजन नहीं है। प्रमत्तबध ही मानो एक संबाह मान देती हुई कहती है—

बाईं हुई न तुम पिघो ति को अम्ह एत्न बाबारी ।

ता मरह तुमा अमलो तैच घ वम्भकखरं अभिमो ॥ २१७८

मैं दूती नहीं हूँ। तुम भी कीई श्रिय नहीं हो। घतएन तुमसे मेरा क्या बास्ता? सकिन बहु मर रही है। तुम्हारी निन्धा होमी इसीलिए वम की बात कह रही हूँ। इस दूती की बतुपार्द धोर माधुर्य की बेतकर परबर्ती काम की बुन्धावन की रचितक धोर बतुरा बुन्धा मसिता घारि कृतिमें की बात स्मरण हो जाती है। एक दूसरी बतुरा दूती कह रही है—

महिनाधहस्तभरिए तुहं हिधए नुहघ ता धमाधमती ।

बिधहं धपन्नकम्मा धर्यं तनुयं वि तनुएह ॥२१८२

'हे मायबान् तुम्हारा हृदय सहस्री महिनाधों द्वारा पूर्ण है। वह (तुम्हारी प्रियमी नायिका) धब बही स्थान न पाकर दिन भर धनन्यधर्मा होकर अपने शीघ्र घटीर को घीर भी धीग कर रही है।'

एक गाथा में नायक कह रहा है—

धाधम्भन्तकबोतं तसिधन्त्ररज्ज्विरि कुरस्तोदृत्तिम् ।

मा दिबन्तु ति सरोतं सधोमरन्ति विधं बरिमो ॥२१८३

'मुझे मत्त धुधों' कहकर जो गरीब हटती या रही है—एनी श्रिया का मैं स्मरण करता हूँ।' इस स्मरण के साथ ही परबर्ती बैन्धन गारियाँ में बगिठ रीकित राधा का कृत्रियाँ स्मरण कीशिए।

दुसह विरह-बेदना से रीकित एक गारियाँ कह रही है—

अम्भस्तरे वि बलनं बीष्म वु मघम तुया अन्विस्सम् ।

। अहं तं पि तेन बाभेय विन्मसे भेज हं विन्ता ॥५।४१

हि मरुत तुमने अपने जिस बाण से मुझे बीब दिया है, यदि उसी बाण से तुम उनको (मेरे प्रियतम को) भी बीब दो तो मैं अम्भस्तर में भी अपना जीवन देकर तुम्हारी पूजा करने को प्रस्तुत हूँ । हमें चरित्रों का नाम के बन्धीयास की राधा का यहाँ आभास मिल सकता है । बन्धीयास का स्वर दो एक नापाओं में घोर भी स्पष्ट हो गया है—

बिस्त्रेण मन्वरेण व हिषमं बुद्धोपहि व महिष्ण ।

अम्भलिघाई अम्भो अम्भं रघुवाई व सुहाई ॥५।४२

‘मन्दर पर्वत ने जिस प्रकार से समुद्र का मन्थन करके रत्नों को निकाला था हाय । बिस्त्रे ने भी उसी तरह से मेरे हृदय का मन्थन करके मेरे धारे मुझों को छलाड़ फेंका है ।

कि क्वलित कि व सोप्रति कि कुप्यति मुप्रमु एवमेवकस्त ।

वेम्भं वित्तं व वित्तं साह्मु को वंदित्रं तरह ॥६।१६

‘क्यों रो रही हो क्यों रोकर रही हो क्यों है मुठनु, सब पर कोप कर रही हो ! बिप की तरह बिपय प्रेम को बढाघो कीन रोक सकता है ।

इसने पहले ‘नाहा-सत्तवई’ से राधा घोर नापियों को लेकर हृत्प-भेम के जो पर दिये हैं वे ऊपर दिये हुए पत्रों के साम ही मिलते हैं । अन्विस्सम् नापाई इस प्रकार की है कि राधा-कृष्ण का जन्मेत रहने-न-रहने में एक पारंपर्य के सिवा कोई मौलिक पारंपर्य देखने में नहीं आता है । परबतों का नाम में संगृहीत ‘प्राकृत-रिपस’ नामक छंद के बीच में जो प्राकृत नापाई उद्भूत मिलती है उसके कितने ही अंशों में घोर परबतों का नाम की बन्धीयास कविता के वर्णन घोर स्वर में समावृत्त करार्षीय है । अर्थात्—

कुम्भा बीबा भम भमरा बिठ्ठा मेहा जने समला ।

बन्धे बिग्नु पिप बहिष्पा पाये कंता कहुबहिष्पा ॥

“नीन कूने है जलपपात्रम येन पूमते हुए भीरों की तरह लय रहे है बिजली नाच रही है, है प्रियनामि मेरा कंत कब पायेगा ?”

(१) वर्णवृत्त ८२ । तुलनीयः—
गर्जे मेहा नीला कारज
सहै मोरज उब्बा राधा ॥
ठामा ठामा बिग्नु देहज
पिना देहज किज्जे हरा ॥

कुम्भा बीबा बीबे भमर हस्ता मारय बीर्षताय ।

रहो हंसे कहां बिग्नुज पायो वाजत कीर्तनाय ॥ अर्थात्—१८१ घोर भी तुलनीय, अर्थात् ८२; १४४ इत्यादि ।

‘कवीन्द्रबचनसमुच्चय’ से लेकर ‘सुमापितावनी’ ‘सुकृति-कर्णामृत’ ‘सुकृतिमुक्तावनी’ या ‘सुमापित-मुक्तावनी’ ‘शार्ङ्ग-वन्दति’ ‘सूक्तिरलङ्कार’ आदि संग्रह-ग्रंथों में हम बच-संघि-वर्णन से लेकर प्रेम की प्राय सभी अवस्थाओं का विविध वर्णन पाते हैं। एक ‘सुकृतिकर्णामृत’ में ही हम नाटी-सौन्दर्य और नाटी-प्रेम का अवलम्बन करके शृंगारप्रवाह की ओर उन्मियाँ पाते हैं वैही सशक्य है। यहाँ हम इस बच-संघि किञ्चिदुपासक-वीचन मृग्या मृग्या प्रयत्ना नबोडा विलम्बनबोडा कुलस्त्री (स्वकीया) घसठी (परकीया) लडिता अन्वयतिचिह्नयुक्ता विरहिणी कुलीवचन तनुता क्यान उद्वेगकथन वासकसम्बा स्वाधीनमर्तुका विप्रलम्बा कसहान्तरिता गोत्रस्वमिता मानिनी (उदात्त मानिनी अनुरक्त मानिनी) प्रबल्यमर्तुका प्रोपितमर्तुका अमिसारिका (विवामिसारिका तिमिरमिसारिका ज्योत्स्ना-मिसारिका बुद्धिमामिसारिका) आदि के सम्बन्ध में लिखित बहुत से स्तोत्र पाते हैं। इन स्तोकों से वैचित्र्य कविताओं की मिलाकर पढ़ने से हमारे कवन की यथार्थता स्पष्ट हो जायगी। सारे विषयों की लेकर तुलनात्मक विस्तृत विवेचन करने की पूर्णतः और जरूरत हमें नहीं है, प्रत्यक्ष कुछ चुने हुए विषयों का ही हम यहाँ विवेचन करेंगे।

‘सुकृतिकर्णामृत’ में राजसेखर इत एक स्तोत्र में उन्मिसावनी नाटी का वर्णन करते हुए कहा गया है—

पद्म्यां मुक्तास्तरणगतया संघिता सोचनाम्यां
 शोभीविम्बं त्यजति तनुता तैवते मय्यबाप ।
 पत वसा कुचसच्चिचतामद्वितीयं च वरत्रं
 लङ्गाशानां गुण-विनिमय-कम्पितो यौवनेन ॥१॥२॥४

पैरों में बचलता त्याग ही है सोचनों में समझा प्राप्य मिया है शोभिविम्बों में तनुता त्याग ही है, मय्य भाग (वटि) घब समझी सेवा कर रहा है छाती में घब (मुख की त्याग कर) बुचों की सच्चिचता ग्रहण भी है फलस्वरूप मुख घब अद्वितीय (पूर्ण सौन्दर्य में अद्वितीय और अपनी महिमा में प्रतिष्ठित होने के कारण द्वितीय विरहित भाव से भी अद्वितीय) है। इस प्रकार स वीचन न धाकर, उसके सारे शरीर में गुण विनिमय कर दिया है। यतानन्द के एक स्तोत्र में शैवने है—

(१) धाङ्गपर-व्यति च (वीर-विहर्तनु लम्पारित) वदि वा नाव
 गरी है (३२५२) ।

श्री वास्ये चेतः कुसुमवनुया सापकहर्ता
कवाडोष्पेवास्या सतनयुपमभुभिर्जिपमिवु ।
सकम्या भूवस्नी कतति नयनं कर्मकुहरं
हृत्तं मर्म्यं भुजा बतिरतसितः धोनिफलक ॥ २।२।३

"वासपन भीत जाने पर बिच कुसुमघर (मदन) के हाथ विच भुजा
है इसे देखकर इसके स्तन युपम मानो डर से निकल जाने के लिये इच्छुक
हए है नयन भीर्हि कोप रही है धर्मे कान ही धोर फँस रही है कटि
माग ह्य हो गया है बनि टेढ़ी हो गयी है, दोनों मितम्ब प्रबधम हो गय
है ।

इन पदों से विद्यापति की भीरुता की कम-सन्धि-सुम्बन्धी कविता
का मिलान किया जा सकता है—

सैतव भीवन हरसन धेत ।
हुहु पव हेरतत मनसिब गत ॥
मदनक माव पहिल परचार ।
भिज जन देस भीज अपिअर ॥
कटिच नीरव बाघोस मितम्ब ।
एकक सोन प्रमोड प्रबलम्ब ॥
बरन चपल पति लोचन पाव ।
सोबनक धैरज पवतल जाव ॥

धरबा,—

विज विज उग्रत चपीपर पीन ।
बाहुत मितम्ब माग भल पीन ॥
घावे मदन बड़ाघोल होठ ।
सैतव लकन चमक देस बीठ ॥
सैतव घोड़न शसिमुनि देह ।
रतन वैड भजत विबलि तिन देह ॥

धरबा,—

सैतव भीवन हुहु मिति घत ।
प्रबनक वच हुहु लोचन लत ॥

विद्यापति की स्य-सन्धि की कविताओं में उपा के शीतल के बार
मीन के प्रथम प्राणमन के सभी शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों के

अमर सिंह के नाम से जिसने बामे एक श्लोक में है—

कुशौ पला कर्म्य निपतति कपोल करतले
निकामं निजवाला सरलमलकं तत्त्ववपति ।
'दुष्' सामर्थ्यानि त्यजयति मुहुर्बाष्पवृत्तितं
प्रयत्नोऽयं किञ्चित्तव चाधि हृदित्वं कथयति ॥

“तुम्हारे दोनों कुश कर्मित हो रहे हैं, कपोल हुबेबी पर फिर रहे हैं और सरल मलकों को तेजी से संबोधित कर रही है वे प्रयत्न है वलि तुम्हारे हृदय के भावों को ही बता रहे हैं।”
इसके साथ हम नीचे सिले श्लोक का भा मिसाल कर सकते हैं—

दवासेषु प्रविभा मुखं करतले संबन्धने पाण्डिमा
मुद्रा बाधि बिलोचनेऽभुपद्वलं देहे च बहोदयः ।
एतावत्कथितं यवति हृदये तस्या कृपाया दुष्-
तज्जानाति ननु स्वमेव मुजय वताप्या स्थितितत्र वा ॥

‘उसकी और में सम्या विस्तार है मुख हुबेबी पर है संबन्धन में पाण्डिमा है वाक्य में मुद्रा है (मर्दान् मानो बोला नहीं जा रहा है) भावों में धीसुधों की राधि है, देह में ताप उत्पन्न हुआ है यहाँ तक तो (मूँह से) कहा—उस इस्पानी के हृदय में जो कुछ है है मुजय उमे एक मात्र तुम्हीं जानते हो वहाँ (उनके हृदय में) जो कुछ है वही वसाप्य है।”

“शाङ्गचर-पद्धति” में उद्धृत एक श्लोक में देखते हैं—

योपायन्ती विरहवर्जितं कुलमये मुक्यान्
कि त्व मुग्धे नयनविकृतं बाष्पपूरं वपति ।
नक्तं नक्तं नयनसतितरीय धार्मीकृतस्ते
धार्म्यकतला कथयति वशापलाये वीयनात् ॥

“मुद्यों के नामन विरहवर्जित दुःख को धियाने के सिधे है मुग्ध तुन नयन-विगमित-बाष्पप्रवाह क्यों टोक रही हो ? [गलोंगत नयन समित, के तुम्हारी वगा कहे है रहा है।

- (१) सङ्गलिका २।२५।१
- (२) मुक्तिमुक्तावली ४४।०
- (३) शाङ्गचर पद्धति १०६८

इसके साथ ही हम पूर्वछाप से विबुद्ध राधिक के बिना एक भी स्मरण कर सकते हैं—

निजसि मेहरसि कुटल करम्ब ।
करतसे लपन बपन धबलम्ब ॥
घने तनु मोड़सि करि बत धंग ।
अदिरल पुलक-मुकुले बह धंग ॥

;

बाब कि मोपसि धोरत ना रहइ ।
मरमरु बेवन बदन सब बहइ ॥
यतने निबारसि नयनरु लोर ।
पदपद धरदै बहसि धाय बोल ॥
घान छने धंगन घान छने धंग ।
लपने गतापति करसि एकम्ब ॥
दूरे रहु भीरब भुचजन साज ।
मोबिन्द बात बहु पड़त अफाज ॥

किर— कि तुहुं आबसि रहति एकम्ब ।
अर अर लोबने हेरति बंब ॥
बहु बहु बम्बर-योरी ।
बापसि बाहे लपन तनु मोड़ि ॥
धाय किरल बिनु धायसि धंग ।
ना आनिये कण्ठक प्रप-तरंग ॥
बनपर देखि बह्य धन टवाले ।
बिघोपात बह राबामोहन बाले ॥

धपवा जगदीशान का पर —

ए छति मुन्दरी बहु बहु धोय ।
बाहे लपि तुपा धंग धम्ब होय ॥
धपर बापिये तुपा धल धन धांजि ।
बापिये उअये तनु बंटक देखि ॥
बीन बरिया तुमि बिन्द आब बने ।
एक दिडि करि रू जिनैर बारबे ॥ धांजि ।

बनराम बास के एक पद में देखते हैं—

धुनइते कानहि धानहि धुनत
बुझइते बुझइ धान ।
पुछइते बरषव जतर ना निरुतइ
कहइते सजल नयान ॥
सबि है, कि भेत ए बनारी ।
करहुं कपोल कविता खु झावरि
अनु बनहारि बुवारि ॥
बिपरल हास रमल रस-बनुरी
बाजरि ननु भेत गोरि ।
अन अने बीष निग्रति तनु मोइइ
सधन भरये भेलि जोरि ॥
कतार-कतार नयने नेहारइ
कतार-कतार बापी ।
ना जानिये कोन बुझे बाबन बैरन
भर भर ए बुइ नयानि ॥
अन धन नयन नीर भरि घाघोत
धन धन धपरहि काँप ।
बनराम बास कहूँ जाननु कय नाहु
भेमस बिचम सन्ताप ॥

हम इस पूर्वपद्य के बिच्छ में देखते हैं कि—

त्वां बिन्नापरिकल्पितं मुनय ता संभाष्य रोमाञ्चिता
शून्यातिपन्नसंभलबुभुजपुपेनरुभाभमातिपति ।
किन्नापद्विच्छिद्यपद्यप्रमर्गो संभाष्य मूर्च्छां बिच्छन्
प्रापुञ्जीवति कर्षंमूलवतिर्निस्तमाममंभाजरीः ॥^१

हे मुनय बिन्नापरिकल्पित तुम्हें (उपस्थित) समझकर वह रोमाञ्चिता (बाला) धानियन के लिए शून्य में कर्षाये हाथों से अपने को ही धानियन करती है और क्या बहूँ बहुत देर तक बिच्छ-व्यथा को प्रदमन करने वाली मूर्च्छा को प्राप्त कर फिर कानों में तुम्हारे नाम के संभाषरों के बड़ते ही पुनर्जीवित ही उठती है ।”

मिय के नाम कानों में पड़ते ही बिच्छिनी की साथी व्याधि मूर्च्छा दूर हो जाती है यह बात केवल पन्द्रहवीं धीर सोनहवीं पद्याम्बी के बीच ही

में ही नहीं मिलती है। इसकी भाषा बहुत पहले ही से प्रचलित होती पा रही है। यही भाषा परबर्ती कास के वैष्णव साहित्य में लिखाई पड़ती है—

मुदजन प्रबुध मुदधमति परिकन
प्रलक्षित विषम वैवापि ।
कि करव धनि धनि मग्धमहोपनि
भोषन नापन समाधि ॥
कोने लने धप अंय तनु मोइइ
कहत करममय बापी ॥
ध्यामर नामे चमकि तनु मोपइ
गोविन्ददास किने ज्ञानि ॥

धबवा—तहि एक मुबतुरि ताक धबन भरि
पुन पुन कहे तुषा नाम ।
बहुजने मुन्वरी पाइ परान छिदि
यवपर कहे ध्याम ध्याम ॥
नामक धपु पुन ना मुनिए त्रिमुबन
मृतजन पुन कहे बात ।
गोविन्द दास कह इह सब धान नहु
बाई देवह ननु मान ॥

इमें मालूम है कि वैष्णव साहित्य को बिरहिणी राधा का चिरति ध्याने राधा दात परे ज्ञमनि धीपिनी धारा ॥

एक और पर में बिरहिणी राधा का बर्णन इन प्रकार मिलता है—

बिछे ध्याहुन धनि छिछावा बाप ।
धान-धान करन हुलत रिप रिप ॥
रम्य बुलक स्वेद नन्दहि धारा ।
प्रथम-वेदिमा बहु बाव विधारा ॥
धोनिनि धीपुन ध्यानि-धाधार ।
दाविने समति ना देइ बरा धार ॥
उपवन ज्ञानि धनि ध्याने निबने ।
बहिषा भरन हान बर नाहि बने ॥

राजशेखर द्वारा कवित विरहिणी भी इसी तरह की योनिनी है—
आहारे विरति- समस्तविषयप्रामे निवृत्तिः परा
नासाधे नयनं परेतदपरं पक्षीकृतानं मनः ।
मीनं केवमिदं च द्रुम्यमञ्जितं यद्विस्मयान्नाति ते
तद्भ्रूया- सखि योगिनी किमसि भो किंवा विद्योगिन्यसि ॥^१

तुम्हारा ध्यान न करना सभी विषयों से परानिवृत्ति तुम्हारे नेत्र
नासाध है मन एकतान है यह तुम्हारा मीन तुम्हें यह जो कवित
विस्मय द्रुम्य मग रहा है हे सखि इमें बताओ, तो क्या तुम योनिनी हो
या विद्योगिनी (विरहिणी) हो ।

लक्ष्मीधर कवि भी इसी प्रकार की कविता मिलती है—
यद्वीर्यस्यं वपुषि महती सर्वतश्चात्पुहा य-
सासासक्यं यद्वि नयनं मीनमिकोस्ततो यत् ।
एकापीनं क्वपसि मनस्तावदेवा वसा ते
कोऽस्त्यैक्य कथय तुमुञ्जि बह्य वा वस्त्रमो वा ॥^२

'तुम्हारे घटीर में दुर्बलता है, सभी ओर से तुम्हारे धन्दर बड़ी
पत्पुहा है तुम्हारी घातें नाक पर टिकी हुई हैं तुम विसङ्गल मीन हो
तुम्हारी यह वसा बतला रही है कि तुम्हारा मन एकापीन है । यह एक
मीन है मुमसि बही बतलाओ यह बह्य है या वस्त्रम है ?

विरह से मृतप्राय भाविका भी घोर से बूटी नायक ने कहती है—
नीरत्नं काण्ठमेवेदं ते तत्त्वं हृदयं यदि ।
तथापि वीपतां तत्त्वं गता सा वदमी वसाम् ॥^३

"तुम्हारा यह हृदय घपर मचमुच ही नीरत्न मरुड़ी हो तो भी इसे
(इस तरकी को) वो क्योंकि हमकी बतमी वसा (घर्षण् मृत्युतुल्य घवत्या)
हो गई है ।

- (१) लक्ष्मीधरकवितानुसंधय न (४१६) कवि का नाम नहीं है;
हमारे संप्रहसनी में यह राजशेखर के नाम से मिलता है ।
- (२) लक्ष्मीधरकवितानुसंधय ४२४; अनुसंधय, २।२२।२
- (३) अनुसंधय, २।२१।२

मायिका की तनुता की बसा का वर्णन करते हुए राजशेखर ने कहा है—

होलासोला इवतनमस्तजबभुषो निर्भराने
 तस्याः सप्यस्तपरमुमनपाधरा सण्डनिति ।
 तद्वात्राणां किमिदं हि बहु ब्रूयते दुर्बलत्वं
 पेयामरे प्रतिपदुरिता चन्द्रनखाप्यतन्वी ॥

“उनकी साँस झूने की तरह बँबल है, दोनों घालें मातों को निर्भर है उनके गाय मूने हुए गरफूल की भाँति पीने हैं और उसके मरीचदि की दुर्बलता की बात धयिक क्या कहें उनके सामने प्रतिपदा की उदित चन्द्रनेया भी धगनी समनी है।”

प्राचीन प्रेम कविताओं के अन्तः प्रेमोद्देश के बहुत से सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। एक उदाहरण में हम देखते हैं—

श्रीबाहुद्विभ्रते स्यगपत्युपवनं हृष्टि प्रभामन्वर्धो
 द्वारतत्त्वत्यति विव्रकेतिनरतो वेधं विव्रनम्पते ।
 धाम्ने केचममन्त्रिनीदितमप्यस्तारिप्यप्यातन
 सरस्वीरनतस्रवाहृतिबगापतन चित्तन सा ॥

श्रीव म उद्ग यं देवीनी भावूम होनी है और उावन को भी छोड़ देनी है बह की चिरला से भी बाह करनी है बिज-नेनि-गुह के दरबारी से मातों दूर हट जानी है वेद-मुपा को उदर समझनी है बहु कवन पद्य-निर्गमिव मे रचिन गम्या पर मोयी हुई है—नैरुम्य पर उरनत मुग्हायी प्राहृति कं वीमून बित्त को लेकर।”

विशं चन्द्रासोरा कुमुदपदवापो हृत्तवह
 जनजारी हार स जशु पुटपाको मलयज ।
 अर दिविहृषे त्वयि मुमय सर्वे कवमप्यो
 नभं प्रातातस्वाभरु विररीतवृहृतय ॥

“चन्द्रासोरा रित है कुमुद वन की हवा धार है हार उने पर नभक की तरह है और बहु चन्दन पुटपाक के मयान । है मुमय तुम कुछ देंगे हो गये हो ता क्या इसलिए उनके नामने नमी एक मास चिरगीत हो गये है।

(१) सङ्गितिका २।१४।१

(२) मूलश्लोक—प्रतिपदा और उदय दीप्य पामिनी, द्वारपति विद्यारति ।

(३) सङ्गितिका २।१४।१

(४) श्लो २।१४।१

उद्युक्तकर्णामृत में बोधीक कविद्वय इही तरह का एक धीर श्लोक मिलता है—

हारं पाशववाञ्छिनति इहकथायां न राजमन्त्री
पते कथक्यंकिन्नीव कतिक्रतत्ने न विभाम्यति ।
स्वामिन् सप्रति सत्प्रवचनरतात् पञ्चाधिवोद्येपिनी
सा जाला विचसन्नीरुचतपतो व्याजार्थिव प्रस्यति ॥'

इन सब के साथ जयदेव की "नित्यति चन्दनमिमुक्तिरजमनुबन्धति
सेधमधीरम्" या "स्तनचिनिहितमपि हारमुबारम् । सा मनुने इत्
उन्निवमारम्" धारि को स्वरूप किया जा सकता है । बहु कम्पीबान के
कृष्ण-कीर्तन में जयदेव के अन्तर अनुवाद मिलते हैं विद्यापति धीर पर
बर्ती कान के काम्यों में विविध प्रकार से इसका भावानुवाद या पुनरुक्ति
मिलती है ।

एक श्लोक में है—

न भीडार्थिरिच्छन्नीनु रमते मोषेति ब्रह्मात्मन
दुःखानुद्वेषि मुक्तिरस्यति लतापारे बिहारलुहाम् (?) ।
यास्त्री सुन्दर सा लक्ष्मिप्रियविरामाश्वात्मने केवले
प्रत्यायां बचती तथा न हृदयं तेनापि न त्वां नून ॥'

यहाँ देखते हैं कि 'सुन्दर' के सम्बन्ध में लक्ष्मियों के प्रिय वाक्य के
आवधारण से ही सुन्दरी जीवन धारणा किए हुए हैं वैष्णव कविता के
अन्तर बहु भाव राधा के विरह प्रसंग में मूर्च्छित कर बारबार दिखाई
पड़ता है । हम यह देखते हैं कि उपर्युक्त श्लोकों के रचयिता भी बोधी
(धोधीक ?) कवि धीर जगन्नि नर नै बोधी जयदेव के समानाधिक
कवि थे ।

वैष्णव कविता में हम देखते हैं कि लक्ष्मियों ने दास्य विरह के मन्त्र
भीरावा के प्रति वैचल्य सहानुभूति प्रकट करके काइन नहीं बँपाया है ।
पामा-वीर्य किन्ने बगैर बहु परिजन मूर्जन लगीजन किन्नी की भी परवाह
न कर अज्ञातपरिण इच्छ से प्रेम करके बंधित हुई है इसलिए
सगियों से भी उठे बोधी-बहुन किङ्कियां सट्टी बड़ी है । एक प्राचीन
कविता में देखते हैं कि लक्ष्मियां विरहिणी रही की इन तरह में जगाहना

(१) उद्युक्तक २।१५।२

(२) उद्युक्तक २।१२।४

देती हुई वह रही है—दुन्दुभारे प्रेम करते समय बिन परिचायकणी परि
जनो ने बाधा दी है, उन्हें विषयवत् देखा है घागा पीछा सोचने वाली लक्षियों
की बातों पर भी ध्यान नहीं दिया है। हे तरसे हाथों में, चाँद सौंपकर
मालो घस वृत्त ने तुम्हें बंधित किया है। घब वयों रो रही हो क्यों
विषय कर रही हो क्यों निद्राहीन बन रही हो, क्यों कष्ट पा रही
हो ?—

दुष्टोऽयं विषयम् पुरा परिजनो बुध्यायतिर्वात्मन्
पीडापीडाभिदा त्वया न हि हस्ता कर्ण लक्ष्मीना गिरः ।
हस्ते चन्द्रमिवावतार्य तरसे पुरेण विपूर्वाञ्जित
तत् कि रोदिति कि विधीयति किमुसिञ्जति कि इमये ॥

कवि विद्यापति का विरह-सम्बन्धी एक तुम्हार पर है—

बिर बन्धन उर हार ना बैन ।
तो घब नदि पिति घतिर भेल ।

यह एक प्राचीन संस्कृत स्मोक की छापा मात्र है—

हारो नारोपित कष्टे मया विस्मयनीयता ।
इदानीमावयोर्भयं तरितुं तागरमूषरा ॥^१

विद्यापति का नामाङ्कित—

राज कर बुर बलन कर बुर तोड़ह बजपोति हार रे ।
दिया घदि तैजल कि बाज नुपारे यजुना सतिने तब डार रे ॥

यदि मैं 'शाङ्ग-वदति' में पुत्र नीचे लिगे स्मोक से मिलान
किया जा सकता है ।

अपताम यमगारे बुच हारं बुर एव कि कर्मल ।
अतननमजलि मुधानैरिति बहति दिवादिगं बाला ॥^२

(१) 'सुविनाक' २।३६।१

(२) यह स्मोक शम्भुवर विषय रचित (?) 'महामारक' में मिलता
है; 'सुविनाक-वर्णन' में यह स्मोक बजपोति के नाम से मिलता है। शाङ्ग-
वदति में बुध ताडान्तर के साथ बाम्नीक के नाम से मिलता है ।

(३) १ ७। शम्भुवरपुत्र का। शम्भुवरक के 'शम्भुवरक' के
अर्थ में उक्त है भी उक्त ।

विद्यापति संस्कृत-साहित्य से असीमांति परिचित थे और उनके कितने ही यह विविध संस्कृत कविताओं की छाया लेकर रहे पये हैं यह बात उनकी कविताओं पर विचार करने से स्पष्ट हो जाती है।

विद्यापति का यह—

बल न बिलन मोहि बैलि मरना ।
हर नहि बना मोहि बुबलि बना ॥
बिमूति-भूषण नहि धाम्पनक रेनु ।
बाम धाम नहि मोटा गेतरु मस्तनु ॥
नहि मोरा बबानार बिदुरक बेची ।
दुरतरि नहि मोरा कुमुपन सेची ॥
बालम्पनक बिन्दु मोरा नहि हनु छोटा ।
सलाट पाबक नहि तिनूरक छोटा ॥
नहि मोटा कालसूत्र मुगनद बाब ।
कनिपति नहि मोरा नकुता-हाब ॥

आदि नीचे लिखे अयदेव के 'मीतपौबिन्द' के प्रसिद्ध स्तोक की छाया मिले हुए हैं इन्हें सम्यह नहीं—

हरि विस्ततवप्रारो बायं नुर्बवभनायकः
कुबलमपतयेची कर्त्ते न ता मरलघुति ।
मलयज रजो मेरं भस्म विपारङ्गिती पवि
प्रहर न हरधाम्पान्त्रेय कथा तिमु पावति ॥

अयदेव का यह स्तोक निम्नवाक्यकार की प्राचीन संस्कृत प्रसिद्ध का अनुसरण करने हुए लिखा गया है। इसे एक काव्यरसि बहा जा सकता है।

(१) मीतपौबिन्द, ११११

(२) जैसे कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक में—

मयजलधरः सन्नदीर्घं न कुतनिताधरः
मुरघनुर्गिर्धं दुरादृष्टं न तम्य धारातवन् ।
अयमपि कर्त्तारतातो न धाम्पान्त्रेय-
कनकविरचिताया विठस्त्रिया न मनोर्वशी ॥

विद्यापति के पर में है—

अथ इति भवता भेस परवत्त केहो न करए बिचार ।
 मने मने बूझल मनेपे भीन्हृत हिया तनु कुनिसक सार ॥
 कमलिनी एड़ि केतकी पता बहु सोरन हेरि ।
 कपके पिड़ल कलेवर मुक नाखत बूरि ॥

इसके साथ 'भ्रमरघटक' के निम्नोद्धृत श्लोक का मिथान किया जा सकता है—

मन्ध्याद्यासी भुवनविदिता केतकी स्वर्भर्त्रा
 पद्मप्राप्त्या क्षुधितमपुत्र पुष्पमध्य पपात ।
 धन्वीमूत कुमुदरजता कपकैन्दिम पसा
 स्वार्तु गन्तु इयमपि सखे नैव घसतो विरेकः ॥

विद्यापति के पर में है—

विगतित बिहुर मिलिन मुकमंडल खरि बेहुल बनमाता ।
 मनिमय-कुण्डल लखन कुनित भेस बाज तिलक बहिदेता ॥
 लुम्बरि लुप मुय मंगल बंयलवाता ।
 रति-विपरीत-समय खरि रायबि कि करब हरि हर घाता ॥

इसके साथ 'धमरघटक' के नीचे दिये श्लोक को मिनाया जा सकता है—

घालोतामलकावलि विमुलितं विचक्रवन्तं कुण्डलम्
 टिचिन्मुष्टिचक्रवर्कं तनुतरीं स्वेदाङ्गतां शोकरिं ।
 तन्ध्या धन् सुरताम्बुतान्तनयनं बध्रं रतिष्यपये
 तन् त्वां वानु चिराय कि हृदिहृत्कृद्वादिनिर्विकने ॥

विद्यापति के नायांकित कितने ही पर मिलने हैं । इन परों में माधिका भी जो उक्तियाँ मिलती हैं उनही उपा की उक्ति के तौर पर विद्यापति ने रचना की थी या नहीं, इसमें हमें पौर मन्देह है । नीचे माधिका धीर पागी की उक्ति—अनुक्ति—

'हूनि ररकर कहुबि तुई मोहे ।
 मुनि निरहाबे सात्रि तुया मुपन विरबि बसबोल लोहे ॥
 मतर साम्बल बेइ छपर नुरंग लोहे लो काहे जेन बुवेता ।
 'तुया मुब बहइने रतना किगइने छान्तुं अतिन भेमेता ॥ इत्यादि

(१) रायगुवाच विर का संस्करण ४२६ ।

(२) पर नाबर ८४२ ।

नपनहि निमग्नं द्वितमपि-क्रीति ।
 लज्जं ना वारिये किये बिल रासि ॥
 ऐषम जसद करल घाँपियार ।
 निमङ्गहि कोइ लज्जं नाहि पार ॥
 जमु पन-धामिनी हरि-अभिसार ।
 गमन निरंकुन धारति विचार ॥

उसी प्रकार 'सङ्कुलिकर्णामृत' में जम्बूत सुमटकवि के एक श्लोक में देखते हैं—

अमलोचय गतितमिन्नपिडमण्डलै-
 र्मन्वीर्यैतिश्रुतितं नमस्तनम् ।
 द्विषसेऽपि पञ्जुसनिकुञ्ज मिश्वरी
 विमतिस्म अस्तमवर्तितं रसत् ॥

'मपूरमण्डल के मूल-मकटक मन्वीर्य में से नमस्त्वन् को प्राकृत पैदाकर घमिसारिका ने बिल को ही उस के बंध में अस्तमभूषित पञ्जुत कुञ्ज में प्रवेश किया ।'^१

तिनिघमिसार में जिस प्रकार बोलते हैं कि राधा ने सब तरह से नील बेध में सज्जकर पंचकार के साथ अपने को मिला देना चाहा है उसी प्रकार ज्योत्स्नामिसार में बोलते हैं कि राधा प्रथम वनत बेध में अपने को ज्योत्स्ना से मिलाकर अभिसार कर रही है ।

समुचित बेध करहु वर जन्मन वपुरलचित करि संघ ।

दुप-येन-सित अम्बर पहिरहु कुञ्जहि जलहु निरांक ।

(पौरनोहन)

धमवा—

कुम्भ कुमुद पत्रमोक्षिण हार ।

पहिरल हृदय साँपि कुञ्ज-नार (कविचोत्तर)

(३) सङ्कुलिक- २।६३।१

(१) विधावि जलद्वीपममुपचितान्धकाराप्यया इत्यादि । बही, २।६३।३

(२) मीली इयानतरोजवान लयनप्रमो-अर्जुन । इत्यादि । बही, २।६४।२
 बाली बहिनपुष्पनेदुरनुरो निमिषकस्तूरिका-
 वरालीनपमिषनील वलप । इत्यादि, बही, २।६४।३

प्राचीन कविता के सम्प्रद में ठीक यही प्रथा या कलाकीरण मिलता है । गोविन्ददास के एक प्रसिद्ध पद में मिलता है—

पाहूँ चहुँ भरवन्-वरने बलि मात ।
 ताहूँ ताहूँ परबि हृदये धनु गात ॥
 यो तरोबरे चहुँ बिलि बिलि माह ।
 हास भरि सलित होइ तबि माह ॥
 ए सखि बिछु-नरन बिरहभ ॥
 पाहने बिलइ पर गोहुतकम् ॥
 यो वरवने चहुँ निज नुब बाह ॥
 ननु धंय ज्योति होइ तबि माह ॥
 यो बीजने चहुँ बीजइ मात ।
 ननु धंय ताहि होइ मुहु बात ॥
 बाहूँ चहुँ भरवइ बलभर इयाम ।
 ननु धंय गयन होइ तय ठाम ।
 गोविन्ददास कहूँ काचन-गौरि ।
 सो परफल-तनु तोरे किये दोड़ि ॥

पूर पद स्वयंभवापी के उद्भव-जीवमयि में पुन नीचे उद्भूत प्राचीन स्तोत्र का आशानुसार है—

पंचवर्ष तनुरेण धननिबन्धा स्वाद्ये विप्रमि ह्युदं
 याकारं प्रविश्य हस्त शिरसा तत्रापि पाप्मे वरम् ।
 तत्रापिपु शयस्तदीयमुदरे श्योनिस्त्वहीषांगन
 श्योमि श्योम तदीयवर्षमि परा तत्कालवन्मे-निम ॥

राधाश्रेय का पदसम्बन्ध वरक बाणकी गरी में श्री कृष्ण कविता मिली कई है उमम बाणकी गरी धीर उनके बहुत पढ़ने की मिली पापिद

- (१) तुलसीदास—कतयत्रपरबलिपतनयो नभहारतनादिभूमिना
 तिलतरद्वारप्रहृतवचरदयो दक्षिरामनागवा ।
 रामवृत्ति विगतपापिनि पवनपनि परात्रविभाष्यना यना
 प्रियवर्तनि वरन्ति मुमुक्षेव बिबो निरस्तबिषोर्नितारिवा ॥

कबीरदासकृतपुस्तक २२५, कवि का नाम नहीं है तदुक्तिवर्धमान में (२।६५।२) काव के नाम से ।

धीर धी—श्रीश्री श्रीविन्ददास केनकदमं कर्णे सुगुणरत्नं

ताटेकं करिदमकं रननागं कर्पूरेषुकरा । इत्यादि

मुद्रित २।६५।३

प्रेम-कविता में हमने जो मेल दिखाने की चेष्टा की वह राधाबाब की उत्पत्ति और कमबिकाश के इतिहास में एक दिशा से विद्येय तात्पर्यपूर्ण है। इसीलिए हमने कुछ विस्तृत विवेचन की व्यवस्था की है। हमने देखा है कि बारहवीं सदी के जयदेव के असाधारण रूप से मयी कवियों की मिली राधा-प्रेम की कविता और बारहवीं सदी के बहुत पहिले मिली राधा-प्रेम की कविता समसामयिक पाश्चिम प्रेम-कविता एक ही मूल में प्रवृत्त है। जयदेव से लेकर परबर्तीकाम की वैष्णव-कविता से भी भारतीय विरप्रवृत्त पाश्चिम प्रेम-कविता की धारा में वहुत मेल है। साहित्यिक पक्ष से विचार करने पर हम राधा के परिचय में कह सकते हैं कि राधा भारतीय कवि सामयवृत्त मारी का ही एक विशेष रसमय विद्ग् है। वैष्णव-साहित्य में ब्रितने गुरुगरो का वर्णन है, रमोद्धार, खंडिता बलहान्तरिता आदि का जो वर्णन है वह सारा का सारा भारतीय आध्य-साहित्य और रतिमत्त का अनुसरण करते हुए बनता है। प्राकृत रति का स्वतन्त्र मूल्य माना वैचिन्मयम मुनिपुत्र वर्णन सर्वदा प्राकृत प्रेम के दृष्टान्त पर असाकृत प्रेम का एक आसाय देने के लिए ही मिया गया था इस बात का स्वीकार नहीं किया जा सकता। एसा प्रतीत होता कि—पारम्पर में यह भारतीय प्रेम-कविता की बाध के साथ प्रविद्धिन् रूपमें ही निरुत हुआ था पार्वकम की गंगा तो लीची गई बहुत मात्र में। परबर्ती काय में योद्गीय मोस्वामियों द्वारा जब राधातन्त्र मजदूरी से प्रतिष्ठित हो गया तब भी साहित्य के अन्दर राधा अपनी छाया-मदुहरी मातवी मारी को मोमहों आने नहीं छोड़ सकी। काया और छाया के अदिमाबड मात्र से एक विभ रूप की सृष्टि की है। योद्गीय वैष्णव-साहित्य के विवेचन के प्राग म हम बर्तीय राधा के विवरण वन परिचय एक बार फिर देने की चेष्टा करेंगे।

अष्टम अध्याय

धम और वशन में राधा

बागहवी मदी में धममन में मिमी-जुम हर्ष श्रीराधा की जो प्रविष्टा हम ऊपर देव पाए है। उमने किमी सत्त्व शक्तिज मतवाद का विषय नहीं है। धर्मान् राधा तब तक किमी विनोप दासनिज तत्व का विषय नहीं है। लेकिन बागहवी मदी के इस माहियत में—विनाय करके मीमांसक के 'वृत्तपर्याय' धीर अयदेव के मीमांसिक भाष्य में हम एक चीज की प्रकानता पाते हैं वह है मीमांसक की प्रकानता। परबर्षी नाम के राधा धार के विवचन के प्रथम में हम देखें कि इस मीमांसक की प्रविष्टा धीर प्रकानता के साथ राधागत की प्रविष्टा धीर प्रकानता धर्मिप्रकान्त में वक्त है। हम ऊपर पूर्वबर्षी नाम के विद्वाने प्रचार के बीज तथा दीव्यात्म दारिद्र्य पर विचार कर पाए हैं। उमके अन्तर् दया है कि मीमांसिक-मूर्ति का अर्थ हीनी है स्वल्पविक्रम में मीमांसक का बीजा कोई सम्बन्ध नहीं है। पुनश्चारी में लक्ष्मी म मीमांसिकता का धामान नहीं मिला है। धी राधागत के अन्तर् इस मीमांसिकता का एक जो धीर भी प्रकानता मिमी है। बागहवी मदी में धारक हमने देखा कि स्वल्प वक्ति राधा धीर वृत्त में जो धर्मागत मीमांसक है। उमी के धामान का ही बीजों में 'धर्म प्राप्ति' का लीन पर स्वीकार किया गया है। अयदेव के समय किमी दार्शनिक मतवाद के प्रभाव में परिवर्तन की प्रविष्टा धीर प्रविष्टि न करने पर भी देगने है कि राधा-वृत्त के युगा में धरने को जरा दूर हटा कर मीमांसिक मीमांसिकता धीर मीमांसक अय-गत—मगी मानो भक्त के लिए धर्म प्राप्ति का वस्तु हा गई है। मीमांसिक के लोच में जो देगा—

राधाभाष्यव्योक्तं धमकायत सत्त्वतः ।

धम के पक्ष में मही मानो मीमांसिक का युग स्वर है। लक्ष्मी जगत् इस विविध मीमांसक की महिमा पाई गई है। इस मीमांसक की विद्वानता है मीमांसक का माधुर्य। अयदेव न वृत्त के अयुक्तिक बर्षान् धारि विन पक्षों का बहुत बुरा अन्वय किया है। मीमांसक माना माना उमकी धर्म माधुरी की एक इन्द्र के अन्तर् में अयवित्त अयुक्तिक धाम के विविध ही

किया गया है। हम पहले कह धाते हैं कि मधुर रस का यनीमूत विषह ही रचा है प्रत्यक्ष राजा का धाबिर्भाव और प्रविष्टा सभी जगह मधुर रस के धाबार पर ही हुई है। इस युग के वैष्णव साहित्य के हमने जो दो विधेय लक्षण बताये धर्मात् सीमाबाह और मधुररस की प्रधानता की बात से दोनों मलय विश्वमंगल ठाकुर के 'वृष्ण-कर्मामृत' ग्रंथ में भी सुस्पष्ट है। विश्वमंगल ठाकुर का वह 'सीमाकुक्' विशेषण विशेष रूप से लक्षणীয় है। साधक कवि का परिचय है—मधुर बुन्दावन सीमा को निकट के कदम्ब से देखना और धास्वारन करना और युक्त की भाँति मधुर काव्य-काकली में उठी के माधुर्य का वर्णन करना। इस माधुर्यकविणी देवी के धाबिर्भाव से जयबाहु श्रीवृष्ण का सब कृष्ण ही मधुर है। यहाँ वृष्ण विरकिणोर है। यह किष्णोरावस्था 'कामावतापंकुम्' और 'मधुरिभस्वाराव्यम्' है। यहाँ 'कमला' भी इस प्रकृत-माधुर्य की ही विषय मान है। इसीलिए हम यह प्रार्थना देवते हैं—

तद्व्यावह-कर्मामय-विपुलायन-नयनं
कमलाकुक्-बलशीभर-विपुलीहृतपुनकम् ।
मुरलीरवतज्जोहृत-मुनिमानसनातिने
मम ज्ञातु मरवेतति मधुरापरममृतम् ॥१८

इसी माधुर्य रस के सिन्धु श्रीवृष्ण क—

मधुरं मधुरं मधुरस्य विमोर्षपुरं मधुरं वरनं मधुरम् ।
मधुरान्ध्रि मधुरिभस्वितमेतवहो मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम् ॥१९

वैतन्य के पूर्ववर्ती युग में दो और कवियों ने राधा-वृष्ण के सम्बन्ध में कविता लिखकर प्रगति पाई थी वे हैं विद्यापति और चण्डीदान। इनकी कविता में प्रचलित राधा-वृष्ण गौड़ीय वैष्णव धर्म में प्रचलित राधा-वृष्ण पर विचार करने में सुस्पष्ट हो जायगा। इसलिये हम विषय पर हम ध्यान से विचार नहीं कर रहे हैं।

गौड़ीय-अग्रदाय क पहले निम्बार्क-अग्रदाय के धन्दर हम श्रीगया को वृष्ण के नाम धर्मप्रभाव में उपास्य के रूप में स्वीकृत होने देगते हैं। निम्बार्क केवल ब्राह्मण थे। उनके नाम के बारे में बहुत जटिल रिपोर्ट पढ़ना है। वे रामानुजाचार्य के नाम हुए थे। चार प्रसिद्ध-वैष्णव अग्र दायों में धर्मप्रभाव यह निम्बार्क अग्रदाय गनरानि-अग्रदाय या हंज-अग्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। निम्बार्क धर्मिणाय ब्राह्मण होने पर भी वृष्णधर्म में गते थे और वरन मन्त्र है कि इसीलिए वृष्णधर्म के रूप में सभी

श्री श्रीपादादि की जगह गोपिनी राधा को ही निम्बार्क ने प्रधानता दी है। भयवान् श्रीकृष्ण को ही निम्बार्क ने परमब्रह्म स्वीकार किया है। इस परमब्रह्म श्रीकृष्ण की विविध शक्तियों के सम्बन्ध में निम्बार्क ने अपने प्रसिद्ध ब्रह्मसूत्र के भाष्य 'बिदास्त-पारिजात-सीरस' नामक ग्रंथ में जो कुछ लिखा है वह एक प्रकार से रामानुजाचार्य के विवेचन के ही अनुरूप है। पूर्व-जन्मों की तरह निम्बार्क सम्प्रदाय के शेषकों ने भी श्रीकृष्ण भयवान् को 'रत्नापति' 'श्रीपति' 'रामानुजमहन्' आदि के रूप में विरोधित किया है। मेदिनी श्रीकृष्ण के कामाक्ष-विहारीणी के रूप में प्रथम-प्रशस्ति राधा की भण्टा ही प्रतिपादित की गई है। निम्बार्क-रचित 'दत्तलोकी' के पाँचवें श्लोक में हम देखते हैं—

धनं तु धामे कृपमानुजा मुरा विराजमानामनुकपञ्चीनयाम् ।
राजीसहस्रं परिमेक्षितां तथा स्मरेम देवीं सवत्स्यकामदाम् ॥

"कृपमानुजिनी (राजिका) देवी को स्मरण करता हूँ—जो अनुरूप मीनगा के रूप में (कृष्ण के) अपने धन में धानन्द ही विराज रही है जो हजार मणियों के द्वारा मत्स्य परिमेक्षित होती है और जो मारी मत्स्य-कामदाएँ पूरी करती है। पुण्योत्तमाचार्य ने 'दत्तलोकी' पर 'बिदान्तरत्न-संज्ञा' नामक जो भाष्य लिखा है उसमें उन्होंने कृपमानुजा राजिका के 'अनुरूपमीनगा' 'देवी' 'सवत्स्यकामदा' आदि विशेषण की त्रिज प्रकार के भूति-गुणआदि का उल्लेख करके व्याख्या की है वह मानुसाचार्य के 'अनु-जनी' या रामानुजाचार्य के 'मत्स्य' के मत्स्यी के लिए प्रयुक्त इन प्रकार के विशेषणों में वैच्युत्पाद इत व्याख्या के ही अनुरूप है। यही कृपमानुजिनी राधा पंचरात्र या पुराणादि में जगित विष्णु की 'धनदायिनी' शक्तिवाचक है। राधा-रूप की पुण्यमूर्ति त्रिज हजार मणियों के द्वारा मत्स्य परिमेक्षित होती है इसकी व्याख्या करने हुए पुण्योत्तमाचार्य ने एक मार्ग की बात कही है। ये स्वार्थिचारिका मणियाँ भक्त स्थायीय हैं ये अकल्पित 'अकल्पकाम' की पूर्ति के लिए इन मत्स्य की मत्स्य देवा बनने हैं। एतौकोत्त 'कृप' पद राजिकर की 'त्रिजिन्त्य श्रेयान्त्वमूर्ति' का धारक है। 'विदास्त-पारिजात' पर का तात्पर्य है स्वल्प के रूप में शीघ्र विदग्ध में राजिका प्रेक्ष करण्य आदि रूप में शक्ति या शक्तिमती है। राधा की यह शिष्यश्रेयान्त्वमूर्ति-रक्षणता कृष्ण के साथ 'अस्योन्मत्स्यविधानात्' त्रिज सम्बन्ध और श्रेयोर्ण की मत्स्य करते ही 'अकल्पकाम' का अर्थ

उद्धृत किया गया है—'उषया मापको देवो माकवेन च उषिका । इत
राधातल्य धीर सकीतल्य के घन्वर भी एक स्पष्ट घन्वर का उल्लेख
पाठे है । लक्ष्मी का ऐश्वर्यपिच्छातुत्व है ब्रह्मस्त्री का प्रेमाधिच्छातुत्व है
ब्रह्मस्त्री का प्रेमाधिच्छातुत्व धीर उसके वरध के स्मरण में ही प्रेमशतुत्व
है, इनीलिए लक्ष्मी की घोषणा इन ब्रह्मवधु की ही प्रधानता मानी गई है ।

निम्बार्काचार्य ने अपने 'प्रातःस्मरणस्तोत्र' में उपासना के बारे में
लिखी थी । इनके प्रतिरिक्त उन्होंने 'दृष्णाष्टक' 'उषाष्टक' प्रादि अष्टकों
की भी रचना की थी ।

सासहृषी शताब्दी में बम्बयन में गौड़ीय वैष्णव पोस्वामियों के विवेचन
में ही राधातल्य का पूर्ण विरास हुआ । वहाँ गौड़ीय वैष्णव पोस्वामियों
से गौड़ीय ब्रह्मण मतवाद धधलम्बी ब्रह्मण पोस्वामियों को समझना
आहिये केवल ही वेध के ब्रह्मण पोस्वामियों को ही नहीं समझना
आहिये क्योंकि पद्मपोस्वामियों में प्रसिद्ध गोस्वामी मोरान मद्रु दक्षिण
देशवासी थे । 'वैतन्ध-अरितामृत' में वैतन्धदेव ने गोशकरी के धीर [पर
मन्त्र राध रामानन्ध से उपासल्य के बारे में जो गुह्य धीर विस्तृत विचार
हुवा था जने दलने से समता है कि गौड़ीय पोस्वामिया डाय प्रचारित
यह उपासल्य ज्ञान रामानन्ध में धधल्य दक्षिणदेशीय वैष्णवों में प्रचलित
था । सीतागुरु क 'दृष्णकर्णामृत' में भी इन विरास को पुष्ट करने की
सामग्री मिलती है । मेखित मन्त्र बुझामधि इन्द्रधाम कविराज के रिये हुए
विकरण को कहीं तक गम मला वा नकटा है बहु विचारणीय है । मखित
इन प्रन्ध में एक धीर लघ्व विधेय रूप से ध्यात देने मायक है । धीमान्
महाग्रन्थ के राधाभाष नामक त्रिस धधल्य की बात हम जानने है उनका
मधुरतल्य परिचय हमें 'वैतन्ध-अरितामृत धध में मिलता है । 'वैतन्ध-अरिता
मृत में कवित महाग्रन्थ के सारे 'दिव्यभाष' धीर ब्राह्मण्य का डेगन पर
पता चलता है कि महाग्रन्थ के राधा भाष का मन्धक विनाम दाक्षिणाय
धधमण के बाध ही हुवा था । दाक्षिणाय धधमण के बाल में महाग्रन्थ की
बहुनेने दक्षिणदेशीय वैष्णवों क मुनाकल हूँ धी धीर विरास में इष्टपीठनी
हुई थी । राध रामानन्ध के राध ही इन निभूतनधधामोबना धीर रणान्धारन
की पगकाल्य दिगापी पकनी है । इनके बाध में ही महाग्रन्थ का काबान्तर
चलनीय है । इनके बाध में हम उन्हें महा राधाभाष में सीत जाने है ।
धधान्ध महाग्रन्थ के इन राधाभाष के विनाम में राध रामानन्धारि दधिय
राध वैष्णवों का प्रभाष रहता धधमन्ध नहीं है । मद्रु बाल मन्ध है कि
रामानन्ध के मद्रु ग वैतन्ध-अरितामृत में कविराज मोनानी ने त्रिस

माध्य-मापन-तत्त्व पंचरत्न-तत्त्व और रामातत्त्व पर विचार विमर्श किया है उसे देखने से संभव होता है कि गौड़ीय वैष्णव धर्म के प्रतिष्ठित तत्त्वों को ही पापद कबिराज गोस्वामी ने राय रामानन्द के मूँह में डाल दिया है। ऐतिहासिक दृष्टि से हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि गौड़ीय वैष्णवों द्वारा प्रचारित रामातत्त्व के अनुकूल तत्त्व प्रत्यक्ष साकार में दर्शाए गए हैं भी प्रचारित वा विचार-विमर्श के समय इमीलिए वैष्णव और रामानन्द में गहरी एकता विद्यार्थ पड़ती थी।

सुश्रुत सनातन रूप और जीवगोस्वामी की संस्कृत में लिगी विविध पुस्तकों के साधारण पर ही गौड़ीय वैष्णवों का दार्शनिक मत बना है। इसमें जीवगोस्वामी की रचनाओं के अन्तर् ही श्रीरामा की दार्शनिक प्रतिष्ठा है। इसीलिए जीवगोस्वामी ने सनातन और रूप इन दोनों बड़े पिण्डों का अनुगामी होने पर भी हम पहले जीवगोस्वामी का अनुसरण करके रामातत्त्व का प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करेंगे। 'वीष्णु-सुख' और 'श्रीनिन्द-सुख' में जीवगोस्वामी ने रामातत्त्व पर जो विचार किया है वह बहुत कुछ रामगोस्वामी के 'मधोप-आगबतामृत' और 'उत्सव-मीमांसा' का अनुसरण करते सिखा गया है लेकिन रामगोस्वामी के ग्रंथ में जिन बातों का विशेष में उल्लेख है जीवगोस्वामी ने उन्हें अधिक विस्तृत दार्शनिक मतवाद के अन्तर् बहुत करने की चेष्टा की है। इसीलिए तत्त्वा नीचन के लिए हम प्रथमतः जीवगोस्वामी के 'पद-सुख' का ही ले रहे हैं। पद दार्शनिक तत्त्व साहित्य और रामानन्द के अन्तर् जिन प्रकार गहनपिण्ड पशुपुत्र हुआ है इन पर हम प्राय विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।

जीवगोस्वामी हुए 'तत्त्व-सुख' 'भगवत्-सुख' 'परमात्म-सुख' 'शुद्ध-सुख' 'शक्ति-सुख' और 'श्रीनिन्द-सुख' इन छ मंत्रों में ही गौड़ीय वैष्णवों के मागे मनसा तथा उपाहार की दार्शनिक प्रतिष्ठा है। इन 'पद-सुख' में विशेषतः प्रथमतः विवता जीवगोस्वामी का है हमारा निर्वन करना भी कहते हैं। प्रथम सुख के विवरण के पूर्व जीवगोस्वामी ने प्रथम के अन्तर् में जो मोक्षार्थ कृतिरा दी है उस पत्र में तथा बताया है कि इन प्रथम में धारणीय तत्त्वा की रामगोस्वामी रामानन्द भट्ट ने ही पहले संघट्ट किया था लेकिन स्वयं हमारा इनका उपयोग नहीं किया। इन विचारों तत्त्वा का धनी शक्ति संवर्धन करके एक दार्शनिक तत्त्वानीचन के और पर प्रतिष्ठित करने की प्रेरणा और उत्साह जीवगोस्वामी ने अपने ज्योत्सव-सुख रूप और सनातन में पाया था। इसीलिए धर्म मोक्षार्थ भट्ट की

वेन किठनी है धीर जीवयोस्वामी की वेन किठनी है इसका स्पष्ट विचारण संभव नहीं है ।'

इस प्रयोग में दो-एक बातों को याद रखना चाहिये 'पद्-संघर्ष' में जीवयोस्वामी (पोपासमट्ट की हो चाहे जीवयोस्वामी की हो) के अपने चोरकार विचार नहीं है । एक प्रकार से हम वहाँ पुरुषादि के मतों का एक सार-संकलन धीर उसके स्वसन्निधेय की कुछ-कुछ गई व्याख्या पाते हैं । इसीलिए जीवयोस्वामी ने अपने विवेचन के प्रारम्भ में ही शास्त्र के तौर पर पुरुषों की श्रेष्ठ प्रामाणिकता प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है । इन पुरुषों में श्रीभागवत-पुरुष की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है । जीवयोस्वामी का सारा विवेचन मुख्यतः भागवत-पुरुष का अवलम्बन करके ही किया गया है । भागवत-पुरुष की व्याख्या के बारे में जीव गोस्वामी ने अपने पूर्वाचार्य श्रीहर-स्वामी का ही सर्वत्र अनुसरण किया है । इसीलिए हम देखेंगे कि जीवयोस्वामी ने अपने संघर्षों में जिन तर्कों की अवधारणा की है उनमें प्रायः सभी पूर्ववर्तियों के विवेचन में मिलते हैं । उन्होंने वहाँ जितना विवेचन अपनी धीर से किया है उस भी पुरुषों की प्रामाणिकता से ही सुप्रतिष्ठित करने की श्रेष्ठता की है । अतएव शक्ति तर्कादि के क्षेत्र में हम देखेंगे कि इनारे पूर्ववर्तित पुरुषादि की ही भाँति प्रामाणिक्य कर पुराने प्रबंध नये आसोक में दिखाई पड़ रहे हैं । पूर्ववर्ती मतमत वा मततावुस्य के बारे में हम प्रायः विस्तारपूर्वक विवेचन करना चाहेंगे ।

बौद्धिक गोस्वामियों द्वारा व्याख्यात राधा-तत्व को भसीभाँति समझने के लिए हमें पहले बौद्धिक शैक्षणों के शक्तितत्व की भसीभाँति समझना होगा धीर इन शक्तितत्व को समझने के लिए गोस्वामियों द्वारा व्याख्यात ब्रह्मतत्व परमात्मतत्व धीर भद्रतत्व को समझ लेना होगा । श्री मद्भागवत में ही हमें इन परमतत्व के दिग्गमिणित तीन रूप या स्तर के सामान्य मिलने हैं ।

- (१) जयती मधुरामुनी श्रीमद्वपतनातनी ।
 यी बिलप्रयतसतस्त्रावनी बुस्तिवापिमाम् ॥
 कोर्षि तशाम्यको बट्टो बलिपत्रिजर्बताम् ।
 बिबिध्य व्यातितद् धर्मं लिलिताद्रुर्बल्लम् ॥
 तस्यार्षं पम्बनालनं चान्नाप्यत्वात्तनगिदतम् ।
 पर्यालोभ्याह पर्यायं हृत्वा तिपनि जीवकः ॥

वरुणि तत्त्वविरस्तत्वं यज्ञानमउच्यम् ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति धार्यते ॥

जो प्रथम प्राण है उसी को तत्त्व जानने वाले तत्त्व कहते हैं वह प्रथम-
जानतत्त्व ही ब्रह्म परमात्मा और भगवान् कहलाता है। इसमें ब्रह्मतत्त्व
है परतत्त्व की सब प्रकार की शक्ति आदि की विकसितरहित निबिद्येय
धरन्वा ब्रह्म के धरन्व ही शक्ति आदि का न्यूनतम विकास होता है
उत्तम धर्मव्यक्ति जो तत्त्व है वही रूपभयवत्त्व है। जिस तत्त्व के
धरन्व शक्ति का पूर्णतम विकास होता है वह जिस तत्त्व के धरन्व शक्ति
का न्यूनतम विकास होता है उनमें श्रेष्ठ है। इसीलिए वीथीय मन्त्रानुसार
ब्रह्म और भगवान् धरन्व और धरन्वी समझे जाने हैं। ब्रह्मतत्त्व भगवत्त्व के
धरन्वत एव तत्त्व है। इसीलिए उपनिषद्दि में शक्ति ब्रह्म पुरवोत्तम
भगवान् की 'तन्मा'—पूरा भगवान् शीघ्रत्व की धरन्वत के तौर पर
ही शक्ति होने हैं। इसीलिए बीना में पुरवोत्तम भगवान् ने कहा
है—“ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽयम्—”मैं ही ब्रह्म की प्रतिष्ठा हूँ। इस ब्रह्मतत्त्व के
बारे में कहा गया है कि मुक्ति-व्युत्पन्न धरन्वी साधना के द्वारा 'तन्
स्वरूपता' को प्राप्त होने पर भी उस 'तन्-स्वरूपता' के धरन्व जो स्वरूप-
शक्ति की विभिन्न लीला है उसे ब्रह्म नहीं कर सके। धरन्व के सामान्य
भाव में लघिन परतत्त्व की 'धरन्विक-व्यक्ति-शक्तिमत्ता-भेदता'—धरन्व
शक्ति और शक्तिमान् को धरन्व धरन्व नहीं करके पूरी तरह धरन्वत में
धरन्व किया है। यह सामान्य भाव में लघिन धरन्वत में प्रतिपाद्यता
तत्त्व ही ब्रह्मतत्त्व है। वही तत्त्व फिर धरन्वी स्वरूपमूला विविक्तशक्ति
के मत पर जब एक 'विद्य' रूप धरन्व करता है और धरन्वी शक्ति-
तन्मूर्तों के (धरन्व स्वरूपमूला नहीं है तभी जीवशक्ति और साधकशक्ति
आदि के) मूलाधर के रूप में धरन्वत बनता है—यही नहीं धरन्वी
स्वरूपमूला धरन्वशक्ति शक्तिरूप धरन्व करके जिस साधक परमत्त्वों

(१) ब्रह्मं ब्रह्मोक्तिरिति तत्त्वस्य तन्मा इत्यादि ।

ब्रह्म धरन्वशक्ति तौर विविक्त प्रजापते ।

सूर्य मन चम्पकले व्योमिमय भावे ॥

शक्तिमान (मध्य, २ अध्याय)

धरन्व धरन्व तत्त्व विरचनधरन्व ।

धरन्वत ब्रह्म तारे ब्रह्म मुनिधरन्व ॥

चम्पकले देव धरन्व तत्त्व विविक्त । इत्यादि ।—ब्रह्म

(आदि २)

को परिभाषित किया है—उत्तरी घन्तरिन्द्रिय और बहिरिन्द्रिय में जो घानन्दमय के रूप में परिस्फुरित होते हैं—जो अपनी विविध विविध शक्ति और शक्तिमान् इन दोनों भेदों में प्रतिपद्यमान हैं—वही भगवान् कहलाने के योग्य हैं ।' घटएव हम देखते हैं कि घानन्दभाव के रूप में वही एक मात्र विशेष्य है और दूसरी सारी शक्तियाँ उनका विशेषण हैं । इस घनन्तशक्ति-विशेषण के द्वारा जो विशिष्ट है, वही भगवान् है । ऐसी विसृष्टता प्राप्त होने के कारण पूर्वाभिर्भावितो वही भगवान् ही घकंठ तत्त्व है और ब्रह्म 'घप्रकृति-वैशिष्ट्याकारहेतु उत्तरी भगवान् के ही 'घसम्य-माभिर्मवि' हैं । जीवगोस्वामी ने 'भगवत्-नन्दम' के सारे विशेषणों के घन्त में भगवान् का एक सुन्दर सङ्घटन किया है । इस घघन में कहा गया है कि 'जो सञ्चिदात्मनैककल्प स्वस्वभूत-सञ्चिदविचित्र-घनन्तशक्तिपुस्त है जो धर्म होकर भी धर्मी है निर्मल होकर भी भेदयुक्त है, घकपी होकर भी लपी है व्यापक होकर भी परिच्छिन्न है जो परस्पर विरोधी घनन्त युक्तों के विधि है जो स्वस्वभूतमविमलान स्वप्रसादात्त स्वस्वभूत श्रीविग्रह है स्वानुक्त्वा स्वाशक्ति की घाभिर्मविमलताया लक्ष्मी के द्वारा त्रिनम्र सामोघ रञ्जित है जो स्वप्रभाविरोपाकार-रूप परिच्छिन्न और परिकर-गहित मित्र नाम में विद्यमान है जो स्वकृपाशक्ति के विभासरूप घन्मुन्युपसीत्यादि द्वारा घात्मात्मान् मुनियत्ना के जित का भी सीलात्म स चमत्कृत करने है जो स्वयं सामान्य प्रसादाकार में ब्रह्मणस्व के रूप में घघम्यित है जो जीवात्म्यत्वात्माशक्ति के और जगत्-प्रपञ्च के मूलीमूल मायाशक्ति के घाम्य है वही भगवान् है । 'भग' शब्द का घर्थ है ऐश्वर्यं विविध विविध शक्ति ही माने ऐश्वर्यो को देती है इमीलिय पूर्ण विचित्र शक्ति-मान् पुरण ही भगवान् है ।

(१) तदेकमेवान्तरात्मस्वरूपं तत्त्वं बुद्धितपारमेष्ठ्यादिकल्पान्तरमहयानां परब्रह्मज्ञानां साधनबघान् तावत्संन्यायमे साध्यामपि तदीयस्वरूपशक्ति-वैशिष्ट्यां तद्ब्रह्मज्ञानमवश्यं वैतति यथा साध्यात्मनो सञ्चिदं तत्त्वं तदुत्पत्तिं वा तद्ब्रह्मज्ञानमविचित्रमविमलमसामेहतया प्रसिपाद्यमानं वा ब्रह्मज्ञानं शक्यते । यथा तदेकं तत्त्वं स्वकृपासुखं घक्यया चमपि विशयं घर्तुपरानामपि शक्यते । मुलाधमकृपं तदनुब्रह्मणस्वसादोहृत्सर्त्मविभवाबुद्धिज्ञानान्यानां भागवतपरब्रह्मज्ञानां तपानुभवसाधनतम-तदीयसाधनान्तरं शक्तिविशयात्म्यक-अविमलविनेच्छात्तद्विहिर-पीन्द्रियपरिस्फुरत् वा तद्ब्रह्मदेव विचित्रताबुद्ध्याशक्ति-विचित्रताभवेन प्रविराद्यमानं वा भागवतमिति घच्छत ।

की जो अचिन्त्य अमरत्वशक्ति है शक्ति-गुणनादि में व्याख्यात और प्रख्यात इस शक्त को बहुत अधिक प्रधानता दी गई है। भयवान् की इस अचिन्त्य अमरत्वशक्ति को साधारणतः तीन हिस्सों में बाँटा गया है—अन्तरेणा स्वरूपशक्ति तटस्था जीवशक्ति और बहिरंगा मायाशक्ति। शक्ति का यह त्रिधाभेद मुख्यतः विष्णु-गुणानु के एक बचन पर ही आधारित है—जहाँ शक्ति को परा देवता और शक्तिवा कहा गया है। स्वरूप-शक्ति का अवस्थान प्रकृति के उस पार है अतएव यह अज्ञात नित्य बोधोक्तवान् की वस्तु है। जीवशक्ति और मायाशक्ति दोनों ही प्रकृति के बल में हैं—दोनों ही इसलिये प्राकृतिक शक्ति हैं। भयवान् स्वयं ही सभी प्रकार की शक्ति के मूल आधार हैं उन्हीं धर्म में तटस्था जीवशक्ति भी उन्हीं की शक्ति है। लेकिन स्वरूपशक्ति ही एकमात्र उनकी स्वरूपवृत्ता है यह उनकी धातुमात्रा है। जीवमाया और भुवमाया रूपा जीवशक्ति और मायाशक्ति का संभव भयवर्द्धपुरुष परमात्मा से है अतएव भयवान् से इन दोनों शक्तियों का सम्बन्ध विलक्षण परोक्ष है।

भयवान् की इस अमरत्व शक्ति को विक्रिया न कहकर चतुर्विधा भी कहा जा सकता है। एक ही परमेश्वर स्वाभाविक अचिन्त्यशक्ति के द्वारा चतुर्धा अवस्थान करता है प्रथमतः सर्वत्र स्वल्प में अवस्थान त्रितीयतः तदुपबैभव तृतीयतः जीव और चतुर्थतः प्रधान या प्रकृति में। पूर्ण ब्रह्म समागत भयवान् सीतल के रूप में परमेश्वर के प्रथम अवस्थान ह पूर्ण भयवान् सीतल के स्वरूपमूल विभिन्न अवस्थाएँ वैभव और चतुर्धामय वैभवादि नाम और उन नाम में भयवान् के नित्यपरिष्कारमय वे ही सब परमेश्वर के त्रितीय रूप में अवस्थान हैं। पञ्चमी अचिन्त्यशक्ति के बल पर वे विभिन्न प्रकार यानि नित्यस्वरूप में वर्तमान रहते हैं उन्हीं प्रकार उन स्वाभाविक अचिन्त्यशक्ति के बल पर ही पवन को विभिन्न प्रकार के अवतार के रूप में प्रकट करते हैं यानि स्वरूप की ही धाम और परिष्कार के रूप में विभूत करते हैं। इन दोनों रूपों में अवस्थान उनकी स्वरूप-शक्ति के द्वारा नाशित होता है। उनकी तटस्था शक्ति के द्वारा उनकी जीव के रूप में परिणति होती है बहिरंगा मायाशक्ति के द्वारा उनकी जगत् के रूप में परिणति होती है। यह जो एक अव्यक्त का नित्यस्वरूप में अवस्थान है अवस्थाएँ और धाम तथा परिष्कारि चतुर्धाम के रूप में त्रितीय अवस्थान है और जीव तथा जगत् के रूप में परिणति इस तत्त्व को सूर्य के विभिन्न अवस्थान या परिणति के दृष्टान्त

में समझाने की चेष्टा की गई है। सूर्य जिस तरह पहले अपने अन्तर्मण्डल के तेज के रूप में अवस्थान करता है, द्वितीयतः उस अन्तर्मण्डल के तेज के ही ऐश्वर्य से या विस्तार से उसके सम्पूर्ण तेजोमण्डल के रूप में अवस्थान करता है, तृतीयतः उस मंडल से निकलने वाली उष्मि के रूप में और चतुर्थतः उसकी प्रतिच्छादि के रूप में अवस्थान। यही सूर्य के अन्तर्मण्डल के तेज के प्रमुख परमतत्त्व के स्वरूप का अवस्थान है मन्म है तद्रूपवैभव के रूप में अवस्थान भीव है मंडलबहिर्गत उष्मिस्वामीय और जगत् है प्रतिच्छादि स्वामीय। हम विष्णु-मुखाय में देख घ्राए हैं कि इसी को ही एक-वैपस्वित धामिनी की विस्तारिणी ज्योत्स्ना की भाँति कहा गया है। श्रुति में भी कहा गया है कि एक उन्ही के मास के द्वारा सभी प्रकार पाते हैं। अगर कहा जाय कि ब्रह्म सर्वव्यापक है सर्वव्यापक ब्रह्म के इस प्रकार के चतुर्धा अवस्थान की संभावना नहीं है तो इसके बजाय में कहा जा सकता है कि ब्रह्म की 'अचिन्त्य' शक्ति के द्वारा सब कछु समझ हो सकता है जो कछु दुर्बल है उसे बटिठ करने की सामर्थ्य ही तो शक्ति का 'अचिन्त्यत्व' है 'दुर्बलबलत्वं अचिन्त्यत्वम्'। 'अचिन्त्य' होने के कारण ब्रह्म की यह शक्ति कल्पमात्र नहीं है। ये शक्तियाँ 'स्वामाधिकी' हैं इस बात पर पूर्ववर्ती सभी वैष्णव सम्प्रदायों की भाँति मौड़ीय वैष्णवों में भी जोर दिया है। एक पक्ष से विचार करने पर शक्तिमात्र ही 'अचिन्त्य' है क्योंकि शक्तिस्वरूप कभी भी मनुष्य के ज्ञानपोषक नहीं है। संसार में 'अचिन्त्यादि' की जो शक्ति है वह भी तो 'अचिन्त्यज्ञानगोचर' है। 'अचिन्त्य' शब्द का तात्पर्य है जिसके विषय में कोई भी ज्ञान तर्कयुक्त नहीं है केवल शार्ङ्गल प्रमाण व ही जो शोचनीय होता है। इसीलिए कहा गया है—“अचिन्त्या मित्रामिप्रत्यादिबिकल्पैश्चिन्त्यायिमुत्रशक्याः शक्तिः” मित्र-अमित्र इत्यादि विषय के द्वारा जिसकी चिन्ता नहीं की जा सकती है, केवल शार्ङ्गवृत्ति के द्वारा ही जो ज्ञानगोचर होता है, वही 'अचिन्त्य' है।

परमतत्त्व के हम चतुर्धा अवस्थान के अन्तर से हमें परमतत्त्व की त्रिविधा शक्ति की बात माननी हुई। स्वल्प-शक्यताया अन्तर्या शक्ति के द्वारा ये पूर्व-मगवान् के स्वरूप में और वैकुण्ठादि स्वरूप-वैभव के रूप में अवस्थान करते हैं उष्मिस्वामीय तटस्वा शक्ति के द्वारा 'चिरे

(१) एकमेव तत् परमतत्त्व स्वामाधिकीशक्तिव्याप्त्या सर्वत्र स्वल्प तद्रूपवैभव-बीजप्रधामशेषे च चतुर्धावतिष्ठते। सुप्रसिद्धतत्त्वस्यैव इव पण्डित उद्दिष्टतरदिम-उत्प्रतिष्ठाविशेषेण। —“अपस्तम्बार्थ”।

घाए है जीवगोस्वामी न उसकी व्याख्या में कहा है, अर्थात्—अर्थात् परमार्थ स्वरूप मेरे सिवा ही जो प्रतीत होता है मेरी प्रतीति से जिसकी प्रतीति का प्रभाव है मेरे बाहर ही जिसकी प्रतीति है—मगर अपने घाप जो प्रतीत नहीं हो सकता है—अर्थात् मशायत के बिना जिसकी कोई स्वतः प्रतीति नहीं है—वही मेरी माया है—जीवमाया और गुणमाया । 'यथा मास' और 'यथा तम' इन दोनों शब्दों से माया के जीवमाया और गुणमाया दोनों रूप व्यक्त हुए हैं । आधुनिक के पंडितों ने भी इस अगदुयोमिरुपा निरूपणप्रकृति माया को अचिन्त्य चिदानन्दरूपी मास्वर मुख्य की प्रतिच्छाया के रूप में वर्णित किया है । इस प्रसंग में हमें माया की दो स्वतन्त्र ब्रुतियों का भी उल्लेख मिलता । इन दोनों प्रकार की मायाओं को 'गुणमाया' और 'जीवमाया' कहते हैं । सृष्टि घादि के मायम में त्रिभुवनात्मिका प्रकृति ही गुणमाया है, इस गुणमाया को ही अगदुब्रह्माच्च के नीम-उपादान के रूप में स्वीकार किया गया है । जीवमाया जीव को अयब्रुविमुक्त करके उसके स्वरूप के ज्ञान को प्राप्त कर देती है और जागतिक वस्तु ही उसे प्राप्त कर डालती है । सृष्टि-कार्य में मुख्य निमित्त-कारण है ईश्वर लेकिन जीवविमोहनकारिणी इस जीवमाया को सृष्टिकार्य में भी निमित्त-कारण स्वीकार किया गया है ।

हम पहले ही बोल घाए है कि बीजबयन परिणामवादी है जीव और अपत् ब्रह्म के ही परिणाम है, बिना नहीं । सत्यसकस्य सत्यपरयन ईश्वर का परिणाम होने के कारण सृष्टि घादि जीवगोस्वामी की सत्यता है वे भ्रममात्र के रूप में मिथ्या नहीं हैं ।' यहाँ मायासृष्टि इन्द्रबामदिशा के द्वारा निर्मित मिथ्यासृष्टि नहीं मानूम होती 'भीयते' अर्थात् विभिन्न निर्मायते अतया' इसी अर्थ में माया माया का यहाँ विभिन्नार्थकरप्रतिवाचित है । सृष्टि परमात्मा का ही परिणाम है, मगर स्वयं ईश्वर अपरिणामी है उसी अपरिणत ईश्वर की अचिन्त्य शक्ति के द्वारा जो परिणाम है वह सम्प्राप्ततावमासमान-रूप' जो स्वरूपम्बुहू है—वही स्वरूपम्बुहू रूप इत्यास्यशक्ति द्वारा ही बटित होती है, स्वरूप से ही परिणाम का बोध नहीं होता है ।'

(१) परमराम-संदर्भ, ७१

(२) तब च अपरिणतस्यैव ततोऽचिन्त्यया तथा शक्त्या परिणाम इत्यसौ सम्प्राप्ततावमासमानस्वरूपम्बुहूहूप्रत्यास्यशक्तिरपेक्षं परिणमते—न तु स्वहवेति गम्यते । परमराम-संदर्भ ७१ ॥

साधारणतः माना जाता है कि पितृ शीर शक्ति जीव शीर जड़
 अथवा दोनों ही ब्रह्म की एक मायाशक्ति की सृष्टि हैं, लेकिन यौगीय
 वैष्णवों ने जीवसृष्टि का अद्वैतत्व करके भगवान् की जो शक्ति है उसे
 भगवान् की एक पृथग्भूता विशेष शक्ति कहकर ग्रहण किया है। विष्णु-
 पुराण में इस जीवभूता विष्णु-शक्ति को शेषशक्त्या अथवा शक्ति कहा
 गया है। गीता में हम देखते हैं कि भगवान् ने अपनी प्रकृति को पर शीर
 अथवा दो हिस्सों में बांटा है। जड़-अमशक्तिका प्रकृति ही अथवा प्रकृति
 है शीर जीवभूता प्रकृति पर प्रकृति है। इस जीव-शक्ति को तटस्था
 कहने का एक महत् कारण है। समुद्र की तटभूमि एक ओर जिस तरह
 ठीक-ठीक समुद्र के अन्दर भी नहीं है शीर दूरची ओर बाहर भी नहीं है
 जीव भी ठीक उठी तरह स्वल्प-शक्ति के अन्तर्गत नहीं है शीर पूरी तरह
 स्वल्प-शक्ति के बाहर की मायाशक्ति के अन्तर्गत भी नहीं है। एक ओर
 स्वल्प-शक्ति दूरची ओर बहिरंशा मायाशक्ति इन दोनों की बीच की होने
 के कारण जीव-शक्ति तटस्था-शक्ति के रूप में स्थापित है। मायाशक्ति के
 भी परे शीर शक्तिघातकवादि दोनों के द्वारा परमात्मा का भी अभाव
 है अतएव दोनों की कोटि में ही जीव के अवेग का अभाव है, दूरची ओर
 जीव में दोनों कोटि में ही अवेग करने की सामर्थ्य है इसीलिए जीव-शक्ति
 तटस्था शक्ति है। इन विषय में भाष्यरत्न में एक सुन्दर श्लोक है। इन
 श्लोक में कहा गया है कि वह जीव जब मृत्यु होकर माया का अतिवृत्त
 करता है तब वह माया के बुरों की ही सेवा करके तदर्थमुक्त हो जाता है
 शीर स्वल्पविस्तृत होकर अमरमरुत संसार की प्राप्ति होता है। इसके
 बाद वह जब फिर स्वल्पनिर्मुक्त लक्ष्मी की अति उच्च माया का परिचय
 करके प्राप्तिरथंशान् होता है तब अतिमादि अत्यन्तुचित परम ऐश्वर्य से ऐश्वर्य
 वान् हाकर अतिरिक्तमत्त से पूरनीय होता है।^१ इसी प्रकार स जीवशक्ति
 का शान्ति कोटि में अवेग भी है— दोनों कोटि में अवेग भी है।

(१) अतिरिक्तमत्तस्यै प्रकृति विद्धि स पराम् ।

जीवभूता महाब्रह्मो यत्वं चाप्यते जगत् ॥ ७।३

(२) स परमया एवामनुमानीन मुक्तारथं कुर्वन्

भजति तदपनां तदनु मन्वुत्वेनमगः ।

तद्वत्त जहाति तापहिंसित स्वधमात्ममगो

महति ब्रह्मिणेऽनुमिनेऽतिवेदमगः ॥

जीव नामक उच्छ्वा शक्ति प्रसंख्य है। इस जीवशक्ति के दो वर्ग हैं, एक वर्ग अनादि काम से भयवद्-जग्मुल और दूसरा अनादि काम से ही भयवद्-विमुक्त है। इन दोनों वर्गों के कारण हैं स्वभावतः भयवद् ज्ञान-भाव और भयवद्-ज्ञान का अभाव। इनमें प्रथम वर्ग का जीव संतर्पण शक्ति के विनाश के द्वारा अनुगृहीत होकर वैकृष्ट में मित्य-भगवत्-परिकल्प को प्राप्त करता है दूसरे वर्ग का जीव भयवद्-विमुक्तता शेष के कारण माया के द्वारा परिमूत होकर संघारी होता है। केवल अद्वैतम भव प्रकृति से अथवा केवल भव पुरय से जीव का जन्म नहीं हो सकता है वायु के द्वारा विद्युत्त्व जल से जिस प्रकार अनदिगत बुलबुले उठते हैं उसी प्रकार प्रकृति-पुरय दोनों के मिलन से सोपाधिक जीव की उत्पत्ति होती है। विद्युत्कारिका प्रकृति भव है सूक्ष्म जीवक्य पुरुष भी भव है। इन दोनों भवों से किसी प्रकार की उत्पत्ति संभव नहीं है। वास्तव में इन दोनों के अन्दर से ही परमात्मा ही सभी जन्मों के कारण है। प्रकृति के सभी विकार जब महाप्रलय में लीन होते हैं तब स्रष्टावाचना के कारण जीवात्मा शक्तिवा परमात्मा में लीन होती है। सृष्टि के समय ये परमात्मलीन शक्तिवा विकारिणी प्रकृति के प्रति घासक्त होकर क्षुम्भितवाचना होकर सोपाधिकत्वस्था को प्राप्त होती है और जीव के रूप में जन्मग्रहण कर जातीं और जूमती है।

माया का कार्य है केवल जीव-विमोहन—जीव में स्वरूप-विस्मृति उत्पन्न करना। गीता में भी कहा गया है अज्ञान के द्वारा ही ज्ञान प्राप्य होता है उसीसे सारे जीव मोह को प्राप्त होते हैं। इस जीव-विमोहन कार्य के लिए माया खुद ही विलम्बमाना है उसका यह जीवविमोहन कार्य भगवान् को अज्ञा नहीं लगता इस बात को समझ कर और मेरे सभी कर्मदाचारों को भगवान् जानते हैं इस बात को जानकर ही मानों यह माया भगवान् की नजरों के सामने रहने में लज्जित होती है। केवल अद्वैतकी अग ही इस माया के अतीत होकर कुछ भोग करते हैं। इसलिए जीव की ईश्वर-भक्ति ही इस माया के हाथों से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय है।

यह जीवशक्ति मायाशक्ति के संस्पर्श में आकर माया के द्वारा परिमूत हो जाती है इसी में लेकिन जीवशक्ति और मायाशक्ति स्वरूप में विभिन्न है क्योंकि जीवशक्ति चैतन्य-स्वभावा है, मायाशक्ति अद्वैतस्वभावा।

(१) विलम्बमानया यस्य स्वातुजीवापभेऽमुषा।

विमोहिता विकल्पतो जनाहमिति बुधियः ॥ भाष्यत २।१।१३

नित्य अनुस्वभाव जीव विद्यम परमात्मा का रश्मिस्थानीय चित्त रूप है। इसीलिए जीवशक्ति को बहुधा चिच्छक्ति भी कहते हैं। अगर यह चिच्छक्ति भगवान् की स्वस्वभूता चिच्छक्ति नहीं है, यह शक्ति वह शक्ति नहीं है—वैतन शक्ति है—इस साधारण धर्म में ही इसे चिच्छक्ति कहते हैं। वास्तव में अनुस्वभाव जीव भगवान् का ही धर्म है तभी में अगर बुद्धस्वरूप में प्रवर्तित स्वस्वशक्ति शीघ्रता का प्रथम नहीं है जीवशक्तिमुक्त रूप का ही धर्म है। प्रश्न हो सकता है कि पूर्व भगवान् रूप केवल मात्र स्वस्वशक्ति-मुक्त होकर बुद्ध रूप में प्रवर्तित करते हैं तो उनसे जीवशक्ति का किसी प्रकार का सम्पर्क किन प्रकार से संभव हो सकता है? इसके उत्तर में हम परमात्मसंस्कार में देगते हैं कि सभी तत्त्वों में एक 'परस्पर अनुप्रवेश' है। शक्तिमान् परमात्मा के धर्म भी जीवशक्ति ने अनुप्रवेश किया है और इन अनुप्रवेश के कारण ही भगवान् भी जीवशक्ति में मुक्त रहते हैं।

अब हम भगवान् की स्वस्वशक्ति के बारे में विचार करने। इस स्वस्वशक्ति के साथ विभिन्न जीवादिनाम में ही भगवान् की ऐश्वर्य और साधुयों में पूर्णता है। भगवान् शब्द में शीघ्र यद्यथा विन घ. गुणों का बोध होता है ये परगुण स्वस्वशक्ति के ही विद्य-विद्य विनाश मात्र है। स्वस्वशक्ति का विनाश होने के कारण ये परगुण भगवान् में किसी प्रकार से आरोपित युक्त नहीं है इनमें भगवान् का नित्य समवाय सम्बन्ध है। एक धर्म में शक्तिमात्र ही माया है। जिसके द्वारा परिमाण किया जाता है (मीमांसे धनया इति भाषा)—धर्मान् जिसके द्वारा भगवान् भगवत्पुत्र में परिमित अनुभूत या सधित हाउ हैं वही उनकी माया है। अतएव उगी धर्म में स्वस्वशक्ति भी भगवान् की माया है। इसीलिए कहा गया है "मायास्या स्वस्वभूता नित्यशक्ति से मुक्त होने के कारण यनात्म चित्तु को भी मायामय कहते हैं। स्वस्वशक्ति उनकी

(१) जीवशक्तिविरहितस्यैव तत्र जीवोऽपि, न तु शक्त्येति वचनमिति ।
जीवस्य तच्छक्तिरूपत्वेनैवासात्त्वमित्यतः प्रवर्तते ॥

परमात्म-नाम्न १२

(२) शक्त्याऽपि तत्त्वानां परस्परानुप्रवेशविशेषस्य प्रतीकत्वं इत्येवं
शक्तिवति परमात्मनि जीवात्परमात्मपुत्रेणाविशेषस्यैव तत्त्वोत्पत्तये
हेतुरित्यभिप्रेति । परमात्म-नाम्न १४

(३) भगवत्पुत्र-संस्कारों में उक्त 'अनुप्रवेश' नाम्नी शक्ति । 'अनु-
प्रवेश' में कहा गया है—'माययावा तद्विद्या स्यात्' ।

घात्ममाया है। भगवान् की घात्ममाया का तात्पर्य है भगवद्विष्णु। इस
दृष्ट्या के अन्तर ज्ञान और क्रिया इन दोनों ही बृत्तियों के होने के कारण
घात्ममाया भी ज्ञान और क्रिया इन दोनों बृत्तियों के द्वारा ही उपलब्धित
है। यह घात्ममाया या स्वस्व-शक्ति ही भगवान् की 'विष्णुशक्ति' है।

गुणमयी माया प्रकृति के उत्पत्ता पर अवस्थित विद्युत् भगवत्तत्त्व में स्वस्व-
शक्ति की बृत्ति के अभाव में दूसरी कोई शक्ति-बृत्ति नहीं है। इस स्वस्व
शक्ति की बृत्ति मचना करते हुए हम पहले देखते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण
सन्धिदानम् स्वस्व है। तो भगवान् को पूर्व-स्वस्व में तीन बर्ण मिले—
धृत्, चित् और ध्यानम्। भगवत्-स्वरूप के इन तीन बर्णों का प्रथमम्बन करके
भगवान् की स्वस्व-शक्ति भी निभा हुई—संविनी शक्ति और ज्ञात्रिणी।
इस अन्तर विष्णु-पुरुष का एक स्लोक उद्धृत कर आया है। वहाँ कहा
गया है—

ज्ञात्रिणी संविनी संचित् स्वयमेव सर्वसंस्थितौ।

ज्ञान-तापकरी-निभा स्वयि नो गुणवर्जिते ॥

१।१९।१६६

"सबकी संस्थितिरूप तुममें ज्ञात्रिणी संविनी और संचित् ने एकस्व
कारण किया है। ज्ञात्रकरी तापकरी और निभा शक्तियों गुणवर्जित तुममें नहीं
है। यहाँ ज्ञात्रकरी शक्ति का अर्थ है मन-प्रसांगोत्था सात्त्विकी—अर्थात्
सत्त्वबुद्ध्यात्मिका शक्ति तापकरी का अर्थ है विषयवियोगाद्विषु तापकरी'
अर्थात् तामसी शक्ति और निभा का अर्थ है तदुभयानिभा विजयवन्त्या
राजसी। गुणवर्जित भगवान् में इन सारी गुणमयी शक्तियों का कोई स्पर्श
नहीं है। केवल उनके स्वस्व के धृत् चित् और ध्यानभाव का प्रथमम्बन
करके संविनी संचित् और ज्ञात्रिणी शक्तियाँ हैं। संविनी शक्ति है 'सतता'—
अर्थात् सत्ताकरी संचित् है 'विद्याशक्ति' और ज्ञात्रिणी है आज्ञात्रकरी।
इनमें 'ज्ञात्रिणी वह शक्ति है जिसके द्वारा भगवान् स्वयं ज्ञात्ररूप होकर
भी आज्ञात्रित होते हैं और दूसरों को आज्ञात्रित करते हैं। उसी तरह
स्वयं सत्तारूप होकर भी भगवान् जिसके द्वारा सत्ता धारण करते हैं और
कारण करते हैं वही 'सर्वविषयकाल इत्यादि प्राणिकरी' संविनी है और
स्वयं ज्ञानरूप होकर भी भगवान् जिसके द्वारा कुरु जागते हैं और दूसरों
को जागते हैं—वही संचित्-शक्ति है। इसके भीतर फिर उत्तरोत्तर गुणो-
त्कर्ष द्वारा संविनी संचित् ज्ञात्रिणी—इस क्रम से ही शक्तियों को जानना
होगा। तीनों शक्तियों में गुणोत्कर्ष में संविनी से संचित् प्रधानता है—क्योंकि सत्ता
के एक परम उत्कर्ष के द्वारा ही संचित् को ज्ञाना जाता है। फिर इस

संकिन् के चरम उत्कर्ष के द्वारा ही विगुड घालन्यानुमति होती है प्रत्येक गणोत्कर्ष में ह्यारिणी संकिन् ही तीनों घक्तिवों में श्रेष्ठ है।

भगवान् की इस स्वरूपमूर्ता मूल घक्ति के चन्द्र एक स्वप्रकाश ताम्ररङ्गवृत्ति विशेष है उक्त स्वप्रकाशताम्ररङ्गवृत्तिविशेष के द्वारा जब भगवान् के स्वरूप का या स्वरूपघक्ति का विधिष्ण घाबिर्भाव होता है तो उसी को 'विगुडसत्त्व' कहते हैं। स्वप्रकाशताम्ररङ्ग स्वरूपघक्ति व वृत्ति विषय को ही 'सत्त्व' कहते हैं (अत्र सत्त्वघटनेन स्वप्रकाशताम्ररङ्ग स्वरूप-घक्तिवृत्तिविशेष उच्यते) त्रिगुणात्मिक माया के स्पर्शाभाव के कारण ही (घर्षण प्राकृत सत्त्व रज तम के स्पर्शाभाव के हेतु) यह विगुड सत्त्व है। यह विगुडसत्त्व सत्तामात्र नहीं है विगुडसत्त्व का प्रकाश सम्पूर्णरूप से अस्यनिरपेक्ष है। प्रत्येक भगवान् के स्वप्रकाश आप्त ज्ञानवृत्तिप्रयुक्त यह संकिन् है। इस विगुड सत्त्व में जब संकिनी-संघ प्रयाग जाता है तब यह 'घाघार-सक्ति' नाम ग्रहण करती है। संकिन्-संघ प्रयाग होने पर यह 'घाघार-सक्ति' होती है और ह्यारिणी-सारांश प्रयाग जाने पर यह गुह्य-सक्ति' होता है और चन्द्र विगुडसत्त्व में एक ही माप ३५ तीना घक्तिवों की प्रयागता होती है तो भगवान् की मूर्ति होती है। पुरोहितानि 'घाघार-सक्ति' के रा ही भगवान् का नाम प्रकाश पाता है और पूर्वोक्त मूर्ति के द्वारा ही (घर्षण विगुड सत्त्व में युगल घक्तिवों की प्रयागता के रा ही) भीविग्रह प्रकाश पाता है विगुडसत्त्व ही 'बभुरेव' है इस बभुरेव से उत्पन्न भीविग्रह ही 'बाभुरेव' है। भी भगवान् के ही घास्पर्श की श्रयण होने के कारण पुराण में मूर्ति को घर्षण की तीर पर बर्षण किया गया है इस विगुडसत्त्व के चन्द्र ह्यारिणी घादि की प्रयागता के द्वारा ही भी घादि का प्राणुर्भाव सम्पन्न होगा। ये भी घादि भगवान् की सम्पद-स्विणी है। घर्षण घक्तिमात्र के रूप में उनही भगवद् विग्रह घादि के साथ शेरारण में स्थिति है और सम्पद घादि की घादिघाती के रूप में रूप से दक्षिण भगवान् के घाघारण के रूप में यह स्थान करती है। पर्वभूता घनत्ववृत्तिवाया स्वरूप-सक्ति ही भगवताम्रा बर्षिणी भरती है। भरती का विष्णु से स्वल्प में घर्षण की बात अभी पुराणों में नहीं गई है भरती और परमेश्वर का घादि-स्पर्श के रूप में जो बर्षण है वह उपचारण भेदकभनेच्छा से ही किया गया है। शस्त्र में एक ही स्वरूपनक्षित और घक्तिमात्र इन दो रूपों में विचार करता है हमने घक्ति विनयी स्वरूपभूता है बही घक्तिमात्र प्रयागता द्वारा भगवान् है बही स्वरूप घक्तित्व-आपाय में विचारभाव होने पर भरती-संघ

प्राप्त होती है।' तो सवमी भयवान् की समग्र शक्ति की विग्रह है। यह सवमी धनन्त-स्वभूतिमेव से धनन्ता है। पुरापादि में भी पुष्टि, निरु, कान्ति कीर्ति तुष्टि आदि विन विविध विष्णु-शक्तियों का उत्प्रेक्ष पाते हैं वे एक ही स्वस्वभूति का भेद मात्र हैं। प्रथम प्रभूति-धामयस्या भयवान् की स्वस्वभूता धनन्ता महाशक्ति ही महाशक्ती है। श्री—आदि उही महाशक्ती की ही विभिन्न भूतिरूपा है। भयवान् की शक्ति विन तरह साधारण और से अप्राकृत और प्राकृत भेद के कारण दो प्रकार की है—श्री-आदि शक्ति का भी उही प्रकार अप्राकृत और प्राकृत भेद के कारण दो रूप है। जैसे श्री महाशक्ती के धन के रूप में भानवती सम्पत् ह और दूसरी और प्राकृत के रूप में 'बगती सम्पत्' है। इसी प्रकार 'इसा' 'सीसा' रूपिणी भी है और 'धू' रूपिणी भी। इसी प्रकार महाशक्ती के धनन्त जो भेदशक्ति है वह विद्यारूपिणी है—यह 'बोध-कारण' है और यह संविद् शक्ति की ही भूतिविशेष है। अप्राकृत भक्त्याभादि जो प्रेमा-गन्ध-भूतियाँ हैं उनके धनन्त भयवान् के विभूत्यादि की विभूति के कारण एक भेदबोध की प्रतीति है—यह वही 'विद्यारूपिणी' भेद है और प्राकृत में यही भेदशक्ति विद्या के रूप में धनियन्त होती है यही संसारियों के स्व-स्वस्व-विभूति-आदि के हेतुस्व साधारणतक भूतिविशेष है। इसी महाशक्ती के संविनी संविद् और ज्ञादिनी ही भेद है। शक्ति की साधारण शक्तिरूपा भूति विभक्ता जया योगा प्रकृति ईशाना आदि को उही महाशक्ती का ही धनन्तविशेष समझना होगा। इनमें 'संविनी' है सत्ता 'जया' उत्कृष्टिनीशक्ति 'योगा' है सर्वाधिकारिता-शक्ति की हेतु। इनका विन तरह अप्राकृत रूप और भूति है उही तरह प्राकृत रूप और भूति भी है।

धीमगवान् की वह स्वस्व-शक्ति दो प्रकार से प्रकट होती है एक धनने स्वस्व में और दूसरी धनने स्वस्व-विभव में। हमने देखा है कि भयवान् की स्वस्वशक्ति के धनन्त स्वप्रकाशात्तलभन भूतिविशेष है वही विद्युत्सत्त्व है। इसी विद्युत्सत्त्व से ही पूर्ण भयवान् श्रीहृत्त्व के नाम परिकर, सेवकारिरूप वैभव का विस्तार होता है। सीसा-पारंपरगत भी उनके इस स्वस्व वैभव के धनन्त है धनने उही वैभव के साथ ही रतमय श्रीहृत्त्व की सीता-वैभिय होता है। यह वैभव में प्रथम है

(१) धनन्तमेव स्वस्व शक्तिधेन धनितमन्वेन च विराजतीति यद्य सती स्वस्वभूतात् नित्यपितं तच्छक्तिमत्त्व-प्राप्तत्वेन विराजमानं भयवत्-संज्ञायाम्पौति। तच्च ध्याव्याप्तं तदेव च अस्तित्व-प्राप्तत्वेन विराजमानं स्वस्व-संज्ञायाम्पौतीति।

—भयवत्-सम्बन्ध ।

सामतत्वा । मगवान् धीर उजका नाम लोगों एक है क्योंकि वैकुण्ठारि नाम उनके स्वल्प के ही घुड़ सत्वमय विस्तार है । त्रिभुजात्मिका प्रकृति के परे बिरजा नाम की एक नवी प्रवाहित होती है । सत्व रज धीर तम इन प्राकृतगुणों से रज या तम के विपत्त होने के कारण यह बिरजा नवी है । इस बिरजा के उस पार परम्प्योम है इस परम्प्योम में ही विगुड सत्वमय वैकुण्ठारि का भवस्थान है । इस नाम में गृहप्रासाद बत उपवन तस्मत्वा फलकृत्य पपु-मयी सब कुछ है । वे सभी अप्राकृत दिव्यरूप में व्यवस्थान कर रहे हैं । मगवान् का धाविर्भावनाम ही जिस प्रकार उजका जन्म है उसी प्रकार वैकुण्ठ की कल्पना धीर वैकुण्ठ का धाविर्भाव माध प्राकृतगत क्रियम मही है । इसीलिए मगवान् जिस प्रकार नित्य है उसी प्रकार भवद्-नाम भी नित्य है । बर्हा के पार्येव परिवार, मेवक-भक्त सभी नित्य है बर्हा की सीमा भी इसीलिए नित्य है । ये नित्यमय पार्येवम इसीलिए भगवद्-सदग धीर कासातीत है । वे धाम धीर मेवक पार्येवदि सभी स्वरूपान्त-पाठी होने पर भी एक मेवकसाधा वृत्ति का धामय करके विभिन्नरूपों में प्रकाशित होते हैं । ये विभिन्न प्रकार के भीमगवान् के ही प्रकाश-विशेष-वैविध्य प्रकाश करने के लिए है ।

इस नाम के बारे में वैष्णवगणों में अनेक विस्तृत विचारण है । हम संक्षेप में कह सकते हैं कि वैकुण्ठारि नामों में सर्वोच्च नाम है गोतोड इसी गोतोड से ही गोकुम बना है । इस सर्वोच्च धाम में ही त्रिभुजमुखा-पाठी गोपबेग में भीरुण की नित्य सीमा होती है । जिस प्रकार भीरुण के शरीर धीर सीमा के धमकत्व धीर प्रकटत्व है उसी प्रकार उनके धाम के भी धमकत्व धीर प्रकटत्व है । धमकट गोतोड या गोकुम धीर प्रकट गोतोड या गोकुम स्वरूपत एक ही है । भीरुण की धमक धमिनय शक्ति के द्वारा धुनयन् यह प्रकट धीर धमक धाम धीर सीमा विस्तारित होते हैं । भीरुण की सीमा-विधिवत्ता के अनुसार इन इण्डोड के भी त्रिधा प्रकाश है—शरका मयुरा धीर वृथावन तीनों नामों में भीमगवान् की सीमा भी तीन प्रकार की है परिवर्धनि भी तीन प्रकार के हैं । प्रकट नाम में जिस प्रकार धमुनादि नदियों के ज-निवृद्धज वरम्भ धगोरु गोत-मोती भेद-नाम धुनगारी धादि हैं धमकट धाम में भी इसी प्रकार सब कुछ है एक धुनरे का 'प्रसाधविशेष' नाम है । धामा-मयुरा में यादवगण ही इण्ड के सीमा-परिहार है धीर गरीतम वृथावन सीमा में गोत-मोतीगण ही इण्ड के नित्य-परिहार है । भीरुण की धामि में गोपमोतीगणों के भी प्रकट-धमकट धु है ।

स्वल्प में भगवान् 'रसमय' है। उनकी यह रसमयता मूर्ति धारि में परिलीन हुई है। भगवान् की इस रसमयता का कारण है उनकी स्वल्प-शक्ति के धारक की श्रेष्ठ ज्ञादिनी-शक्ति। हमने पहले ही देखा है कि इस ज्ञादिनी-शक्ति के दो काम हैं। एक है ज्ञातस्वल्प भगवान् को ही प्राज्ञादिन करना दूसरा है दूसरों को ज्ञात बन करना। तो इस ज्ञादिनी शक्ति का जीव-कोटि धीर भगवान् कोटि दोनों में ही प्रवेश है। भगवत् कोटि में अवस्थित ज्ञादिनी भगवान् को विभिन्न बीमारत के बान के द्वारा रसमय कर रही है और जीव कोटि में प्रवेश करके वह ज्ञादिनी पवित्र मन्त्र के रूप में प्राविर्भूत होकर विशुद्धतम ध्यान का विधान कर रही है। यह भगवन्मुख जीवमय विशुद्ध ध्यान ही शक्ति है। मन्त्र का जो शक्ति-वर्णित ध्यान है और भगवान् का जो नीला-वर्णित ध्यान है— ये दोनों एक ही शक्ति की ही दो कोटियों के दो व्यापार हैं। भगवान् में ज्ञादिनी रसस्विनी है—मन्त्र-रूप में ज्ञादिनी शक्ति-रूपिणी है। स्वल्पशक्ति की धारमूला यह जो ज्ञादिनी-शक्ति है उसी की धारबन मूर्ति है राधा—नित्य प्रेमस्वल्प की ही नित्य प्रेम-स्वल्पिणी। इसीलिए राधा केवल प्रेमरूपिणी नहीं है राधा ही नित्य प्रेमराजी है। पूर्ण भगवान् कीदृश्य में राधा धनन्त ज्ञादिनीशक्ति के रूप में अवस्थान करती है। लेकिन उसी धनन्त ज्ञादिनी-शक्ति का कममात्र नित्य अनुस्वभाव चित्तकम बीजके भीतर गिरकर उस प्रेमशक्ति से प्राप्नुत कर रहता है इसीलिए राधा भगवान् की प्रेमरसमयता है और मन्त्र की भी प्रेमरसमयता है।

हम पहले देख आए हैं कि, श्रीभगवान् की समस्त स्वल्पशक्ति का साधारण नाम लक्ष्मी या महालक्ष्मी है। वह लक्ष्मी भगवान् के ऐश्वर्य कारण माधुर्य धारि सभी शक्तियों की धारामूला है। लेकिन हम भगवान् की सारी शक्तियों में ज्ञादिनी-शक्ति की श्रेष्ठता देख आए हैं। इसीलिए ज्ञादिनी का बनीभूत विग्रह राधिका ही कृष्णशक्ति के रूप में

(१) तुलसीय— कृष्णके धाङ्गमे तसे नाम ज्ञादिनी ।

देह धरितद्वारे मुख धास्वारे धारनि ॥

मुखस्य कृष्ण करे मुख धास्वारेन ।

नस्तपमे मुख रिते ज्ञादिनी कारण ॥

चरिताभूत (कथ्य ८८)

धीर भी— ज्ञादिनी कारण कृष्णे धान्धास्वादन ।

ज्ञादिनी द्वाराय करे नक्षेरे शोचन ।

बही (धरि ५ ८)

धामरत्ना । भगवान् धीर जनका नाम दोनों एक हैं क्योंकि वैकुण्ठारि नाम उनके स्वस्व के ही घुड़ उत्पन्न विस्तार हैं । विमुगात्मिका प्रकृति के परे विरजा नाम की एक नवी प्रवाहित होती है । तत्त्व रज धीर तम इन प्राकृतधर्मों से रज या तम के विच्छेद होने के कारण यह विरजा नवी है । इस विरजा के उद्य पार परम्प्रीम है इस परम्प्रीम में ही विमुद्ध उत्पन्न वैकुण्ठारि का अवस्थान है । इस धाम में गृहप्राकार बन उपवन-उत्सवता फलफूल पशु-पक्षी सब कुछ है । ये सभी प्रप्राकृत दिव्यरूप में अवस्थान कर रहे हैं । भगवान् का धार्मिकविभाज ही जिस प्रकार उनका प्रथम है उसी प्रकार वैकुण्ठ की कल्पना धीर वैकुण्ठ का धार्मिक भाग प्राकृतवत् इतिम नहीं है । इसीलिए भगवान् जिस प्रकार नित्य है उसी प्रकार भगवद्-धाम भी नित्य है । वहाँ के पार्यन्त परिकर, सेवक-मन्त्र सभी नित्य हैं वहाँ की लीला भी इसीलिए नित्य है । ये नित्यमन्त्र पार्यन्तम इसीलिए भगवत्-सबध धीर कामातीत हैं । ये धाम धीर सेवक पार्यन्त सभी स्वस्वपान्तपायी होने पर भी एक भेदसमजा वृत्ति का धाम्य करके विभिन्नरूपों में प्रकटित होते हैं । ये विभिन्न प्रकार के भीमभगवान् के ही प्रकाश-विद्येय-वैदिव्य प्रकट करने के लिए हैं ।

इस धाम के बारे में वैष्णवगणों में अनेक विस्तृत विचारण हैं । हम संशय में कह सकते हैं कि वैकुण्ठारि धामों में सर्वोच्च धाम है बोधोक इसी बोधोक से ही बोधुम बना है । इस सर्वोच्च धाम में ही विमुद्धमूर्त्ती-वारी पोषवेद्य में श्रीकृष्ण की नित्य लीला होती है । जिस प्रकार श्रीकृष्ण के धीर धीर लीला के प्रकटत्व धीर प्रकटत्व है उसी प्रकार उनके नाम के भी प्रकटत्व धीर प्रकटत्व है । प्रकट बोधोक या बोधुम धीर प्रकट बोधोक या बोधुम स्वस्वत एक ही है । श्रीकृष्ण की धन्य धनित्य शक्ति के द्वारा युवपत् यह प्रकट धीर प्रकट धाम धीर लीला विस्तारित होते हैं । श्रीकृष्ण की लीला-विधिवता के अनुसार इस कृष्णलोक के भी विधा प्रकाश हैं—धारका मधुर धीर वृथावन तीनों धामों में भीमभगवान् की लीला भी तीन प्रकार की है, परिकरारि भी तीन प्रकार के हैं । प्रकट धाम में जिस प्रकार यमुनादि नदियाँ क ज-निकुञ्ज करण्य प्रकट पोष-गोपी सेव-वत्स सुकृतायी धारि हैं प्रकट धाम में भी इसी प्रकार सब कुछ है एक दूसरे का 'प्रकाशविद्येय' भाग है । धारका-मधुर में बाधवपण ही कृष्ण के लीला-परिकर हैं धीर सर्वोत्तम वृथावन लीला में पोष-बोधीपण ही कृष्ण के नित्य-परिकर हैं । श्रीकृष्ण की भाति ये गोपबोधीपणों के भी प्रकट-प्रकट वपु हैं ।

स्वस्म में भगवान् 'रसमय' हैं। उनकी यह रसमयता भृति प्रादि में परिबीत हुई है। भगवान् की इस रसमयता का कारण है उनकी स्वस्म-शक्ति के धन्वर की श्रेष्ठ ज्ञादिनी-शक्ति। हमने पहले ही देखा है कि इस ज्ञादिनी-शक्ति के दो काम हैं। एक है ज्ञातस्वस्म भगवान् को ही प्राज्ञाहित करना वृत्त है दूसरों को ज्ञात बान करना। तो इस ज्ञादिनी शक्ति का जीव-कोटि और भगवान् कोटि दोनों में ही प्रवेश है। भगवत् कोटि में अवस्थित ज्ञादिनी भगवान् को विभिन्न भीमारस के बान के द्वारा रसमय कर रही है, और जीव कोटि में प्रवेश करके वह ज्ञादिनी पवित्र मक्त के हृदय में प्राविर्भूत होकर विधुद्वयतम प्राणत्व का विधान कर रही है। यह भगवत्मुख जीवगत विधुद्वय प्राणत्व ही शक्ति है। मक्त का जो शक्ति-जनित प्राणत्व है और भगवान् का जो भीसा-जनित प्राणत्व है—ये दोनों एक ही शक्ति की ही दो कोटियों के दो व्यापार हैं। भगवान् में ज्ञादिनी रसरूपिणी है—मक्त-हृदय में ज्ञादिनी शक्ति-रूपिणी है। स्वस्मशक्ति की धारभूता यह जो ज्ञादिनी-शक्ति है उसी की धारणन मूर्ति है। एषा—नित्य प्रेमस्वस्म की ही नित्य प्रेम-स्वरूपिणी। इसीलिए एषा केवल प्रेमरूपिणी नहीं है। एषा ही नित्य प्रेमवानी है। पूर्ण भगवान् भीदृश्य में एषा अनन्त ज्ञादिनीशक्ति के रूप में अवस्थान करती है। लेकिन एषी अनन्त ज्ञादिनी-शक्ति का कथमात्र नित्य अनुस्वभाव चित्कण जीवके भीतर गिरकर उसे प्रेमशक्ति से प्राप्नुत कर रकता है, इसीलिए एषा भगवान् की प्रेमस्वमयता है और मक्त की भी प्रेमकल्पतत है।^१

हम पहले देखा था है कि श्रीभगवान् की समग्र स्वस्मशक्ति का साधारण नाम लक्ष्मी या महालक्ष्मी है। यह लक्ष्मी भगवान् के ऐश्वर्य कास्व माधुर्य प्रादि सभी शक्तियों की प्राधारभूता है। लेकिन हम भगवान् की सारी शक्तियों में ज्ञादिनी-शक्ति की श्रेष्ठता देखा था है। इसीलिए ज्ञादिनी का पनीमूत विग्रह एषिका ही कृष्णशक्ति के रूप में

(१) तुलसीय—कृष्णके आह्लासे ताते नाम ज्ञादिनी ।

सिंह शक्तिद्वारे मुख आस्वासे प्राप्ति ॥

तुल्यरूप कृष्ण करे मुख आस्वादन ।

भक्तगणे मुख बिते ज्ञादिनी कारण ॥

चरितामृत (मध्य अम)

और भी—ज्ञादिनी कराय कृष्णे प्राणव्यास्वादन ।

ज्ञादिनी द्वाराय करे भक्तेर बोधन ।

वही (अर्ध ४ अं)

बोध है। एक दृष्टि में राधिका श्री कृष्ण प्रबन्धन में सभी लक्ष्मी या लक्ष्मी का संघ है। बृन्दावन में लक्ष्मी की परिचयिणी राधिका तथा कृष्ण ब्रह्म-गोपियों के रूप में हुई है। लेकिन कृष्ण दृष्टि में लक्ष्मी से ब्रह्मबन्धु, विशेष करके राधिका ही बोध है। ज्ञानिनी-शक्ति ही कृष्ण की सारी शक्तियों में सारभूता शक्ति है। सारी शक्तियों की सारभूता होने के कारण इसमें ऐश्वर्य का लक्षण सब कुछ है मगर माधुर्य में ही इसकी चरम स्फूर्ति है। जिस प्रकार पायसवि दूध से बनने पर भी उसमें बोध है ठीक उसी प्रकार राधिका लक्ष्मी-शक्ति के सारभूत का शरीरभूत विग्रह होने के कारण लक्ष्मी से बोध है। इसीलिए कृष्णबाम गोलोक में लक्ष्मी की प्रतिमूर्ति भूमि या बृन्दावन में गोपियों के साथ केवल राधा ही वास करती है।

कृष्ण की भाँठी महिषियों में भी स्वस्म्यशक्ति है। वे स्वस्म्यभूत विभिन्न शक्तियों की विग्रह हैं। इनमें शक्तिनी भगवान् के एकान्त धनुस्वत् के हेतु स्वयं लक्ष्मी है। सत्यभामा भूशक्ति या धर्म मत्तानुसार उनकी 'प्रेमशक्ति-मधुर भूशक्तित्व' है। शीघ्रमुखा कृपा-शक्ति-वपुषः है इत्यादि। बृन्दावन में सभी 'बृन्दावन-लक्ष्मी' हैं। योगाल तापनी में गोपियों को 'धादिद्याकला प्रेरक' कहा गया है। 'धा का धर्म है 'सम्यक्' विद्या परम प्रेमरूपा है उनकी कला उनकी शक्तिरूपा है उसके प्रेरक धर्म में उत्तम शिष्याओं में प्रवर्तक है। ज्ञानिनी ही गुरुशिक्षा है इस ज्ञानिनी की रहस्य मीमांसा में प्रवर्तक है ब्रह्मबन्धु। ये सभी शक्तिविद्या है। ज्ञानिनी की सारभूतशिक्षा है प्रेम उसी प्रेमरस के ही सारविशेष ने इन ब्रह्म-शक्तियों में प्रभावता पाई है इसीलिए इन ब्रह्मशक्तियों का महत्त्व है। वे ब्रह्मशक्तियाँ 'भक्तशक्तियपरमप्रतिभाशिता' हैं। इस प्रेमशक्तियों के प्रकाशहेतु श्रीभगवान् का भी इनमें परमोस्तास का प्रकाश होता है, उसी परमास्तास के द्वारा ही श्रीभगवान् में समोच्छ्रय उत्पन्न होती है।

ऐसी 'परममधुरप्रेमशक्तिसमी' ब्रह्मगोपियों में राधिका प्रेम सारभूतशक्ति-मयी है। अतएव इसी राधिका में ही 'प्रेमोत्कर्षपरकशक्ति' है। ऐश्वर्यवि-कृष्ण शक्तियुक्त इस प्रेमशक्तिरूप का ही धनुस्वत् करती है इसीलिए श्रीबृन्दावन में श्रीराधिका में ही स्वयं लक्ष्मीत्व है। यामा में जिस प्रकार

(१) श्रीकृष्ण- लक्ष्मी ।

(२) प्राज्ञा मन्त्रानु ज्ञानिनीसारभूतशक्तिविशेषप्रेमरससारविशेष-भावत्वात् ।

बुद्धावननाम ही सर्वोत्तम और सर्वोत्तम है, भगवद्-रूप का भी जिस प्रकार कृष्णरूप में बुद्धावन में ही सर्वपूर्वत्व और सर्वश्रेष्ठत्व है—भगवद्-शक्ति के रूप में उसी प्रकार श्रीरामा का ही सर्वश्रेष्ठत्व है। बुद्धावन में श्रीकृष्ण भी जिस प्रकार एक परमवर्त्ममान नहीं है उनके दिव्यबन्धु सीन्दर्य माधुर्वादि बुध जिस प्रकार सत्य और नित्य है श्रीरामा भी उसी प्रकार एक शक्तिवर्त्म मान नहीं है, वे भी सत्य और नित्य-विग्रहवती है। प्रेम परकाष्ठा में मिलित यह जो अप्राकृत बुद्धावन-नाम का युगसक्य है वही मर्तों के लिए आद्यव्यक्ततम वस्तु है। इस बुद्धावन में श्रीकृष्ण और रामा नित्य-किशोर-किशोरी है नित्य-किशोर-किशोरी की यह नित्य-प्रेमसीता ही एकमात्र प्रस्थापिता है। कहा जा सकता है कि दोनों एक होकर भी सीता के बहाने दो हैं—अभेद में ही भेद है। अचित्त्य शक्ति के बलसे ही इस अभेद में सीता विलास से भेद है, यही अचित्त्य भेदाभेद है।

हमने देखा कि कृष्ण की जो पूर्णरसस्वरूपता है वही उनकी ज्ञाविनी शक्ति के सहारे दूसरे के अन्तर प्रेम-शक्ति के रूप में संचारित होती है। जिसके अन्तर इस ज्ञाविनी का जितना संचार होता है वह उतना ही भक्त होता है। राधिका स्वयं पूर्णज्ञाविनीरूपा है अतएव राधिका में ही प्रेमशक्ति की प्रकाश-परकाष्ठा बिसाई पड़ती है और इसीलिए राधिका कृष्ण की सर्वश्रेष्ठ भक्त है। हमने पहले यह भी देखा है कि ज्ञाविनी शक्ति शक्ति-शक्ति का ही चरमोत्कर्ष है इसीलिए कृष्णप्रेम विद्वस्तु है यह विद्यात्मक-स्वरूप है। कृष्ण और उनके भक्त में जो प्रेम है उसमें निरङ्गमित भेद या वायान्य है। कृष्णप्रेम-मीति-इच्छा ही प्रेम है। यह प्रीति भक्त के चित्त में माना क्रियाश्री के रूप में अपने को प्रकट करती है चित्त को उन्मत्त करने में मगताबोध से युक्त करने में आरतस्त करने में प्रियत्व के अतिशयत्व के कारण करने में इव करने में स्ववियय के प्रति प्रत्यभिज्ञापातिसम के द्वारा बुधन करके प्रविष्टान स्ववियय को नव नवत्व द्वारा धनुष्य करने में असमोर्ष्य चमत्कार के द्वारा अन्मत्त करने में। उस्ताद की मात्राविकल्प-व्यञ्जिका जो प्रीति है उसीका नाम है 'रति' हम रति से एकमात्र प्रेमास्पद के प्रति ही तात्पर्यबोध और दूसरे सभी

(१) प्रीतिः कनु भक्तचित्तप्रस्तापति भक्तया योजयति विरङ्ग-यति प्रियत्वातिप्रयोजनाविधानयति प्रापयति स्वविकल्प प्रत्यभिज्ञापातिसम योजयति प्रतिक्रममेव स्ववियय नवनवत्वेनानुनाभयति अतमोर्ष्यचमत्कारेयो-न्याययति ।

(२) तत्रोस्तातमात्राविकल्पव्यञ्जिका प्रीति रतिः । वही ।

द्विष्यो के प्रति तुच्छत्वबोध उत्पन्न होता है, ममताबोध के प्रतिघम्य के प्रतिनिधि से समूह जो प्रीति है वही 'प्रेम' कहलाती है। इस प्रेम का प्रतिनिधि होने से तट्टीतिर्भंग के हेतु-समूह उसके उद्यम या स्वल्प को फिर बाधा नहीं दे सकते अर्थात् जब संसार में कोई भी बाधादिभ्य इतनी प्रीति के पथ को रुद्ध नहीं कर सकता है। चित्तस्मात्प्रियात्मक प्रेम ही 'प्रणय' है। इस प्रणय के उदय होने पर संप्रमादि योम्यता में भी उदयमान होता है। प्रियत्वातिप्रियाभिमान के द्वारा कौटिल्यामासपूर्वक मातृ-वैशिष्यी का वान करके जो प्रणय होता है वही 'मान' है। अब हम देखते हैं कि प्रियता की प्रतिघम्यता के हेतु अभिमान धाया है, इस अभिमान के द्वारा प्रणय में कौटिल्य या बकटा (नाम्यता) धाई है यही कौटिल्य मातृ-वैशिष्यी प्रदान करता है।

मान उत्पन्न होने पर स्वयं मग्नान् भी उसके प्रणय-श्रेय से भय पाते हैं। जो प्रेम चित्त को प्रतिघम्य इतित करता है वही स्नेह है। इस स्नेह के संजात होने पर प्रिय के संबंध-आमास से ही महाबाष्पादि-विकार, प्रिय दर्शनादि से अतृप्ति प्रिय की परमसामर्थ्य के होते हुए भी उसकी किन्ती अनिदिष्ट अदिष्ट की धारणा धारि का उदय होता है। प्रतिघम्य प्रियतात्मक स्नेह ही 'राग' में परिणत होता है। चित्त में इस राग के संजात होने पर क्षणिक विरह से भी अत्यन्त अघटिष्णुता दिखाई देती है। प्रिय से परम पुच्छ भी मुक्त प्रतीत होता है—उसके विबोध से सब कुछ विपरीत हो जाता है। इस राग में राग के विषय की (अर्थात् प्रेमास्पर को) जो प्रतिघम्य नए-नए प्रकार से अनुभूत कराता है। सब भी प्रतिघम्य नए नए रूप धारण करता है—वही अनुराग है। इस अनुराग के संजात होने पर परस्पर बन्धीभाव की अतिघम्यता होती है। प्रेमवैशिष्य (प्रिय के निकट रहने पर भी विरहानुभूति) प्रिय-सम्बन्धी अत्याम्य प्राणिरूपों में भी अन्तर्गत की धाकाशा विप्रसंग में विस्फूर्ति धारि का उदय होता है। यह

- (१) ममतातिघम्यादिभिर्भिन समूहा प्रीतिः प्रेमा । वही
- (२) चित्तस्मात्प्रियात्मक प्रेमा प्रणयः । वही ।
- (३) प्रियत्वातिप्रियाभिमानेन कौटिल्यामासपूर्वकमातृवैशिष्यी इत्यत् प्रणयो मानः ।—वही ।
- (४) चित्तोद्वातिप्रियात्मकः प्रेमैव स्नेहः ।—वही
- (५) स्नेह एवातिप्रियातिप्रियात्मको रागः ।—वही
- (६) त एव रागः अनुसर्गं स्वविषयं नवननत्वेनानुभवयन् स्वयं च नवनवीभवानुरागः ।—वही

अनुपम ही असमोर्ध्वमत्कार के द्वारा उन्मादक होने पर महाभाव रूप में परिणत होता है।^१ यह महाभाव ही राधिका का स्वस्म है। भक्त के धीर पर अगर हम विचार करें तो कहा जा सकता है प्रेम-निपति रूप में महाभाव की पचकाष्ठा भी एकमात्र राधिका के प्रसादा धीर किसी के लिए संभव नहीं है। इसीलिए श्रीराधिका प्रेमपराकाष्ठ-स्वपित्री है। श्रीकृष्ण की पटपतियों के लिए महाभाव-उन्मुक्त अनुपम तक ही प्रेम की अन्तिम सीमा है इसके बाद उनका कोई अधिकार नहीं है इसके बाद ही गोपियों के प्रेम का बृन्दावन है—इस प्रेम-बृन्दावन की बृन्दावनेस्वरूपी है राधिका—इस की गोपियों को महाभाव का अधिकार है, लेकिन इस महाभाव का जो पचकाष्ठा रूप 'अधिरुद्र-महाभाव' है वह एक मात्र राधिका के प्रसादा धीर किसी के लिए संभव नहीं है।

बृन्दावन्त के उत्कर्ष के तारतम्य के द्वारा प्रीति में जो तारतम्य धीर भेद होता है वह दो प्रकार का है एक भक्त के चित्त के संस्कार के द्वारा धीर इष्टरा भयवान् सम्बन्धी अविमान विषेप के द्वारा। ऊपर हमने प्रेम के अनिष्ट से अनिष्टतम अवस्था की जो क्रमपरिणति देखी वह चित्त-संस्कार द्वारा सम्बन्धित प्रेमोत्कर्ष का तारतम्य है। अविमान के वह प्रीति का जो तारतम्य है उसका अवलम्बन करके ही वैष्णवों के शान्त वास्य सख्य वात्सल्य धीर मधुर में पाव्य रसतरण है। इन पांच रसों में भी पूर्व पूर्व-पूर्व रसों के मुष्-बाह बाह में होते हैं शान्तादि सभी रसों के शारदुन बनीमूठ होने पर कान्तारस की पुष्टि होती है। कृष्णदास कबिराज ने अपने वैतन्य-वर्धितामृत में शान्तादि रस किस प्रकार से मधुर में स्थान्तरित होते हैं वह बड़े सुन्दर ढंग से समझाया गया है। वहाँ उन्होंने कहा है—

पूर्व पूर्व रसेर गुण परे परे ह्य ।

हुइ तिन गजने पंच पर्यन्त बाइय ॥

पुचापिख्ये स्वाहापिचय बाड़े प्रति रसे ।

शान्त वास्य सख्य वात्सल्य गुण नचुरैते बीसे ॥

शाक्यशाहिर मुच येनन पर पर मूते ।

हुइ तिन गजने बाड़े पंच पुचिबंति ॥

मध्यलीला के उन्नीसवें अध्याय में इस तरण की कबिराज मोस्वामी ने धीर भी अच्छी व्याख्या की है। वहाँ कहा गया है—

(१) अनुपम एवातमोर्ध्वमत्कारेणो-मादको महाभावः १-बही

केवल स्वल्प-ज्ञान ह्य शास्त्ररसे ।
 पूर्णश्रवण पशुज्ञान अधिक ह्य वास्ये ॥
 ईश्वरज्ञाने संश्रम पीरव प्रचुर ।
 सेवा करि कृष्णे मुक्त येन निरन्तर ॥
 शास्त्रेण गुण वास्ये प्राप्ते अधिक सेवा ।
 अतएव वास्यरसे ह्य बुद्ध गुण ॥
 शास्त्रेण पुत्र वास्येण सेवा सख्ये बुद्ध ह्य ।
 वास्येण संश्रम गौरव सेवा सख्ये विश्वात्मय ॥
 कान्धे चडे कान्धे चङ्गाय करे श्रीवा रव ॥
 कृष्णे सेवे कृष्णे कराम्य आपन सेवन ॥
 विश्वम्भ-अपान सख्य गौरव-सम्भ्रमहीन ।
 अतएव सख्यरसेर तिनमुक्त विन ॥
 ममता अधिक कृष्णे आत्मतम ज्ञान ।
 अतएव सख्यरसे बह्म भयबान् ॥
 वास्तव्ये शास्त्रेण गुण वास्येण सेवा ।
 सेह सेह सेवनेर इहा नाम प्राप्तन ॥
 सख्येण पुत्र अर्तकीच अपौरव सार ।
 ममता आपिक्ये ताडन अर्तान व्यचहार ॥
 आपनाके पात्रक ज्ञान कृष्णे वास्तव्य ज्ञान ।
 चारिरसेर बुद्धे वास्तव्य अमृत समान ॥
 से अमृतान्धे अथत बुद्धेन आपने ।
 कृष्णजस्तव्य अथ कर्त्तुं ऐश्वर्यज्ञानी अथे ॥
 मयूर रसे कृष्णनिष्ठा सेवा अतिशय ।
 सख्ये अर्तकीच लासन ममतापिक्य ह्य ॥
 कान्तभावे निजाप विद्या करेन सेवन ।
 अतएव मयूर रसे ह्य पंचगुण ॥
 आकाशाद्विर बुद्ध येन पर पर भूते ।
 एक बुद्ध क्मे चाडे अथ पुत्रिणीते ॥
 एह मत मयुरे तथ भाव समाहार ।
 अतएव स्वभाविक्ये करे अम्कार ॥

कान्धारस की भी जो प्रीति है वह अमराम्य में कामादि-सख के द्वारा ही वर्णित होती है लेकिन 'स्मरस्य-काम-विशेष' श्राव्य नाम से विस्तृत अलग है । इन दोनों में मुख्य भेद यह है कि काम-वामाम्य

बेप्टा 'स्वीमानुकृत्स्वतात्पर्या' है और बृह प्रीति-बेप्टा 'स्वीमानुकृत्स्वतात्पर्या' 'प्रियानुकृत्स्वतात्पर्या' है। प्रियानुकृत्स्वतात्पर्यता या 'हृष्यसुखैक-तात्पर्यता' ही बृन्वाचन के नोपी-श्रेम की विशेषता है। यह जो 'हृष्य सुखैक-तात्पर्या' बृह प्रीति है उसका भी परम प्रकाश हृष्यमयी राशिका में है। हृष्य में परानिष्ठा हृष्य-श्रेया हृष्य में सम्प्रभममूक्त परम-स्वचन भव और समभाव हृष्य में ममताधिक्य सांगसंगराग के द्वारा हृष्य का मुक्त उत्पादन इन सारी शक्तियों और बेप्टाद्यो की प्रबधि या शेषसीमा राशिका में है।

राशिका में ही प्रेम-प्रकाश की विशेष सीमा है—अथवा राशिका ही प्रम-स्वकमता का सत्य और नित्य विग्रह है—इसलिए उसमय श्रीहृष्य के सारे रसमयत्व की अनुमृति और आस्वादन की परम स्फूर्ति राशिका के द्वार पर है। अचिरयशक्ति के बस पर इस प्रभेद में श्रेयसीमा के अन्तर से ही अप्राकृत बृन्वाचन में नित्य परम-श्रेयसीमा होती है।

हमने पहले ही कहा है कि स्वर्गोत्सामी ने अपने अन्त में हृष्य शक्ति के रूप में राधा के सम्बन्ध में जितना आधुनिक विवेचन किया है अथवा गोस्वाम ने अपने सबनों में उसी का अनुसरण करके लिखित किया है। श्रीबोस्व मो ने श्रीमद्भागवत पुराण को ही बृह-सूत्रादि की प्रकृततम व्याख्या के रूप में स्वीकार करने के कारण राधा-हृष्य उत्सामोचन के प्रसंग में बृहसूत्र का प्रसंग से कोई उल्लेख नहीं किया है। भागवत पुराण को ही उन्होंने उत्स के सम्बन्ध में श्रेष्ठ प्रमाण के रूप में स्वीकार किया है। परन्तु काल में एकमात्र बसदेव विद्याभूषण ने गोस्वामियों द्वारा प्रतिष्ठित गौड़ीय वैष्णव धर्ममत का अनुसरण करते 'गोविन्दमाप्य' नाम से बृहसूत्र का एक भाष्य लिखा था। इस भाष्य में हृष्य के शक्तिस्वरूप और राधास्वरूप का प्रसंगका जितना विवेचन किया है वह एक प्रकार से पूर्वोक्त विवेचन के ही अनुसरण है। बृह की अचिरय अनाद्य शक्ति है—बे बृह की स्वामाधिकी है—अर्थात् स्वयं सम्बन्धिनी शक्ति है। यह शक्ति तीन हिस्सों में बटी है—एक क्षेत्रज्ञ अथवा और अविद्यारूपिणी भावाशक्ति। मयवान् की सृष्टि धारि सीमा किसी प्रमाण से बात नहीं है, वे धानन्द प्राचुर्य से नृत्य की माति है। अथवा उनकी सृष्टि धारि सीमाएं 'स्वयं स्वामाधिकी' है। अतएव में कहा गया है कि श्री और लक्ष्मी मयवान् की दो पत्नियां हैं। यहां कोई कोई कहते हैं कि श्री रमा देवी हैं, और लक्ष्मी मायवती सम्पत् हैं। इससे कहते हैं कि श्री वापदेवी हैं और लक्ष्मी रमा देवी हैं। ये श्रीरूपिन नित्य-वराशक्ति हैं; वे प्रकृति के द्वारा उत्पन्न

परम्योम में भववान् के साथ बिपद्य करती है और भववान् जब अपने को प्रपन्न में स्वयाम में प्रकट करते हैं तब भी भी अपने नाभ के 'कामादि' के विस्तारार्थ धनुषगत होती है।' यहाँ काम शब्द का अर्थ है 'शुद्धाद्य-मिमाप' धारि शब्द से तदनुसुधा उत्पत्तिर्वा का बोध होता है। 'धामगत' शब्द से भी भी व्याप्ति और भक्त मोक्षानन्द-विस्तार का बोध होता है। परमात्मा से अनेक के हेतु यह पण्डित भी भी विमुक्तसम्पत्ता है। कहा जा सकता है कि भी धर पर के रूप में बिष्णु के साथ धामित समझी जाती है तो भी भी बिष्णु सम्बन्धिनी भक्ति संभव नहीं होती क्योंकि अपने प्रति धरनी भक्ति कैसे संभव है? इसके उत्तर में कहा गया है कि भी भगवान् से धामित होने पर भी भववान् के विभिन्न पुण्यरत्नाकरत्व के हेतु और नावान् भी के भी मूलतत्त्व होने के कारण परतत्त्व भववान् में भी का धार भवसम्पत्तावी है—अतएव तद्भक्ति का लोप नहीं हो रहा है। ऐसी कोई बात नहीं है जो बुद्ध का धार नहीं करती है—ऐसी चन्द्रप्रभा नहीं है जो चन्द्र का धार नहीं करती है।' भी भववान् और समझी पण्डित में जिस काम' और शुद्धाद्यमिमाप की बात कही गई, इस प्रसंग में और भी प्रकट हो सकता है कि—विषय-धाम्य के भेद और धामम्बन उद्दीपनादि विभावनेय से ही रत्यादि स्वाकि-माय और उतको फलत्वस्व्य शुद्धाद्यमिमाप संभव हो सकता है अनेकतत्त्व में तो इसकी कोई संभावना नहीं है। इसके उत्तर में कहा गया है कि यद्यपि धरि और उतका धाम्य (धरि धरिमान्) ये दोनों धामित हैं तथापि तीन कारणों से उनके धरि कामादिभुषों का उदय सिद्ध हो रहा है पहली बात है, अनेक के होते हुए भी पुण्योत्तम के ही धरि का धाम्य होने के कारण दूसरी बात है, धरि सुवतीरल के रूप में उपस्थित होती है इसलिए, और तीसरी बात है ये कामादि पुण्योत्तम के स्वायत्तत्व और मूर्त्पारि के धनुषुष है इसलिए। अथर्वनिष्य में कहा गया है "जो काम के द्वारा काम की कामता करता है वही सकामी होता है, और जो धरि के द्वारा काम की कामता करता है वह धरि होता है। 'धरि' शब्द का 'ध' यहाँ साधुस्वार्थ में लभ्य है तो 'धरि' के द्वारा शब्द का अर्थ हुआ कामानुस्य प्रेम के द्वारा भववान् और उनकी धरि के धरि

(१) कामादीन्तरं तत्र चास्त्यादिभ्यः ।

(२) सत्यप्यनेके विभिन्नपुण्यरत्नाकरत्वेन स्वमूलत्वेन च जिब पर सिममावरातसूक्तोरलोपः । न चानु बुद्धमनाद्विषयाया साक्षात्ति न च धरि तत्प्रभा ।

(३ ध ३ वा)

अ यह प्रेम 'भारतानुभवसतत' है अर्थात् स्वरूपानन्द के अन्दर जो विविध सङ्घ है उसके अन्दर से विविधरूप में भारतोपलब्धि ही इस प्रेम का लक्षण है। इस प्रकार के भारतानुभव-सतत प्रेम का जो विषय है (अर्थात् श्रीचरित्रा राजादि की भाँति स्वस्वशक्ति) उसकी कामना करके मगवान अपने स्वारात्मक और पूर्णत्व का कमी भी अतिशय नहीं करते हैं। स्वार्थमूला भी भावि के स्पर्शवन्त जो उच्च ध्यान है वह आपसी अपने हीन्द्य वीक्षण की भाँति है। वास्तव में परतत्त्व नित्य ही 'परस्व-स्वस्वशक्ति विधिष्ट' है यह परतत्त्व जब स्वप्राधान्य से स्फूर्ति पाता है तभी वह पुण्योत्तम की संज्ञा पाता है और जब परतत्त्व परस्वशक्ति के प्रामान्य के कारण स्फूर्ति प्राप्त करता है तब वह अर्थात् संज्ञा पाता है। परशक्ति ही मनवान् के ज्ञान मुख कास्व्य ऐश्वर्य भावि के भाव्य बर्णना होकर स्फूर्ति होती है। वह शक्ति ही अस्वाकार में नामस्वा अरवि-आकार में नामस्वा होकर प्रकट होती है और वही परशक्ति 'ह्लादिनी तद-सम्बन्ध-संविद्यात्मक' (अर्थात् ह्लादिनी का छार अनीमूठ होकर विद्य यहरे संविद् को उत्पन्न करता है वही संबन्ध-संविद्यात्मक) युवतीरल के रूप में श्रीचरित्रा के अन्दर विद्यहृषी होती है। इसलिए शक्ति और शक्तिमान् रूप र'वा-कृष्ण का अमेर सत्य होने पर भी अस्तव्य अस्तव्य स्वस्व के अन्दर 'विसेपदिशुम्भित' मेरकार्य के द्वारा राजादिक्रम विमान का अस्तव्य विमानित होने पर ही अस्वात्मिनाय सिद्ध होता है। परशक्ति की यह जो राजादि के रूप में अर्थात्स्वता है यह किसी कारण की अस्वता करके बाह में अटती है ऐसी बात नहीं वह अर्थात्स्वता ही अर्थात् सिद्ध है अतएव इस प्रेमामिनाय के द्वारा श्रीमन्वान् की पूर्णस्वस्वता को कोई हानि नहीं पहुँची।

(१) तैत्तिरीयानुभवसततवेन विद्ययकामना अन्तु स्वारात्मकं पूर्णताञ्च भावितव्यमस्तीति स्वारात्मकबीजस्पर्शादुत्पन्नानन्दस्तु स्वतीन्द्र्यबीजभावेतिव बोध्यम् ।
(३५ ३५)

नवम अध्याय

पूर्वालोकित प्राचीन भारतीय विविध शक्तितत्त्व और गौडीय राधातत्त्व

हमने अरर पूर्व भयवान् श्रीकृष्ण के विविधशक्ति-तत्त्व का विवेचन करके राधातत्त्व के सम्बन्ध में जो विचार किया वही गौडीय वैष्णवमत के अनुसार राधिका का दार्शनिक परिचय है। इस दार्शनिक ढांचे में पुणने उपाख्यान और किम्बदन्तियाँ सुखमनुकुमार-कविकल्पना का प्रथम शतक और भक्त-सूत्रय का परम श्लोकबोध तथा विभिन्न रम्यबोध एकत्र समाविष्ट होकर श्रीराधा की सौन्दर्यमयी और प्रेममयी मूर्ति को बहु विचित्रता और विस्तारप्रदान किया है। राधा के इस बहु विचित्र रूप का परिचय देने के पहले अरर राधा के बारे में हमें जितना दार्शनिकतत्त्व मिला हमारे पूर्वालोकित शक्तितत्त्व से वह वही जितना प्रेम साठा है उसकी योजना में कहा अभिप्रेत या वैधिष्टय है इसके बारे में वही थोड़ा सा विवेचन कर लेना जरूरी है। इस विवेचन के अन्तर से विभिन्न युगों में कल्पना किया गया सर्वमीतत्त्व किस प्रकार से क्रमशः राधातत्त्व में परिणत हुआ है वह बात भी समझ में आ जावनी।

हमने अरर राधातत्त्व के विषय में जो कुछ लिखा और जित राधा-तत्त्व का वैष्णव साहित्य और प्रसंग-ग्रंथों में बहुविध विस्तार देखते हैं, उस राधातत्त्व में हमें कई चीजें दिखाई पड़ती हैं—

(१) भयवान् की स्वाभाविक शक्तिय प्रकृत शक्तियों में तीन प्रभाव हैं। प्रथम स्वस्वरशक्ति द्वितीय, जीवशक्ति और तृतीय सामाशक्ति। इनमें पहली प्रकृत है और बाकी दोनों प्राकृत हैं।

(२) इस प्रकृत स्वस्वरशक्ति की सारभूता शक्ति है ज्ञाविनी शक्ति वही ज्ञाविनी-शक्ति का सारभूत विषय है श्रीराधा का तनु।

(३) ज्ञाविनी-शक्ति-विषय श्रीराधा के धाम ही निरन्-नुस्वान्त में श्रीमदवान् नित्य-भीषा करते हैं।

(४) एक और रस, दूधरी और प्रेम-शक्ति के रूप में राधिका का स्वभाव कोटि और जीवकोटि इन दोनों में ही विस्तार है। जित प्रकार राधा भयवान् की शक्त-विधाविनी है वही प्रकार प्रेमशक्ति के धाम में जीव के प्रति रूप-विरूप में भी राधिका ही मुख्य करण और कारण है।

(२) प्रेमस्वपिनी तथा के द्वार पर ही कृष्ण का स्वस्वानुभव होता है परम विषय के रूप में कृष्ण के स्वस्व की उपस्थिति के स्पष्ट में यथिका ही पनादिच्छिन्न मूल धाम्य हैं।

इस पहले विभिन्न शास्त्रों के व्याख्यात में शक्तिरत्न के सम्बन्धों को विवेचन कर आए हैं उसे इस प्रसंग में याद रखने से दिखाई पड़ेगा कि यथावत्न के बहुतेरे शार्थनिक उपादान पूर्ववर्तियों के मतबाह में बिखरे हुए हैं। हम ऊपर उल्लिखित उपादान के सम्बन्ध में धन्य धन्य संक्षेप में विचार करेंगे।

(१) पंचरात्र से लेकर सभी शास्त्रों में हमें शक्ति के मुख्यतः दो क्षेत्र मिलते हैं पंचरात्र में शक्ति को पराशक्ति और प्राकृतशक्ति के रूप में बलिष्ठ होते देखते हैं। यह पराशक्ति भगवान् की समवायिनी शक्ति है, यही श्रीश्रीयमज की स्वस्वशक्ति है। पंचरात्र के मतानुसार भी इस समवायिनी पराशक्ति से सृष्टिकार्य का कोई शास्त्र धम्य नहीं है। सृष्टि शक्ति कार्य भयवान् की प्राकृतशक्ति के द्वारा साधित हो रहे हैं, यह प्राकृत शक्ति ही माया है। कायमीर शैवदर्शन में भी हम इसी तरह के सिद्धांत की बात देख आए हैं वहाँ भी परम शिव की शक्ति को समवायिनी-शक्ति और परिग्रहा-शक्ति में बाँटा गया है। परिग्रहा-शक्ति ही प्राकृत मायाशक्ति है। श्रीमद्भगवद्गीता और विष्णुपुराणादि में हम परा स्वस्वशक्ति और जड मायाशक्ति के बीच में भीकमूता क्षेत्रज्ञाख्या शक्ति का उल्लेख मिला इसीसे उदस्या-बीज-शक्ति का उद्भव होता है।

(२) पूर्वसोचित सर्वश्रेष्ठों के शक्तिरत्न के धम्यर हम देख आए हैं कि शक्ति धाम्यस्वपिनी है। यह धाम्य ही सर्वशक्तियों का सारमूल है यह बात शास्त्र-शास्त्र बर्षय या व्याख्यात न होने पर भी हम देखते हैं कि शक्ति के पीर और जो भी व्यापार और कृतियाँ क्यों न हों अपने मूल रूप में यह परमात्मस्वपिनी है। वैष्णव शैव और शक्त्य मत में सर्वत्र इसका आधास मिलेगा। कायमीर शैवशिद्धांत में धाम्यशक्ति परम शिव की पंचशक्तियों में एक धन्य शक्ति है। पुराणादि में इस मत की प्रतिष्ठा मिलती है। लेकिन परम शिव की धाम्यशक्ति के रूप में एक धन्य शक्ति स्वीकार करने की अपेक्षा धम्य की मूल कृति से उनके धाम्य नम्य की प्रपलता धाम्य सर्वत्र स्वाकार का गई है। इस शक्तिभाद पर प्रतिष्ठित होकर कृष्ण की चरमोत्कर्ष प्रत्य शक्ति तथा ने ज्ञानिनी-स्वत्व प्राप्त किया है। यह बात धन्य है कि इसपर प्रेमशक्ति के शार्थ की प्रपलता होने के कारण और प्रैयस्वस्वता तथा ज्ञारस्वस्वता

के एक ही होने के कारण यमिका के ज्ञात्रिणी रूप में उत्तरोत्तर प्रभावता पाई है। इसी प्रबंध में हम यौग्यकतर्क और योग-साहचरि में व्याख्यात एक और तत्व की ओर दृष्टि आकर्षित करना चाहते हैं। हम इन शास्त्रों में बहुतेरे स्वर्णों पर देखते हैं कि अक्षिप्त पोद्धारकतायिका है। इन्द्र की इस पोद्धारकतायिका अक्षिप्त से सोलह गोपियों का उत्पन्न हुआ है उसका अन्वेष हम पढ़नी कर पाए हैं। एवं और यौग्य ग्रंथों में हम यह भी देखते हैं कि अन्न की सोलह कलाएँ विकारायिका हैं अथवा परिवर्तनशीला हैं। लेकिन इन विकारायिका सोलह कलाओं के अतिरिक्त अन्न की एक अपनी कला भी है। इस कला को अन्न की 'अन्तरधी कला' कहते हैं वह अन्तरधी कला ही अन्न की अमृत-कला है यही परमानन्द-मयी है। एवं या योग-साहच की भाषा में विकारायिका सोलह कलाएँ 'प्रवृत्ति-राम्य' की वस्तुएँ हैं और अन्नन्दरूपिणी अमृतरूपिणी अन्तरधी कला 'निवृत्ति-राम्य' की वस्तु है। इसी को वैष्णवों की भाषा में अग्राह्य वृत्त्यात्म मान की वस्तु कहा जा सकता है। योग-साहचरि की दृष्टि से कहा सकता है कि अमृतरूपिणी अन्न की अपनी अन्तरधी कला ही यमिका है वह अविकारभाव से स्वल्प में अवस्थान करके अमृतात्मक आत्म के रूप में विषय को नित्यावग्रह से निमग्न रख रही है।

इस प्रबंध में हम यह भी देख सकते हैं कि आत्ममाया और योगमाया का अवसम्बन्ध करके ही अक्षयान श्रीकृष्ण अपनी छोटी प्रेमशीलाएँ करते हैं। इस योगमाया ने बीड़ीय वैष्णव साहित्य में 'पीरमासी' रूप कारण किया है। वह 'पीरमासी' प्रेम-संबन्ध में परमात्मज्ञा वर्णोत्थी रमणी के रूप में चित्रित की गई है। स्वर्गोत्थामी के विरह्य-भाव' और 'तलित-भाव' नाटकों में इस भयवती पीरमासी को लावणी जैसी रूपशालिनी लम्बीपति मुनि की जननी देवर्षि नारद की शिष्या अन्न-स्वप्न पर कापाम वत्न बारिणी और मरुतक पर काप के फूल की भाँति बुद्ध केन्द्र-बारिणी के रूप में वर्णन किया गया है। जाना प्रकार से राजा-कृष्ण का मिलन करना ही उनका काम है लेकिन मिलन-बीजा में उनका कोई स्वप्न वा अविकार नहीं है। योगमाया के इस 'पीरमासी' नाम की क्या धार्मिकता है? सोलह कला की पूर्णिमा के उदय के बाद अन्तरधी कला से स्वस्वमीता होती है। 'पीरमासी' का क्या यही तात्पर्य है? श्रीकृष्ण की प्रेमशीला में वैष्णवी पूर्णिमा अज्ञान पूर्णिमा उस पूर्णिमा दोष (होती) पूर्णिमा आदि

पूर्वमात्रों का प्राथमिक इस प्रयोग में देखा जा सकता है। पीछेमात्रों का पूर्वमात्र ही सोलह क्रमाकों की पूर्ति द्वारा मानो सन्दरशी कला की प्रमुख-मयी सीमा के लिए क्षेत्र तैयार कर देती है।

(३) राजा कृष्ण की स्वल्पसक्ति के रूप में शक्तिमान् कृष्ण से अभिन्न हैं लेकिन प्रमेद में कनी भी सीमा संभव नहीं होती इसलिए हम देखते हैं कि वैष्णवपक्षने नामा प्रकार से प्रमेद में ही एक भेद मान कर सीमा की स्थापना की है। भारतीय शक्तिवाद पर विवेचन करते हुए हमने शुरू से ही देखा है कि इस प्रमेद में एक भेद-विस्वास लेकर ही समग्र भारतीय शक्तिवाद की प्रतिष्ठा हुई है। यह प्रमेद में भेदवाद नहीं भी किसी एक दार्शनिक आधार पर प्रतिष्ठित है ऐसा नहीं कहा जा सकता। वह बात बर्मिस्वास के क्षेत्र में भारतीय मानस की एक विशेष प्रवृत्ता के रूप में ही बारम्बार प्रकट हुई है।

हमने पहले देखा है कि वैष्णवों ने धीरे-धीरे करके पीढ़ीय वैष्णवों ने स्वल्प-सीमावाद को विशेष प्रभावता दी है। क्या पंचरात्र में क्या कार्मीर-शिव-छिटात्र में हमने शक्तिवाद के प्रयोग में जो सीमा देवी है, वहाँ स्वल्पसीमा की बात कम प्राकृत मायासक्ति के द्वारा सृष्टि प्राप्ति सीमा की बात मुख्य मानी गई है। ब्रह्मसूत्र के 'लोकस्य तु सीमा वैश्वस्य' सूत्र के माध्य में प्राचीन वैष्णवों ने जगत्-प्रबंध-सीमा की बात ही कही है। इस स्वल्पसीमा पर कोई जोर-शबाव नहीं है। इसीलिए प्राचीन वैष्णवों ने शक्ति धीरे-धीरे शक्तिमान् के भेद को स्पष्ट सत्य नहीं माना है। कहीं इस भेद को धर्मनिरपेक्ष सत्य नहीं भेद का प्रथम मान धीरे-धीरे भेद का नाम कहा गया है। लेकिन हम देखते पाय है कि बारम्बरी सरी के सीमायुक्त धीरे-धीरे जगत् की माध्य-रचना में ही स्वल्प सीमा की प्रतिष्ठा बिनामार्ग पकटी है। इसी प्रकार की स्वल्पसीमा की प्रतिष्ठा पर ही पीढ़ीय वैष्णवों का सारा माध्य-साधन-तत्त्व प्रतिष्ठित है। इसीलिए हम देखते हैं कि पीढ़ीय वैष्णवों ने राजा-कृष्ण के भेद को भेदस्य धर्मनिरपेक्ष भेद का प्रथम मान या नाम नहीं कहा है। उन्होंने इस प्रमेद में भेद को ही सत्य कहा है सीमा को भी उन्होंने सत्य धीरे-धीरे स्वीकार किया है। परिष्कार के रूप में इस सीमा का स्वरूप धीरे-धीरे सीमा का मास्कारण — यही पीढ़ीय मन्त्रों का परम साधन धीरे-धीरे सीमा की गौणसीमा के प्रकार धीरे-धीरे प्रतिष्ठा का प्रथम मान करते ही इस स्वल्प-सीमावाद का जन्म प्रसार धीरे-धीरे जन्म-प्रतिष्ठा हुई है।

इस प्रसंग में एक और भी बात देनी या समझनी है। लीलावार के कम-प्रसार और प्रतिष्ठा के मूल में शक्ति का प्रेम-स्वपिपीत्य है, तर्जादि में स्वल्प-लीलावार का कोई बाध विद्यमान न होने का कारण है कि शक्ति वही 'शक्ति' या 'बल' ही रह गई है। लेकिन यदि हम वैष्णवशास्त्र में विष्णु-शक्ति का कमविद्यमान देखें तो पता चलेगा कि बीरे-बीरे शक्ति पहले प्रेमोन्मुखी होकर अंत में प्रेममात्रता में परिणत हुई। शक्ति प्यो-प्यो प्रेम के रूप में बलमयी गई, स्वल्प-लीला की स्फूर्ति और लीलावार की छतनी ही प्रतिष्ठा होने लगी। तर्जादि में बलिष्ठ शक्ति के अन्तर वहाँ-तहाँ शौच्य-मायुर्य का प्रामाण्य होने पर भी उनकी अन्तःबलवृद्धि क्रियात्मकत्व ने प्रभावदा पाई है। लेकिन विष्णुशक्ति श्री या महामास्मी के अन्तर के शौच्य-मायुर्य का पक्ष ही बढ़ा होकर दिखाई पड़ा है। एता में धाकर शक्ति विष्णु-ह्लादिनी के रूप में परिणत हुई। इस ह्लादिनी का सार है प्रेम प्रेम का सार है भाव भाव का सार है महामाव—धीरवा महामाव-स्वक्या है। प्रेम-शौच्य में यह महामाव-स्वक्यिनी एता तर्जादि में बलिष्ठ शक्ति से रूप और गुण में बहुत कुछ अलग हो गई। इसके अन्तःस्वल्प एतातत्त्व वास्तव में शक्ति तत्त्व को छोड़कर और कुछ नहीं है, यह बात बीरे-बीरे भागों यदिका के अन्तःगत में क्लिप्त हो गई। प्रेम में एता इस तरह अन्तःगठित हो गई है कि तत्त्वानुबन्ध न करने से वैष्णव-साहित्यादि में बलिष्ठ एता को शक्ति के रूप में पहचाना ही नहीं जा सकता। यही एता का वास्तविक 'कमलिनी' रूप है। शक्ति-तत्त्व से दूर करके कम-विद्यमान के अन्तःस्वल्प रूप-रस-वर्क-जांघ-शौच्य-प्रीम के पूर्वशतवत्त्व के रूप में प्रस्तुत हुआ है। पुण्यवादि में गोपियों को लेकर बलवाम में इस लीला का कम-प्रसार—धीरविक्र के साथ इस लीला की यही परिपूर्णता है।

(४) राधिक प्रकट-कोटि और जीव-कोटि दोनों ही में विचारण कयी है। यह बात प्राचीन धारा ही की नवपरिणति है। जीव को कृष्ण-प्रेम के हाथ अनुगृहीत करने में ह्लादिनी-स्वपिपी राधिका ही कारण है। हम अपने पूर्वालोचित लक्ष्मीतत्त्व के अन्तर ही इस तत्त्व को देख पाये हैं। विरोध रूप से श्रीवैष्णव सम्प्रदाय में परिगृहीत लक्ष्मीतत्त्व के विवेचन के प्रसंग में हमने विस्तृत रूप से लक्ष्य किया है कि किष्ठ तत्त्व से लक्ष्मी जीव और भववान् के बीच में कल्पामूर्ति में और प्रेममूर्ति में विद्यमानता है। कल्प से विपलित होकर जीव को मयकम्पुषी कर रही है और प्रेम के अन्तःपर भववान् को जीवोन्मुखी कर रही है। इसी की परिणति राधिका के अन्तःस्वल्प में जीवानुपह में हुई है—धीर रसमयी के रूप में कृष्ण की भव-कामना की पूर्ति

में। यही तत्त्व परवर्ती काल में योकिम्ब प्रधिकारी के शुक्र-शारी के हाथ में बड़े सुन्दर डंग से प्रकट हुआ है—

शुक्र बनें धामार कृष्ण जपतेर पुत्र ।

शारी बनें धामार राधा बाघाकस्ततब ॥

श्रीसुन्दरदास के लक्ष्मीतत्व के विवेचन के प्रसंग में हमने कहा है कि एक असीम कल्पामूर्ति में बीच धीरे जगदानु के बीच 'मन्मथ' के रूप में शक्ति का यह जो अवस्थान है, यही भारतीय शक्तिवाद की विशेषता है, सभी तरह के भारतीय शक्तिवाद के अन्तर ही हम शक्ति के इस प्रकार के एक विशेष कार्य को देख सकते हैं।

(२) राधा के द्वार पर ही कृष्ण के स्वकामानन्द अनुभव का अरुण उत्कर्ष होता है, यह तत्त्व भी भारतीय शक्तिवादकी एक विशेष परिमति है। शक्ति के बाधिम्य के बिना शिव सब हो जाते हैं, भारतीय शक्तिवाद के इस बहुप्रचलित कथन के अन्तर ही राधावाद का यह तत्त्व निहित है। काश्मीर शैवदर्शन के विवेचन के प्रसंग में हमने देखा है कि शक्ति के द्वार पर परमशिव की प्रात्मोत्सुखि का तत्त्व काश्मीर शैवदर्शन में बड़े सुन्दर डंग से विकसित हुआ है। वहाँ शक्ति को परमशिव की 'विमल-पार्ष्णी-स्वपिनी' कहकर वर्णन किया गया है। शक्ति-स्त्री दर्शन में परमशिव का प्रतिफलन होता है और उस परम-प्रतिफलन के अन्तर से ही परमशिव का स्वकामानुभव होता है। शक्ति परमशिव की सभी इच्छाओं या कामों को पूर्ण करती है इसीलिए शक्ति को कामेश्वरी कहा गया है। इस विषय पर हम पहले ही विस्तारपूर्वक विचार कर आए हैं इसीलिए वहाँ उनकी पुनःशक्ति नहीं की।

दशम अध्याय

वार्शनिक राधातत्व के विविध विस्तार

श्रीवपीस्वामी ने श्रीराधातत्व को जहाँ तक संभव है एक वार्शनिक आधार पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया था। हम यह पहले ही कह चुके हैं कि उनके इस तत्त्वाभोधन की प्रेरणा श्रीर संभवतः उनके अपने तन्मय और उन्हें रूप समस्तान श्रीर गोपामसट्ट धारि से मिले गए थे। स्वपीस्वामी में काव्य और दर्शन का अपूर्व समन्वय हुआ था इसीलिए उन्होंने राधा को काव्य और धर्मकार की अपनी दृष्टि से नम्रा प्रकार से प्रस्तुत कर दिया था। मौड़ीय पोस्वामियों के धार्मिकों के बहुत पहले ही बुन्दावन-मधुरा-द्वारा में श्रीकृष्ण की विविध सीमा काव्य-पुण्यधरि में बहुत प्रकार से पस्तबिध हो उठी थी। सोलहवीं शताब्दी के पहले राधा की कथा भी पस्तबिध हो उठी थी। बुन्दावन के पोस्वामियों को जब राधा-कृष्ण तत्व की व्याख्या करनी पड़ी तो श्रीकृष्ण की विविधनीला से सम्बन्धित उपाख्यानों को उन्हें लेना पड़ा और उनके मूलसिद्धान्त से संघटित रखकर व्याख्या करनी पड़ी। इस नेष्टा के कमलत्वस्व श्रीकृष्ण को केन्द्रित करके जननी पुष्पोत्तम मूर्ति के चारों ओर नित्य नूतन तत्व निर्मित हो रहे थे। श्रीकृष्ण से विविध धर्म के संभव की बात हम पहले ही कहा है। कृष्ण के अवतार श्रीकृष्ण की विविध सीमाओं से मिलकर अनेक नहिनी और प्रेरणियों का धार्मिकता हुआ है। इनके प्रति श्रीकृष्ण के प्रेम में तात्पर्य बचस्य ही था उन्ही प्रेम के तात्पर्य की लेकर विविध तत्त्वों का उद्भव हुआ है। अतएव मौड़ीय वैष्णव धर्म के बहुतेरे प्रेमतत्व मूलतः वार्शनिक प्रयोजन या धर्म के प्रयोजन से उत्पन्न नहीं हुए, ये बीला को उत्पन्न और नित्य मानकर और पुण्यधरि में बनिध कथाधियों को भी अध्यात्म मानकर बहुतेरे स्वधियों के सम्मुख हुए थे। सब विरोध और अव्यति को दूर कर सारी सीमाओं को असाध्य वार्शनिक आधार पर प्रतिष्ठित करने में पोस्वामियों को इसके बहुतेरे तत्त्वों को नए सिरे से नमना पड़ा है।

हम पुण्यधरि में कृष्ण की विवाहित अनेक पत्नियों का बस्तब बख धार है, इनमें घाठ पत्नियों की कहानी ही प्रसिद्ध है। विधर्म-राज श्रीकृष्ण की कथा धर्मिणी कृष्ण की विवाहित पत्नियों में सर्वत्र नेष्ट

बताई गई है। सत्यमाया ब्रह्मबली धारि ब्रह्मटी पलियों की संख्या घोर नामों की शक्तिका के विषय में हरिर्ब्रह्म घोर पुण्यकारि में कठोर देख नहीं दिखाई पड़ता है। ब्रह्मिण्यन्त्र ने दिखाया है कि मित्र-निमग्न शक्तिकार्यों में कृष्ण की त्रिज पलियों के नाम मिलते हैं उनकी संख्या बाह्य होती है। यह हुई कृष्ण की विवाहित पलियों की बात। ब्रह्मबली के प्रसार के साथ घनमिलन योगियों के साथ कृष्ण के प्रेम-सम्बन्ध के उत्तम मिलते हैं। यथा नी इन्हीं में से एक योगी है। इस पौरुषिक विवरण घोर धार्मिक विवरण में एक संज्ञा स्थापित करना बकरी है इसमि गौत्वानियों ने सभी प्रकार की बल्लभाओं को माना प्रकार से योगी-विमल करने कीला विस्तार में उनके लिए प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष स्थानों का निर्देश किया है और इस बाध योगीभेद कीटाबा की ही श्रेष्ठता सिद्ध करने की श्रेष्ठता की है।

ब्रह्मयोगी ने अपने 'उज्ज्वलमलीनमणि' ग्रंथ के 'कृष्णबल्लभा' अध्याय में कहा है कि जो बल्लभाएँ साधारण गुणधर्मयुक्त हैं और जो विलीय प्रेम घोर सुमाधुर्य सम्पत् के अग्रमाय में प्राथम्य लिए हुए हैं वे ही कृष्ण बल्लभा हैं। इन कृष्ण-बल्लभाओं को दो मानों में बाँटा जा सकता है— पति-भारो-उत्तरा घोर पतिव्रत में अग्रम स्थित ही स्वकीया हैं और कृष्ण की योगी प्रेमसीमल सभी कृष्ण की पत्नीया बल्लभाएँ हैं।

ब्रह्मयोगी के मतानुसार शारदापुत्री में श्रीकृष्ण की स्वकीया महिषियों की संख्या ही श्रेष्ठ ह्वार घाट है, इनमें ब्रह्मयोगी सत्यमाया ब्रह्मबली काशिकी यैव्या मन्ना कीटाव्या घोर मादी ये ही प्रबला हैं प्रत्यक्ष वे पट्टमहिषी के। इन में ब्यात है। इनमें ब्रह्मयोगी ऐश्वर्य में श्रेष्ठ घोर सत्यमाया सीमाय में शक्ति है।

बाह्य में कृष्ण की सभी प्रेमसिंधी स्वकीया हैं ब्रह्मयोगी सभी स्वकीया हैं कारण यह है कि यथावे में इन ब्रह्मयोगियों ने अपना देह-मग्न सर्वत्र कृष्ण को धर्यन किया था। कृष्णार्थ ही उनका यथावे धर्यन है प्रकट रूप में उनकी पति धारि की प्राप्ति एक 'माल मात्र है—इस विषय में धामे हम विमल विचार करते हमलिए यहाँ शक्ति नहीं लिखना चाहते। इस स्वकीया घोर पत्नीया के अलावा कृष्ण की एक 'साधारणी' नायिका है कृष्णा। बहु-नायक-निष्ठा नायिकाओं को साधारणी कहा गया है। लेकिन कृष्णा बहु-नायक-निष्ठा नहीं है, एकमात्र कृष्ण के प्रति प्रीति होने के कारण कृष्णा भी कृष्ण-बल्लभा के रूप में गण्य है।

(१) कृष्ण-धारिण्य तृतीय अर्थ, अथ परिच्छेद वैशिष्ट्ये ।

प्रकट लीला में गोपियों का परकीयापन स्वीकार किया गया है। परकीया को प्रचार की हठी है—'कन्या' और 'परोक्ष'। कन्या प्रादि जो अधिकारिता ब्रह्म-कुमारियों कृष्ण के प्रति प्राप्त थीं वे ही कन्या हैं, और जो गोपियाँ दूसरे गोपियों द्वारा विवाहिता होने पर भी कृष्ण के प्रति प्राप्त थीं वे ही परोक्ष हैं। ये परोक्ष ब्रह्मकुमारियों ही कृष्ण-वस्तु भावों में बंधे हैं। ये सोमा उद्भूत और ब्रह्म से सर्वादिप्रायिनी हैं वे रत्नादेवी से भी अधिक प्रेमसौन्दर्य-भर-भूषिता हैं। ये परोक्ष गोपियाँ तीन प्रकार की हैं—'साधनपथ' 'बिबी' और 'मित्यप्रिया'। पूर्वजन्य की साधना से जो भक्त्यादि मोतीदेह पाते हैं, वे ही साधनपथ गोपी हैं। ये साधनपथ गोपियाँ दो प्रकार की होती हैं—'गोपित्री' और 'भयौषिकी'। जो अपने मन के साथ साधन में रत होती हैं वे गोपित्री हैं। गोपित्री दो प्रकार की होती हैं—'मुनि' और 'उपनिषद्'। पद्यपुण्य में हम देखते हैं कि योपास-उपासक बंधकारण्यवासी मुनियों ने ही श्रीकृष्ण का सर्व्व माधुर्य्य प्राप्त करने की कामना लेकर साधना द्वारा मोतीदेह प्राप्त किया था। उपनिषद्पथ के सम्बन्ध में कहा गया है कि जो अस्मिन् महा-उपनिषद्पथ गोपियों का असमोर्ध्व सीमात्त्व देखकर भ्रष्टा के साथ उपस्था करके प्रेमादया बोधी के रूप में ब्रह्म में वृत्ता हुए वे वे ही उपनिषद् गण हैं। कोई भी ब्रह्म ब्रह्म मोतीमात्र से बहुराग होकर साधन में रत होता है और अत्यन्त के कारण गोपियों का अनुप-भाव से मजल करते-करते मोतीमात्र और मोतीदेह प्राप्त करता है तब वही भयौषिकी गोपी कहलाती है। इस प्रकार की गोपियों में प्राचीनापन सुधीर्ष अज्ञ की साधना के फलस्वरूप 'मित्यप्रिया' गोपियों के साथ सातोक्त्य प्राप्त होती है। प्राचीनापन मर्त्यामर्त्य बहुतेरी गोपियों में भ्रमण करने के बाद ब्रह्म में धाकर गोपी के रूप में जन्म लेती हैं।

हमने पहले देखा है कि बीच में प्रत्यकोटि में (अर्थात् जीवकोटि और भवत्कोटि) प्रवेश करने की सामर्थ्य है। प्रेम-शक्ति के बल पर साधन-भजन द्वारा बीच पहले भगवान् के स्वस्ममूढ धाम में प्रवेश करने का अधिकार पाता है और उस धाम में अपनी साधना के उपयोगी भगवान् का लीलापरिकरत्व पाता है। इन साधक मन्त्रों में जो अन्तम अधिकारी हैं, वे ही धामबन्ध साधना में प्रवेश करके अपनी धार्मिकधर्मों के अनुसार कृष्ण-वस्तुता के रूप में मोतीदेह पाते हैं। अतएव गोपियों में दो प्रकार की गोपियाँ हैं। जो मित्यप्रिया के लिए नमुर बुद्धाचन में श्रीकृष्ण की लीलासंदिग्धी हैं वे ही मित्यप्रिया गोपी हैं, दूसरे प्रकार की गोपियाँ बीच के ही साधनमन्त्र

विद्यार्थेयवपु हैं। यह साधनपत्र-योनीवत् ही बीज का साध्य है, नित्यप्रिया गोपीत्व कभी भी साम्य वस्तु नहीं है, वह निश्चिन्त है।

इस साधनपत्र गोपियों और नित्यप्रिया गोपियों के बीज में और एक प्रकार की गोपियों का उल्लेख किया गया है इन्हें 'देवी' कहा जाता है। जब-जब पूर्वमयवान् श्रीकृष्ण प्रदक्ष्य में देवयोनि में जगम सेते हैं, तब उनके संतोष-साधन के लिए नित्यप्रियाओं के धर्मों का भी जगम होता है यही देवी नाम से क्यात है। कृष्णवठार में कभी देविमां पोषक्या के रूप में नित्यप्रियागर्भों की प्राक्तुस्य सबी-स्वानीत होती है। नित्यप्रिया गोपियों में राधा बम्बावनी बिलाबा जनिता स्वामा पया शीष्या भवा तात बिबा गोपाली बनिष्य और पात्रिका प्रादि प्रवाल है। राधा प्रादि प्राठ प्रवाल गोपियां पूजेवती कहवती है क्योंकि इनमें से प्रत्येक का एक युव है और उष युव में तद्भावभाविनी प्रसंख्य गोपियां है। इनमें राधा और बम्बावनी का ही प्राकाम्य है। इन दोनों में सर्वाध में राधा का ही उत्कर्ष है। जब इन बेशते हैं कि राधा ही कृष्ण-वस्त्रमाधों में सर्वाध श्रेष्ठ है—अर्धप्राधिका है। ये महामावस्वरूपा और पुचतपुह के द्वारा 'प्रतिवरीवती' हैं। प्रेम-सौन्दर्य की परकाष्ठा इस राधा का बरित्त्वमय वर्णन करते हुए स्वयंस्वामी ने कहा है—यह वृषभानु-नन्दिनी (१) 'मुष्टुकान्तस्वक्या' (२) वृषोदकशृंगाण और (३) इन्द्रसामरणाभिता है। पहले 'मुष्टुकान्तस्वक्या' का लक्षण बतते हुए कहा गया है कि जिस राधिका के स्तोत्रध से निवृत्त विवृत्त होता है, वह राधिका के केतवाम संकृषित है, बीर्य नवनों वाला मुक्त बचन है, कठोर कुर्षों से बल-स्वत गुम्बर है मध्यवेष्ट वीच है, स्फुन्दरेष्ट धरममित है इत्ययुगत नखरुणधोमित है। राधिका के सोलहों शृंगारों में देवती है कि राधिका स्नाता है उनके मासाध में मणियां है वे नीलवसन पशुने है, उनक कटितट पर लीली है मस्तकपर बनी बेशी है कानों में जतध है वे बन्धप्रादि से बचितादी है, वे कृत्तुभित्तिकृत्त मास्यधारिणी है, पपहस्ता है उनके मुखकपल में ठाम्बूत चिकुर पर कस्तूरी विन्दु है वे कज्जमित्त-जमना है, मुचिवा धर्मात् कपोल प्रादि चित्तित है बरलों में महावर है और सतत बर तिलक है। राधिका के द्वारा धामरज है माये पर लकीन्द्र, कानों में स्वर्णमय कुण्डल मितम्ब पर कौपी गनै में स्वर्णपद्म कानों पर स्वर्णतालाका कर्णों में बलय, कंठ में कंठभूषण धर्मणियों में धंपूठियां बरा पर ताण्डुकाठी हार, मुर्खों पर प्रबन्ध, बरषों में रत्नगुण्ड, पैरों की धर्मणियों में तुप धंपूरीमक।

इस बुन्दावनेस्वरु के अनन्त गुण हैं। उनमें से कुछ मुख्य-मुख्य गुण उल्लिखित हुए हैं जैसे मधुरा मन्त्रया चत्पापांगा उग्धतस्मिता चारु-धीराम्भ-रेखाङ्गा बन्धोन्मारित-मापवा (धर्मात् विद्यते धन के सुबंध से मापव पागत हो उठते हैं) संगीतप्रसंगमिज्ञा रम्यवाक मर्मपंडिता कदमापूर्णा विद्यवा पटवाम्बिता (चातुर्यदाक्षिणी) लज्जशीला सुमर्षादा धैर्यगामीर्यदाक्षिणी सुविज्ञासा महाभाव-मरमोन्धर्वतपित्री गोकुलप्रेम वसति (धर्मात् गोकुलवासी सभी के स्नेह प्रीति की बस्ती स्वरूप) जयच्छे, भीलसम्पदा (धर्मात् जिसके यश से सारा संसार व्याप्त है) बुद्धिपितृस्नेहा (गुरुजनों की अत्यन्त स्नेहपात्री) सखीप्रवर्षितावद्या इन्द्रप्रियावसीमुखा सप्तता मन्त्रेयवा (सर्वदा ही केशव जिसकी प्राज्ञा के प्रवीण हैं) हैं, आदि।

हमने देखा है कि मूर्धेस्वरुण में बुन्दावनेस्वरु रचिका ही प्रधान हैं। इस बुन्दावनेस्वरु रचिका के मुख में जो सखियाँ हैं, वे सभी सर्वगुण-मंडिता हैं और ये सुभ्रूण अपने अनन्तविध विज्ञास-विभ्रम द्वारा सर्वदा भीकृष्ण का मन आकर्षित करती हैं। ये सखियाँ भी पाँच प्रकार की हैं— सखी नित्यसखी प्राणसखी प्रियसखी और परमश्रेष्ठ-सखी। कृष्णिका विन्ध्या धमिष्ठा आदि साधारण सखियाँ हैं कस्तूरिका मधिमन्त्रिका आदि कठिणय योपियाँ नित्यसखी हैं अधिभुली बाधुती साक्षिका आदि प्राणसखी हैं। इन प्राणसखियों ने बुन्दावनेस्वरु रचिका के श्रम स्वरुणता को भी पाया है। करुणाशी सुमध्या मन्त्रावता कमला माधुरी मंजुकेसी कन्धर्व-मावशी मावशी कामवता ससिकला आदि राधा की प्रियसखी हैं परमश्रेष्ठ सखियों में ललिता विद्यासा विद्या चम्पकवता तुन्धिका इन्दुतेजा रंघेरी और सुबेरी वे भाठों 'सर्ववधात्रिमा' हैं।

बुन्दावन की राधा-कृष्णलीला में इन सखियों का एक मुख्य स्थान है। ये सखियाँ भीमा-विस्तारिणी हैं। प्रेम का एकमात्र विषय-स्वरुण रचिका भीकृष्ण की प्रेम-धामव हैं। इस विषयाधय का धवसम्बल करके जो लीला होती है उसे इन सखियों ने अनन्त वैचित्र्य और मानुर्व से अनन्त विस्तार दान किया है। उन्होंने प्रेम को बनाकर बियाड़ा और बियाड़कर बनाया है। इस बनाने-बिबाड़ने और चतुराई और चपसता के द्वारा प्रेमलीला का मूर्धम-मुकुमार रम्यत्वदान में गिरलर विस्तार किया है। वे कभी कृष्ण का पक्ष लेती हैं तो कभी राधा का। जैसे बंकिता की रक्षा में राधा के प्रति इनकी सहानुभूति और अनुराग और भीकृष्ण के प्रति विशेष देखा जाता है। दुसरी और मान (रठना) की रक्षा में वे कृष्ण के प्रति अनुपमित्री और राधा के प्रति विरामिणी होती हैं। वास्तव

में सक्षियों का मानो राधा से प्रथम अस्तित्व ही नहीं है—ये मानो राधिके का ही अन्वित्कार है। प्रेमस्वरूपिणी की ही हास्य-लास्य क्लम-बल में विमोह-बातुर्द में एक प्रेमभ्योति का परिमंडल है। इसीलिए सतीश्या गोपियों को राधिका का कामभूहस्य कहते हैं। हमने पहले किस प्रकार बिष्णु को बामुदेवादिभूह में प्रकाश देखा है वहाँ राधिका का भी उन्नी-मंडपी धारि विभिन्न भूहों में प्रकाश देखते हैं। ये मानो मूल राधिका-स्वरूप प्रेमकल्पलता की पल्लव सवृक्ष है। इन सक्षियों में कभी भी कृष्णधंगमुक्षस्युहा नहीं थीं राधिका से कृष्ण के मिसन में ही उन्हें परम धानस्य मितता बा। इसी-लिए राधिका से कृष्ण के मिसन के लिए ही सक्षियां सारि भेद्यार् कळी थीं। किसी मता के पल्लवदि में बल न रेकर मता की बड़ में ही पानी बामने से बैसे उस मूल के रस ही पल्लवों में रस की पुष्टि होती है, राधिका की प्रेमकल्पलता की पल्लवसवृक्ष सक्षियां भी बसी सख् परिपुष्टि पा रही हैं। इस विषय में शैतन्यचरितामृत में कहा गया है—

सखी बिनु एह लीलार पुष्टि नाहि हय ।
 सखी-नीला बितारिया सखी धास्बादय ॥
 सखी बिनु एह नीलास्य अण्ये नाहि मति ।
 सखी-नावे येह तारे करे दनुगति ॥
 राबाहृष्ण-सुखसेवा-साध्य सेह पाय ।
 सेह साध्य पाइते धार नाहिक उपाय ॥
 सखीर स्वभाव एक अकल्प्य कपन ।
 हृष्णसह निजनीलाय माहि सखीर मन ॥
 हृष्णसह राधिकर लीला ये कराय ।
 निज केलि हूँते सखे कोटि सुख पाय ॥
 राबार स्वयं कृष्ण-भेजतस्वपलता ।
 सखीगण हय तार पल्लव पुष्प मला ॥
 कृष्णनीलामृते यदि मलाके सिञ्चय ।
 निज सेक हइते पल्लवधर कोटि सुख हय ॥

मय्य-धम ।

रूपगोस्वामी ने बृन्दावनेरवरी राधिका की भेद्यता 'रति'-विस्तेषय के द्वारा भी सिद्ध की है। तात्पर्य येद से रति तीन प्रकार की होती है—

(१) तुलनीय—ठाकुरराजीर कला-भेजनीलम बन्दीवाध्याय (मोहितलाल मनुमवार सम्पादित) पृ० २३६ ।

इस बुन्दाबनेस्वरी के अनन्त युग हैं। उनमें से कुछ मुख्य-मुख्य युग उल्लिखित हुए हैं, जैसे मधुर नवयवा चमत्पात्रा उज्ज्वलमिथ्या, चाट-सीमाय-रैखाङ्गा मंत्रोन्मादित-माधवा (धर्मात् जिसके धर्म के सुषम से माधव पागल हो उठते हैं) समीतप्रसरामित्रा रम्यवाक् नर्मपंडिता कदवापूर्णा, विद्याया पटवाम्बिता (चातुर्वेदाभिनी) सज्जासीता सुमयासा धर्मगामीर्मघाभिनी सुवितासा महाभाव-परमोत्कर्षतापिनी गोकुलप्रेम वसति (धर्मात् गोकुलवासी सभी के स्नेह प्रीति की वस्ती स्वरूप) जगन्ने पीनसदृश्या (धर्मात् जिसके यक्ष से शार संसार भ्याप्त है) सुर्बपितमुस्तेहा (बुद्धियों की अत्यन्त स्नेहपात्री) सखीप्रणमितावस्था इष्यप्रियावसीमुख्या सभता-अवकेतवा (धर्मवा ही कैशव जिसकी छात्रा के धर्मी हैं) हैं धारि ।

हमने देखा है कि युवेस्वरीगण में बुन्दाबनेस्वरी राशिका ही प्रधान हैं। इस बुन्दाबनेस्वरी राशिका के युग में जो सखियाँ हैं वे सभी सर्वबुद्ध-मंडिता हैं और ये सुभूगव अपने अमलमिय विलास-विभ्रम हाप सर्वदा श्रीकृष्ण का मन आकषित करती हैं। ये सखियाँ भी पाँच प्रकार की हैं—सखी नित्यसखी प्राणसखी मियसखी और परमश्रेष्ठ-सखी। कृष्णिका बिन्या बनिष्ठा धारि साधारण सखियाँ हैं, कस्तूरिका यधिर्यवरिका धारि कतिपय पीपियाँ नित्यसखी हैं, अधिमुखी बासंती सासिका धारि प्राणसखी हैं। इन प्राणसखियों ने बुन्दाबनेस्वरी राशिका के प्रायः स्वरूपता को भी पाया है। कुर्याकी सुभया मरनासता कमला याधुपी मंबुकेली कर्ण-माधवी भावती कामलता राशिकला धारि राधा की मियसखी हैं परमश्रेष्ठ सखियों में ललिता विद्याया विद्या अम्बकलता तु गविद्या इन्दुलेखा रंपदेवी और सुवेवी ये साठी 'सर्वमन्नाधिमा' हैं।

बुन्दाबन की राधा-कृष्णलीला में इन सखियों का एक मुख्य स्थान है। ये सखियाँ लीला-विस्तारिणी हैं। प्रेम का एकमात्र विषय-स्वरूप राशिका श्रीकृष्ण की प्रेम-माधव है। इस विषयमाधव का प्रवतन्वन करके जो लीला होती है उसे इन सखियों ने अनन्त वैचित्र्य और माधुर्य से अनन्त विस्तार दान किया है। उन्होंने प्रेम को बनाकर विषादा और विषादकर बनाया है। इस बनाने-विषादने और चतुर्घई और अपसता के हाप प्रेमलीला का सूक्ष्म-सुकुमार रम्यत्वदान में निरन्तर विस्तार किया है। वे कनी कृष्ण का पक्ष लेती हैं तो कनी राधा का। जैसे ललिता की रसा में राधा के प्रति इनकी घहानुभूति और धनुषम और श्रीकृष्ण के प्रति विद्वेष देखा जाता है। बूसरी और मात (स्थना) की रसा में वे कृष्ण के प्रति अनुपपिणी और राधा के प्रति विपपिणी होती हैं। वास्तव

में सखियों का मानो रंधा से अलग अस्तित्व ही नहीं है—वे मानो राबिका का ही अंगविस्तार है। प्रेमस्वस्वपिनी की ही हास्य-नास्य क्लम-बल में विलास-वातुर्य में एक प्रेमज्योति का परिमंडल है। इसीलिए सखीरूपा गौपियों को राबिका का कायभ्यूहरूप कहते हैं। हमने पहले जिस प्रकार विष्णु को वातुदेवारिभ्यूह में प्रकाश देखा है, यहाँ राबिका का भी सखी-मंडरी भावि विभिन्न भ्यूहों में प्रकाश देखा है। वे मानो मूल राबिका-स्वरूप प्रेमकस्त्रता की पल्लव सवृष्ट हैं। इन सखियों में कभी भी कृष्णसंगमुखस्फुहा नहीं थीं राबिका से कृष्ण के मिसल में ही उन्हें परम भगवन् मिसलता था। इसी लिए राबिका से कृष्ण के मिसल के लिए ही सखियाँ सारी बेव्याहें करती थीं। किसी लता के पल्लवादि में जल न देकर लता की जड़ में ही पानी डालने से जैसे उस मूल के रस ही पल्लवों में रस की पुष्टि होती है, राबिका की प्रेमकस्त्रता की पल्लवसवृष्ट सखियाँ भी उसी तरह परिपुष्टि पा रही हैं। इस विषय में शैतन्यचरितामृत में कहा गया है—

सखी विभु एह लीलाए पुष्टि नाहि हय ।
 लखी-लीला विस्तारिया सखी अस्वाद्य ॥
 सखी विभु एह लीलाय अन्धेर नाहि गति ।
 सखी-बाधे येह तारे करे धनुषति ॥
 राधाकृष्ण-कुंजसेवा-साध्य तेह पाय ।
 तेह ताम्य पाइते धार नाहिक उपाय ॥
 कबीर स्वभाव एक अकम्य कथन ।
 कृष्णसह निजलीलाय नाहि लखीर मन ॥
 कृष्णसह राबिकार लीला ये कराय ।
 निज केलि हैते तहै कोटि मुख पाय ॥
 राधार स्वरूप कृष्ण-प्रेमकस्त्रता ।
 सखीपन हय तार पल्लव पुण्य पला ॥
 कृष्णलीलामृते यदि लताके तिअन्य ।
 निज तेक हइते पल्लवाधेर कोटि मुख हय ॥

पद्य-८३ ।

स्वकोस्वामी ने बन्दावनेसवरी राबिका की बेव्याह 'रति'-विरसेपन के बाध भी लिख की है। तारकम्य धेर से रति तीन प्रकार की होती है—

(१) तुलसीय—कादुरानीर कथा-कोशमोहन बन्धोपाध्याय (बोद्धितात बभुनवार सम्पादित) पृ ३२३ ।

साधारण समन्वया और समर्था । इनमें जो रति गहरी नहीं होती प्रायः कृष्ण के वर्णन द्वारा ही जो रति उत्पन्न होती है, और जो संभोग इच्छा का ही निदान है—यह रति साधारण रति है । भानवत-मुण्डन में बनिठ कृष्णा का प्रेम ही साधारण रति का दृष्टान्त है । श्रीकृष्ण के कर्म-गुण का वर्णन करने से ही कृष्णा में कृष्ण-संभोग की इच्छा का उद्रेक हुआ था इसीलिए उसने कृष्ण के उत्तरीय-बन्ध को खींचते हुए उसने कहा था—
 'हे प्रेम्ण, यहाँ कुछ दिन मेरे साथ रहो और मेरे साथ रमन करो हे भन्मुखेशन तुम्हारा साथ छोड़ने का मुझे उत्साह नहीं हो रहा है ।'
 कृष्णा के इस प्रेम का भाव बहुत कुछ कृष्ण को जपति के रूप में स्वीकार करने बैसा है । यह रति जो बुद्धिबों से हेय है एक बहुराई की कमी के कारण यह रति संभोग की इच्छा में ही परिणत होती है । संभोग की इच्छा में ह्रास होने से इस रति में भी ह्रास होता है । जो, संभोग की इच्छा में धारमेन्द्रिय-भूति-इच्छा रहती है । कृष्ण के संयुक्त के द्वारा स्वयं प्रीति प्राप्त करने की कृष्णा की यही इच्छा थी । अतएव सुखैकतात्मक न होने के कारण यह प्रीति निकृष्ट है ।

समन्वया रति में पत्नीभाव का अभिमान रहता है । बुनाधि के सुनने से यह उत्पन्न होती है, इससे कभी-कभी संभोग की वृष्णा उत्पन्न होती है । शक्तिभी धारि की कृष्ण के प्रति जो रति है, वही समन्वया रति है । समन्वया रति में कभी-कभी निज-सुख-स्युहा की संभावना रहती है, लेकिन समर्था रति में निज-सुख-स्युहा नहीं रहती है । जो रति साधारणी और समन्वया से एक अनिवर्तनीय विवेकत्व प्राप्त करती है, जिस रति से तयात्म की प्राप्ति होती है, उसी को समर्था रति कहते हैं । इस रति के उत्पन्न होने पर उससे कूल बर्न बैर्य भग्यादि सब कुछ भूष जाता है, अर्थात् रति-विरोधी कुछ बर्न बैर्य भग्यादि बाधाएँ सोलहों भाने उपेक्षित होती हैं । यह रति 'सान्द्रतमा' है—अर्थात् आवागमर से इसके धन्वर कभी प्रवेश संभव नहीं होता है । स्वस्मादिशा ब्रह्मवासाधों में कारण-गिरयेक भाव से यह रति स्वभावतः उत्पन्न होती है । यह रति 'प्रकृतविनाशोधि' की 'बमरकारकरभी' है—इससे संभोग की इच्छा का विवेक का पार्यन्त नहीं है । अतएव इसमें अलग से कोई स्व-संभोगेच्छा नहीं है—इसके, सभी उद्यम 'कृष्णसौम्यार्थ' हैं ।

यह समर्था रति ही प्रीति होकर अर्थात् समधिक परिणति प्राप्त करके महामायाबद्धा की साम करती है । यह रति बीरे-बीरे बुद्ध होकर प्रेम

स्नेह, मान प्रणम राग अनुपम प्रीर भाव के रूप में परिणत होती है।
 'बीडे बीज' (ईस का बीज या धंशुर) बोलने से त्रमपरिणति के उपरान्त उससे
 रस रस से गुड़, गुड़ से खीर खीर से चीनी चीनी से सिता (मिथी)
 प्रीर उससे सितापना बनती है, उसी तरह से रति से प्रेम प्रेम से रास राग से
 अनुपम प्रीर अनुपम से महामात्र उत्पन्न होता है।^१ हम श्रीरगोस्वामी के
 प्रीति-सन्धन में प्रीति या रति से प्रेम स्नेह मान भावि की उत्पत्ति प्रीर
 इस प्रेम-स्वर-विशेष के संक्षिप्त लक्षणों का विवेचन कर आए हैं। रूप
 मोस्वामी ने कहा है, अंस के सर्वथा कारण रति हुए भी जिसका अंस
 नहीं होता मन्त्र-युक्तियों के इस प्रकार के मानबन्धन को प्रेम कहते हैं। प्रेम
 जब परमा काष्ठ प्राप्त करके 'बिहीपरीपन' होता है, अर्थात् प्रेमविषयोपलब्धि
 का प्रकाशक होता है^२ प्रीर हृदय को इषीभूत करता है तब उसका नाम
 होता है स्नेह। स्नेह जब उत्कृष्टता प्राप्ति के द्वारा नए-नए माधुर्य जाता है
 मयस्वर्य प्रकाशित्य (प्रकीर्तित्य) बराम करता है तो उसे मान कहते
 हैं।^३ मान अथर विज्ञान्य (अर्थात् विज्ञान या अमरपहित्य) प्रदान
 करता है तो उसे प्रभय कहते हैं।^४ प्रभयोत्कर्ष के हेतु चित्त में अधिक
 बुद्ध भी जब बुद्ध के रूप में अनुभूत होता है तो उस प्रेम को

- (१) प्रेम अमे भावि ह्य स्नेह, मान प्रभय ।
 रास अनराय भाव महामात्र ह्य ॥
 येधे बीज इशुरत गुडखण्डसार ।
 सर्करा सिता मिधरि पूर मिधरि प्रार ॥
 इहा तीधे अमे निर्यन्त अमे बाड़े स्वाव ।
 रति प्रेमादि तीधे बाण्ये मास्वाव ॥

अंत्यवर्धितामुत्त. (मध्य २३५)

- (२) सर्वथा अंसरहितं सत्यपि अंसकारणे ।
 यद्भासकान्यनं पुनो. स प्रेमा परिकीर्तितः ॥
- (३) विज्ञान्येन प्रेमविषयोपलब्धिश्चरते । सा विवेक बीमस्तं दीपय ॥
 उदीप्तं करोतीति । — विरचनाय चक्रवर्ती-कृत 'मानन्दचन्द्रिका' ।
- (४) सावह्यं वरमां काष्ठं प्रेमा बिहीपरीपनं ।
 हृदयं हास्यमेव स्नेह इत्यभिधीयते ॥
- (५) स्नेहस्तुत्कृष्टतावाप्या माधुर्यमानयसम् ।
 यो वास्यप्रकाशित्यं स मान इति अर्थयति ॥
- (६) मानो इवामो विज्ञान्यं प्रभयं प्रोच्यते सर्वं ॥

साधारण समञ्जसा और समर्था । इनमें जो रति गहरी नहीं होती प्रायः कृष्ण के दर्शन द्वारा ही जो रति उत्पन्न होती है, और जो संमोह इच्छा का ही निदान है—वह रति साधारण रति है । भामवत-युगल में बन्धित कृष्णा का प्रेम ही साधारण रति का दृष्टान्त है । श्रीकृष्ण के रूप मूल का दर्शन करने से ही कृष्णा में कृष्ण-संमोह की इच्छा का उद्रेक हुआ था इसीलिए उसने कृष्ण के छतरीय-वस्त्र को धीकते हुए उसने कहा था—
 'हे प्रेष्ठ, यहाँ कृष्ण बिना मेरे साथ रहो और मेरे साथ रमन करो हे धम्मबोधन तुम्हारा साथ छोड़ने का मुझे उत्साह नहीं हो रहा है ।'
 कृष्णा के इस प्रेम का भाव बहुत कृष्ण को उपपत्ति के रूप में स्वीकार करने बैठा है । यह रति जो कृष्टियों से हैम है एक गहराई की कमी के कारण यह रति संमोह की इच्छा में ही परिणत होती है संमोह की इच्छा में ह्रास होने से इस रति में भी ह्रास होता है । जो संमोह की इच्छा में आत्मेश्रिय-भूति-इच्छा रहती है । कृष्ण के संमूल के द्वारा स्वयं प्रीति प्राप्त करने की कृष्णा की यही इच्छा थी । अतएव सुखीकृतात्पर्य न होने के कारण यह प्रीति निकृष्ट है ।

समञ्जसा रति में पत्नीभाव का प्रतिमान रहता है । मुन्वादि के सुनने से यह उत्पन्न होती है इससे कमी-कमी संमोह की वृष्णा उत्पन्न होती है । अनिमनी आदि की कृष्ण के प्रति जो रति है, वही समञ्जसा रति है । समञ्जसा रति में कमी-कमी निज-मुक्त-सुहा की संभावना रहती है लेकिन समर्था रति में निज-मुक्त-सुहा नहीं रहती है । जो रति साधारण और समञ्जसा से एक अनिवर्तनीय विशेषत्व प्राप्त करती है जिस रति से तत्काल की प्राप्ति होती है, उसी को समर्था रति कहते हैं । इस रति के उत्पन्न होने पर उससे कृम बर्म बर्म लज्जादि सब कृष्ण मूल जाता है, अर्थात् रति-विरोधी कृम बर्म बर्म लज्जादि बाधाएँ तोबाहों जाने उपेक्षित होती हैं । यह रति 'साश्रयमा' है—अर्थात् भावांतर से इसके अन्तर कमी प्रवेश संभव नहीं होता है । स्वस्मसिद्धा अथवाबाधों में कारण-निरपेक्ष भाव से यह रति स्वभावतः उत्पन्न होती है । यह रति 'अज्ञुतविसासोर्भि' की 'बमत्कारकभी' है—इससे संमोह की इच्छा का विशेष या पार्वत्य नहीं है । अतएव इसमें घलन से कोई स्व-संमोहेच्छा नहीं है—इसके सभी उच्चम 'कृष्णसीध्यार्भ' हैं ।

यह समर्था रति ही प्रीति होकर अर्थात् समन्वित परिपत्ति प्राप्त करके महामायादशा को नाश करती है । यह रति धीरे-धीरे बुद्ध होकर प्रेम

स्नेह, मान प्रथम एक अनुपम और भाव के रूप में परिच्छिन्न होती है।
 जैसे बीज (ईस का बीज वा रसुदर) बोने से अमपरिणति के उपरान्त उससे
 एक एक से कुछ कुछ से लीक लीक से बीनी बीनी से सिता (मिमी)
 और उससे सितापत्ता बनती है उसी तरह ये रति से प्रेम प्रेम से एक एक से
 अनुपम और अनुपम से महामात्र उत्पन्न होता है। हम बीजतोस्वामी के
 प्रीति-सम्बन्ध में प्रीति या रति से प्रेम स्नेह, मान आदि की उत्पत्ति और
 इस प्रेम-स्तर-विशेष के संश्लिष्ट लक्षणों का विवेचन कर आए हैं। रूप
 तोस्वामी ने कहा है अर्थात् के अर्थवा कारण रहते हुए भी चित्तका अर्थ
 नहीं होता यक-युक्तियों के इस प्रकार के भावकल्पन को प्रेम कहते हैं। प्रेम
 का परमा काष्ठ प्राप्त करके 'विहीप्सीयत्' होता है अर्थात् प्रेमविषयोपलब्धि
 का प्रकाशक होता है और हृदय को इषीयुत करता है तब उसका नाम
 होता है स्नेह। स्नेह का अन्वयता प्राप्ति के हाथ गए-गए भाव्य भाता है,
 मकर स्वयं अघसिन्धु (अकीटिन्धु) बारण करता है तो उसे मान कहते
 हैं। मान अन्तर विज्ञान (अर्थात् विश्वास वा अमराहित्य) प्रथम
 करता है तो उसे प्रथम कहते हैं। अन्वयता के हेतु चित्त में प्रथम
 कुछ भी अर्थ कुछ के रूप में अनुभूत होता है तो वह प्रेम का

- (१) प्रेम अने बादि हम स्नेह, मान, प्रथम ।
 एक अनुपम नाम अहान्त ह्य ॥
 जैसे बीज इन्दुरत्त पुत्रकल्पकार ।
 अर्थवा सिता मिच्छरि कुछ मिच्छरि धार ॥
 इसा तीसे अने निर्मल अने बाड़े स्वाद ।
 रति प्रेमादि तीसे बाड़े अस्वात् ॥

शैल्यधरितामृत (अध्या, २३५)

- (२) अर्थवा अर्थरहित स्वयं अर्थकारणे ।
 यद्वाचकत्वं पुनो स प्रेमा परिकीर्तिता ॥
- (३) विश्वप्रथे प्रेमविषयोपलब्धिः कथ्यते । सा विरेव दीप्तं दीप्यते ।
 अतीव अतीवति । —विद्वान्नाम अर्थवर्ती-कृत 'अर्थवाचकविश्वटीका' :
- (४) अर्थात् अर्थवा अर्थवा प्रेमा विहीनदीपकः ।
 हृदय अर्थवा अर्थवा स्नेह अर्थवा अर्थवा ॥
- (५) अर्थवा अर्थवा अर्थवा अर्थवा अर्थवा अर्थवा ॥
 वो अर्थवा अर्थवा अर्थवा अर्थवा अर्थवा ॥
- (६) अर्थवा अर्थवा अर्थवा अर्थवा अर्थवा अर्थवा ॥

राग कहते हैं ।^१ सदानुभूत प्रिय को भी जो राग नित्य नबल्य प्रभाव करके धनुमूति का भी नित्य नबल्य प्रदान करता है उसे ही धनुष्य कहते हैं ।^२ धनुष्य अगर 'मादवाभयवृत्ति' हो स्व-संवेद्यता प्राप्त होकर प्रकट हो तो उसे ही भाव कहते हैं ।^३ भाव में प्रेम के प्रत्येक स्तर के सभी गुण वर्तमान हैं यही प्रेम-प्रकाश की पराकाष्ठा है । यही धनुष्य के 'स्व-संवेद्यता' प्राप्ति का तात्पर्य है धनुष्य की निजोत्कर्षवशा-भाप्ति । इस भाव के तीन स्वस्व हैं पहला ह्लासाद्य में 'स्वसंवेद्यस्वत्व' दूसरा संवेद्यता में 'श्रीकृष्णारिक्मन्तविरनरूपत्व' इसके बाद तदुभयाद्य में 'संवेद्यस्वत्व' अर्थात् एक में विदुष्य प्रेमान्वाबुधन दूसरे में प्रेमानन्द के विषय के रूप में कृष्ण-विषयक ज्ञान तीसरे में इस प्रेमानुभूति और वैतन्य का एक अपूर्व मिश्रण । भाव में इसीलिए जिहा सुख मिश्रता है 'प्रेममत्त' धनुष्य का चरमोत्कर्ष है । इसी तरह एक श्रीकृष्णानुभवप्रथम सुख है, इसके बाद प्रेमापि के द्वारा धनुमूतपर होकर भी सम्प्रति श्रीकृष्ण धनुष्योत्कर्ष के द्वारा धनुमूत हो रहे हैं ऐसा द्वितीय सुख इसके बाद श्रीकृष्णानुभवन-रूप यह धनुष्योत्कर्ष धनुमूत होता है, ऐसा तृतीय सुख । श्रीकृष्णपदार्थ में शीत्यादि के उत्कर्षसमय चन्द्र-सूर्य जैसे धपने निकट या दूर जो सुख है, उन सब को शीतल या उष्ण करते हैं इसी तरह धनुष्योत्कर्षस्य भाव श्रीराधा के हृदय में सम्मक वरित होकर राधा को जिस तरह प्रेमानन्दमयी करता है उसी तरह पावतीय सावक भक्त और सिद्ध भक्तवर्षों के चित्त को भी श्रीराधा का प्रेमानन्द ही विनोदित करता है, यही ऊपर के 'मादवाभयवृत्ति' शब्द का तात्पर्य है । वृत्ति शब्द का अर्थ है साभिप्यवद्यत 'हृदि-बोद्धन-रूप' व्यापार या क्रिया । इन भावों में जो भाव कृष्णवस्तुमापय में एकमात्र ब्रह्मदेवी में ही संभव है उसी भाव को महामाव कहते हैं । यह महामाव श्रेष्ठ धनुष्यस्वत्व भी धारण करके चित्त को धपना स्वस्व प्राप्त करती है ।^४ यह महामाव बड़ और धबिन्दु के रूप में दो प्रकार का होता है । विश्व महामाव से चारे सात्त्विक भाव (स्तम्भ स्वी,

- (१) दुःखस्यपिक्तं चित्तं सुखविभव व्यन्यते ।
यतस्तु प्रथमोत्कर्षात् स राग इति कीर्त्यते ॥
- (२) सदानुभूतमपि यं कुर्मन्मन्त्रं प्रियम् ।
रापो भवप्रभवत् सोऽनुष्य इतिर्यते ॥
- (३) धनुष्य-स्वसंवेद्यता प्राप्य प्रकाशिता ।
मादवाभयवृत्तिर्यैव भाव इत्यभिधीयते ॥
- (४) चित्तनाथ चक्रेणो की दीप्य वैशिष्ट्ये ।
- (५) वराभूतस्वस्वमीः स्व स्वस्व्यं मनो नयेत् ॥

रोमांच स्वरमंत कर्म वैश्वर्ष्यं धर्मु धीर पुमक) उद्घीष्ट होता है, उद्ये रुद्र महामात्र कहते हैं। अब अनुमात्र रुद्र महामात्र के अनुमत्रों से भी एक विशिष्टता प्राप्त करते हैं जो उसे अधिरुद्र महामात्र कहते हैं।

इस रुद्र धीर अधिरुद्र महामात्र के सम्बन्ध में विश्वनाथ ऋषिजी ने अपने 'उज्ज्वलतीसमधि-किरम' में कहा है—बही रुद्र के सुख में पीड़ा की भावना से धमनर के लिए भी असहिष्णुतावि होती है—बही रुद्र महामात्र है। करोड़ ब्रह्माण्डगत समस्त सुख भी जिसके सुख पर लक्ष्य मात्र नहीं होता सारे विश्वधर्मों-सर्पों के रक्षण का दुःख भी जिसके दुःख का लेशमात्र नहीं होते रुद्र के मिलन-विरह से इस प्रकार का दुःख-सुख जिस रक्षा में होता है उस रक्षा को ही अधिरुद्र महामात्र कहते हैं।

इस अधिरुद्र महामात्र के 'मोहन' धीर 'मादन'—दो प्रकार के श्रेय है। मोहन धीर मादन की व्याख्या करते हुए श्रीगोस्वामी ने अपनी 'श्रीकनरोचनी' टीका में कहा है—मोहन हर्षबाधक है धतपत्र मोहनात्म्य की पर्याप्ति हर्षानुमिति में ही होती है। मादन 'विष्वमद्य विषेय विष प्रकार की मत्तता पैदा करता है, मादनात्म्य महा भाव में भी उसी तरह की एक मत्तता है। श्रीकृष्ण-मिलन से जितने प्रकार की धानन्द-वैचित्र्य पैदा हो सकती है मादनात्म्य महामात्र में उन सभी का युगपत् अनुभव है। ऋगोस्वामी ने कहा है कि जिसके लक्षान्त-रुद्र के चित्त में भी शोभ उत्पन्न होता है धीर विपुल प्रेमसम्पदा की अधिकांशिकी रुद्रकांक्षाओं के प्रेम की धनेला भी प्रेमाधिक्य व्यक्त हो, बही मोहनात्म्य महामात्र है। यह मोहनात्म्य महामात्र रुद्रकांक्षाओं में एकमात्र राधा के सुख में ही संभव है। यही ज्ञानिनी शक्ति का श्रेष्ठ सुविभाष है। शक्तिनी शरण्यमाना धारि कांक्षाओं के साथ बलश्रेय में रहने के समय भी राधा के दर्शन से रुद्र में चित्त-शोभ उत्पन्न हुआ या दूसरी बात है, रुद्र के दर्शन से राधा में जो प्रेमातिशयता दिखाई पड़ी थी उससे शक्तिनी धारि के प्रेम से राधाप्रेम का सर्वथा धारिभय प्रमाहित था। विस्लेप-रक्षा में या विरह में यह मोहन ही मोहन नाम धारण करता है। इस मोहन-भाव से कांक्षालिगित रुद्र की मूर्च्छा, असहनीय कष्ट स्वीकार करके भी रुद्र सुख की कामना ब्रह्माण्डसोमकारिण्य बही धारि प्राणियों का भी रोहन

(१) रुद्रस्य सुखे श्रीगोस्वामी निमित्तस्यापि असहिष्णुताविषं यत्र स रुद्रो ब्रह्मात्रा कोटिशूर्यारुद्रस्तं सनस्तसुखं यस्य सुखस्य लेशोऽपि न भवति, सनस्तसुखिरुद्रसर्परिबंशन-रुद्र-दुःखमपि यस्य दुःखस्य लेशो न भवति सोऽहं विरुद्रो महामात्र ।

मृत्यु स्वीकारपूर्वक निज शरीरस्य भूत के द्वारा कृष्ण-संग-शुद्धा विष्णो
 म्मात्र प्रादि बहुतेरे धनुषाशौ का वर्णन पंक्तिों ने किया है।
 श्रीवशोस्वामिद्वय प्रीति का विवेचन करते हुए हम संक्षेप में इसपर विचार
 कर पाए हैं। माधव ह्यारिणी का शार है यह 'सर्वमाशौष्यभोस्वामी' है—
 अर्थात् यह रति से लेकर महाभाव तक सभी प्रकार के प्रेमवैषम्य का जो
 उत्साह है, उसका मुखपद् धनुषमय करता है यही पद्यत्पर है। एकमात्र
 शबा को छोड़कर दूसरे किसी में यह माधवात्म्य महाभाव संभव नहीं
 होता है। इसीलिए शीराशिका 'कान्ताशिकोमधि' है।^१

मुख्यतः श्रीवशोस्वामी का धनुषरत्न करके कृष्णवास कविदान ने
 शैतन्यचरितामृत ग्रंथ में शिका का एक सुन्दर संक्षिप्त वर्णन दिया है।
 हम नीचे उसे उद्धृत कर रहे हैं—

प्रेमेर स्वल्प बेह प्रेम-विभासित ।
 कृष्णेर प्रेयसी श्लेष्ठा आले विरलित ॥
 सेह महाभाव इय चिन्तामधिसार ।
 कृष्णबाँझ पूर्ण करे एह कार्य्य बार ॥
 महाभाव चिन्तामणि रापार स्वल्प ।
 ललितारि लक्ष्मी तार कायम्पूह क्य ॥
 शबा प्रति कृष्णस्नेह सुभेधि-अहर्त्तन ।
 ताछे सुर्गम बेह उज्ज्वल बरप ॥
 काश्यामृत बाराय स्नान प्रथम ।
 ताश्यामृत बाराय स्नान मम्मम ॥
 माश्यामृत पापय तदुपरि स्नान ।
 निजलज्जा-वयाम-शुभाष्टी परिपान ॥
 कृष्ण-धनुषाव द्वितीय अत्य बलन ।
 प्रथम-मान-कंचुलिकाय बल-भाञ्छारन ॥
 लीन्यं कुंकुम लक्ष्मी-प्रलय-वन्दन ।
 स्मितकान्ति-अर्चुर तिने प्रबन्धोपन ॥
 कृष्णेर उज्ज्वलरत्न मुगम्भर ।
 सेह नृपनरै विचित्रित कलेबर ॥
 प्रच्छन्न-मान बाप्य चम्पिय-विन्यात ।
 शीराशौष्यमय-मुख धने पटबात ॥

(१) सर्वमाशौष्यभोस्वामी माधवोऽयं परश्वरः ।

राजते ह्यारिणीशारो शबायावैच पा सदा ॥

रास-ताम्बूलरामो प्रवर उज्ज्वल ।
 प्रेम-कौक्षित्य नेत्र-यज्जने कञ्जल ॥
 सुहीन सात्त्विक-आश हृषिकि संभारी ।
 एह सब भाव-भूषण सर्व प्रिय भरि ॥
 किर्त्तकचित्तादि-भास-विभ्रति भूषित ।
 पुष्यधनी-पुष्यमाता सध्याये पुरिष्ठ ॥
 सौभाग्यतिलक चाड ललटे उज्ज्वल ।
 प्रेम-कौक्षित्य एत हृदये तरल ॥
 मध्य-वयःस्थिता सखी स्कन्धे करन्यास ।
 कुम्भनीमा मनोवृत्ति लक्ष्मी प्राशपास ॥
 निजाय-धौरमानये पर्य पर्यक ।
 ताते वसि धाद्ये तथा चित्ते कुम्भतय ॥
 कुम्भ-नाम-गुण-यश प्रवर्तत काने ।
 कुम्भ-नाम-गुण-यश प्रबाह बचने ॥
 हृदयके कराय श्याम-रसनबु पाल ।
 निरन्तर पूर्ण करे कुम्भे सर्वकाम ॥
 कुम्भेर विनुद्ध प्रेम रत्नेर साकर ।
 अनुपम पुनगण पूर्ण-कलेवर ॥^१

मन्मथत बुम्बावन नाम के भी राजाकुम्भ की मित्यनीमा की साहित्य
 स्थापित करते हुए कौम्भक कवियों को मनुष्य का कृप्यन्त श्रीर मनु
 की भाषा की ही ध्यलाला पड़ा है । यह राजा कुम्भ-प्रेम भी इवीमि

(१) अष्टाध्यायी शताब्दी के प्रथम भाग में रचित अनुशास के निम्न
 लिखित पर इस प्रसंग में तुलनीय है:—

मन्मथस्य मुञ्ज-कार-स्वकन्य, क्रोमल धीम सुनाड अनुपा ।
 लक्ष्मी हेत उदवर्तन नाबे धालम्ब रस लो सबे प्रह्लाबे ॥
 धारी लाव की धति ही पनी, प्रीयिषा प्रीति हिये कति लनी ।
 हाव-आव-भूषण तन बने लौरव पुनगण बात न गने ॥
 रसपति रस की रचिपदि कीर्त्तों लो प्रीतन ले नैमदि बीतो ।
 पेंहरी-रूप अनुपम नुरंपा कर धव करव रहे तिहि रङ्गा ॥ इत्यादि

मानवीय प्रेम-सीमा के सभी वैश्विय भावुय में प्रकट हुआ है। धार्मिक-कारिक दृष्टि लेकर स्वर्गोत्सामी ने 'उज्ज्वलनीलमणि' ग्रंथ में श्रीर उनके बाद के कविचर्मपुर में 'धर्मकार-कौस्तुभ' ग्रंथ में जब इस प्रेम को एक ही मूर्ति प्रदान की तब उन्होंने 'रति' को ही स्थायी भाव के रूप में ग्रहण किया है। दूसरी ओर धर्मकारशास्त्र-सम्मत नायक-नायिका के सभी प्रकार के भेदों पर विचार करके कृष्ण श्रीर राधा को ही श्रेष्ठ नायक-नायिका के तौर पर ही स्वीकार किया गया है। अर्थात् धर्ममि नित्यप्रेम सीमा का विस्तारकारी इस राधा-कृष्ण के अन्तर प्रवाहित रस का वर्णन करते हुए श्रेष्ठ नायिका के रूप में वर्णित श्रीराधा के जिन अनुभावों का वर्णन किया गया है श्रीर रतिक्रम रचामी भाव के जो व्यभिचारी नावादि वर्णित हुए हैं उनके अन्तर भारतीय धर्मकारशास्त्र श्रीर कामशास्त्र का मिश्रण हुआ है। गोस्वामियों ने बारम्बार इस बात को स्मरण कर दिया है कि राधा श्रीर दूसरी जगदेषियों से श्रीकृष्ण की यह सीमा प्राकृत काम नहीं है लेकिन काम न होने पर भी 'काम-श्रीका साम्य' में इसे काम कहा गया है श्रीर साहित्यिक रूप या श्रीर धार्मिक-कारिक विस्तोपण में इसे प्राकृत काम-श्रीका के अनुस्यू भाव से ग्रहण किया गया है। इसके फलस्वरूप राधा को परिपूर्ण प्रेममयी बनाने में जिस श्रेष्ठ श्रीर सीता द्वारा प्राकृत काम का वैश्विय श्रीर सर्वातिशयिता प्रकट होती है राधा के प्रति के सभी आरोपित हुए हैं। भारतीय कामशास्त्रों में एक श्रेष्ठ नायिका में जो देहवर्ण श्रीर मनोवर्ण वर्णित हुए हैं, हम उन सभी को राधिका के ही अन्तर पाते हैं। वात्स्यायन के कामसूत्र में नायिका के जिन गुणों का वर्णन किया गया है, "उज्ज्वलनीलमणि" की नायिका के वर्णन में हम प्रकाश-रान्तर से उसी को प्रतिपन्नित सुनते हैं। यहाँ तक कि जिस ब्रह्मि बुद्धिया ने राधाकृष्ण का धर्म-मिलन कर दिया है उसमें 'योगमाया' के आभास के साथ कामशास्त्रोक्त कृष्टनी का भी परिचय मिलता है। बहू-श्रीश्रीश-रचित 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' काव्य की 'ब्रह्मि' बुद्धिया को योगमाया-तत्त्व का एक प्राकृत संस्करण न कहकर एक प्राकृत बुद्धिया का राधाकृष्ण के सामिध्य के कारण योगमाया-तत्त्व में उभयन कहना अधिक समीचीन होगा।

उज्ज्वलनीलमणि ग्रंथ में नायिका के विभिन्न प्रकार के श्रेणिविभाग की जो पद्धति दिखाई पड़ती है वह मूलतः उत्पूर्वकर्ती संस्कृत धर्मकार शास्त्र पर ही प्रतिष्ठित है। मन्वु भाव के स्थायी भाव 'रति' का धर्म-म्बन करके जिन धार्मिक-उद्दीपन विभाव श्रीर अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के वर्णन हैं, उसके भी प्राचीन धार्मिक-कारिक आधार हैं लेकिन इन

सोस्वामी ने उस प्राचीन साधार पर जिस वर्षवैचित्र्य की सृष्टि की है उसे भी प्रपूर्व मानने की इच्छा होती है। केवल विस्लेषण ही नहीं पुरातन साहित्य से और मुख्यत अपने रचित साहित्य से इस प्रकार के प्रत्येक विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भाव के वृष्टान्त लेकर स्वगोस्वामी ने राधा-कृष्ण की प्रेम-सीला को अनन्त विस्तार और समृद्धि प्रदान की है। इस धार्मिक-कारिक विस्लेषण में ही राधा-प्रेम में अनन्त वैभव और वैचित्र्य की परिपुष्टि हुई है। स्वगोस्वामी ने राधा-प्रेम को जो परिपुष्टि प्रदान की है, परवर्ती काल में इसी ने वैष्णवों को जाने-अजाने माना प्रकार से प्रभावित किया है। हमने पहले देखा है कि स्वगोस्वामी को राधा-प्रेम के ध्वजसूचक पर रचित अपने पूर्ववर्तियों का समृद्ध संस्कृत साहित्य मिला था। वेदज मापागो में रचित विद्यापति-जंबीदास की कविता भी उनके सामने थी। इसके साथ उनकी अपनी बिराद प्रतिभा भी धाँवर सम्मिलित हुई थी। इन उपासकों ने ही उन्हें अपने विस्लेषणों में अपनी निपुणता प्रदान की थी। विस्लेषण करते समय उन्होंने बहुतों नये वैचित्र्य और वाक्यांशों का सुजन भी कर लिया था। जब इस धार्मिक सुजन और कविसुजन ने सम्मिलित होकर परवर्ती सीला-प्रसार और उसके साधार पर साहित्य-प्रसार, इन दोनों बातों को संभव किया था। धार्मिक कृष्टि में राधा-प्रेम के सूक्ष्म तिमूह्य विचार-विस्लेषण के धन्धर हम सब नहीं पढ़ेंगे हम राधा-प्रेम से सम्बन्धित हो-एक प्रबल प्रवृत्ति पर ही विचार करेंगे।

राधा-प्रेम के सम्बन्ध में एक प्रधान विचारणीय विषय है स्वकीया परकीया-तत्त्व। परकीया-प्रेम ने वैठस्य के प्राधिर्भाव के बाद संभवतः बृन्दावन के गोस्वामियों के भी बाद एक तत्त्व का रूप धारण किया है। वैठस्य-चरितामृत में हम देखते हैं कि कृष्णदास कविराज के मतानुसार परकीया-तत्त्व के धारण का प्रचार स्वयं वैठस्य ने किया है। हमने प्रेम के जो विभिन्न स्तर देखे हैं परकीया तत्त्व उसी प्रेम या रस की ही विशेषावस्था है। वैठस्य-चरितामृत में कहा गया है 'परकीया भावे धृति रसेर जस्ताव'। परकीया में प्रेम का सर्वाधिक स्फुरण होता है। इसलिए प्रेमों में श्रेष्ठ कालाप्रेम में भी परकीया-रति श्रेष्ठ है। इस परकीया रति की परिपुष्टि राधा-प्रेम में होती है। 'परकीया' प्रेम ही कर्तव्य पर कथा

(१) परकीया भावे धृति रसेर जस्ताव ।

इह बिना इहार अन्धकार नाहि वास्त ॥

अनन्यपुत्रे एह धाव निरवधि ।

तार मये श्रीराधार भावेर धरवि ॥

(वैठस्य-चरितामृत प्रादि चतुर्थ)

हुषा सोना है क्योंकि यह प्रेम सर्वात्म्यायी प्रेम है सभी संस्कारों से मुक्त प्रेम है। सभी लज्जा-भय-बाधा से मुक्त प्रेम है। यह केवल प्रेम के लिए प्रेम है अतएव यही विमुक्त रागात्मिका रति है।

वैष्णव रस-शास्त्र में दर्शन-आसिगन के धामकृत्यनियेवत क हाण यवक-युवतियों के चित्त में उन्माद पर जो भाव आरोहण करता है उसी का संभोग कहते हैं। संभोग मुख्यतः चार प्रकार का होता है—संभित संकीर्ण सम्पन्न और समृद्धिभाम्। जहाँ लज्जा भय और असहिष्णुता के कारण भोगियों का बहुत थोड़ा सा व्यवहार होता है उसे संभित संभोग कहते हैं। साधारणतः पूर्वराग के बाद ही इस प्रकार के संभोग का विकास होता है। नायक के हाण विपत्ती का गुणकीर्तन और स्वबचनादि के स्मरण के हाण भोगोत्पत्तार समूह जहाँ संकीर्ण होकर बिलगई देते हैं उसी की संकीर्ण संभोग कहते हैं। यह कुछ परम ईश ब्रह्मने जैसा है प्रबन्ध इसमें एक ही साध स्वयं और उन्माद है। मानादि के स्वप्नों पर यह संकीर्ण संभोग है। प्रवास से भाए काष्ठ से संभोग को सम्पन्न संभोग कहते हैं। जहाँ परतंत्रता के कारण युवक-युवती प्रलय हैं यहाँ तक कि एक का दूसरे को देखना भी जहाँ दुर्लभ है जहाँ बोना के उन्मोम-अतिरेक को समृद्धिभाम् संभोग कहते हैं। जब हम देखते हैं कि परतंत्रता नहीं रहने से संभोग समृद्ध नहीं होता है लेकिन सोम में ज्यपति प्रादि ही संभोग-समृद्धि क कारण है। लौकिक कामक्रीड़ा-साम्य में इसीलिए राधाप्रेम में कृष्ण को ज्यपति के रूप में ही क्रीड़ा करती पड़ी है। परकीया का तात्पर्य यही है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर हम देखते हैं कि धानीर जाति में जब पोषाज-कृष्ण की प्रेम-मीमा प्रचलित की तब कृष्णा योपियों और परोड़ा योपियों से कृष्ण की प्रेममीमा की कृष्णा का प्रचलित रहना ही स्वाभाविक है क्योंकि संसार में जितने प्रेममीम सिद्धे गए हैं विमुक्त बाम्पत्यमीमा को लेकर उनमें कहीं भी स्फूर्ति नहीं बिलगई पड़ती है। विशेष करके बरबाहों के संनीत का बाम्पत्य-प्रेम लेकर लिखा न होने की ही संभावना

है।' इतीतिष्ठ कृष्ण-धर्मयिनी गोपियों का अन्य गोयों की कन्या या स्त्री के तौर पर ही वर्णन किया गया है। प्रमाना गोपिनी राबिका का हम जब से साहित्य में प्राविर्भाव देखने हैं तब से उमका परिचय परोड़ा गोपी के रूप में ही मिलता है। हम पहले लिख आए हैं 'कबीरचरन-समुच्चय' में राधा-प्रेम की कविता को धर्मती-कन्या के अन्तर ही स्वीकार किया गया है। परवर्ती काम के सग्रह में भी कृष्ण-धर्म के दृष्टान्त के तौर पर राधा-प्रेम की कविताओं का उल्लेख दिखाई पता है। हमने राधा-प्रेम के बिलने प्राचीन कनोका का उल्लेख किया है उन्हें देखने से प्राबिकार में धर्म प्रेम का उल्लेख या प्रामास दिखाई पड़ता।

इस धर्म प्रेम की लोकोक्ति को संकर किमिन्न कालों में राधा क सम्बन्ध में किमिन्न उपाख्यान बने हैं। इनमें मुख्य यह है कि कृष्णानु गोय की कन्या राधा प्रामास गोप की विवाहिता स्त्री है। इस प्रामास गोप के बारे में भी मिन्न-मिन्न मत प्रथमित हैं। हम पहले देख आए हैं श्रीगोवेन्दवन्द राध विवाहानिधि के मतानुसार सूर्य के 'प्रयत्न' में ही पंत में आकर प्रामास गोप के अन्तर धर्मीर देह धारण किया है। बुनायन के पोस्वामियों के पंथों में प्रामास गोप को इस

(१) इस विषय में प्रसिद्ध इतिहासकार डा. जाधवारकर का कहना है—*"The dalliance of Krishna with cowherdesses, which introduced an element inconsistent with the advance of morality into the Vrāṇudeva religion, was also an after growth consequent upon the freer intercourse between the wandering Abhiras and their more civilized Aryan neighbours. Morality cannot be expected to be high or strict among races in the condition of Abhiras at the time, and their gay neighbours took advantage of this looseness. Besides, the Abhira women must have been fair and handsome as those of the Ahir Gavalyas or cowherd of the present day are."* (Vaisnavism, Saivism etc. पृ. ३५)। इस विषय में हमें लगता है कि धामीर जाति के लम्बे इतिहास को बिना जान ही केवल अनुमान के आधार पर इतने बाने बहने में कोई सार्थकता नहीं है। जिस जाति में जब भी प्रेम-कान्ता बनी है तो वह प्रथमित समाज-रोति धीर समाज-नीति को तोड़कर ही बनी है। इतीतिष्ठ इस विषय में केवल धामीर जाति की ही नतिक व्यवस्था के प्रति किसी को कटाक्ष करने की आवश्यकता नहीं दिखाई पड़ती।

'धर्मिमन्नु' के रूप में पाते हैं। बहू-बहीदास के कृष्णकीर्तन में 'माइहन' रूप धर्मिमन्नु रूप का समर्पक है। किसी-किसी का कहना है कि प्राकृत 'धायान' नाम ही ठीक है। संस्कृत 'धर्मिमन्नु' का रूप देकर धायान को बहू दूर तक भ्रम बनाने की चेष्टा माध की गई है। धायान शोप शोप-राज धाम्यक के पुत्र थे उनकी माता का नाम था जटिला। धायान के तीन भाई और तीन बहनें थीं। इन तीन भाइयों का नाम है—विमल कुमंड और धायान। बहनों का नाम है—यशोदा कृटिला प्रभाकरी। यशोदा का भाई होने के नाते धायान कृष्ण का मामा और राबिका कृष्ण की मामी हैं। ब्रह्मरी जगह हम देखते हैं कि धायान शोप की मा जटिला कृष्ण की 'मातुर्मनुजानी' (मा की मामी) है। इसलिए धायान शोप यशोदा का ममेरा भाई है और इस हिसाब से कृष्ण का मामा है। राबिका उम में कृष्ण से बहुत बड़ी थी बहुतेरे ज्वाल्मानी में इस रूप का समर्पन मिलता है। नीलगोविन्द के पहले श्लोक में भी इसकी धीर स्पष्ट संकेत है। कृष्णम न क बाह राबिका पड़ोसिण म्नामिणों के साथ यशोदा-मुत कृष्ण को देखने आई थी और धायान के साथ उसने जब कृष्ण को सोर में लिया तब राधा-कृष्ण की स्वरूप-स्मृति जमने के कारण प्रथम निमत हुआ था इस तरह के राधा-कृष्ण-सम के बहुतेरे पर पर रचनितारों ने रचे हैं। प्रथम किम्बरस्ती के अनुसार धायान शोप मनुष्य के मतएव मनुष्यक प्रति के प्रति राधा की प्रभता तथा रूपगुण में सर्वोत्तम नागर कृष्ण के प्रति अनुरक्ति अत्यंत स्वामाधिक रूप से सूचित हुई है। अनगिनत बंभसा वैष्णवपशावली में कृष्ण-प्रणयिनी के रूप में राधा की अनुदा मापक्या और परोदा योपरमणी इन दोनों रूपों में बणित देखते हैं।

इस पर की मा प्रेम के मामले में प्रवाल प्रतिप्रतिनी के रूप में एक और परोदा योपरमणी अत्रावली दिखाई पड़ती है। अत्रावली अइसा के पुत्र गोवर्धन मस्त की स्त्री थी। गोवर्धन मस्त और धायान शोप बड़े अनिष्ठ मित्र थे। 'भित्त-माधव' नाटक में राधा और अत्रावली के बारे में बहुत ही जटिल किम्बरस्तिपों मिलती हैं। यहाँ उनमें प्रवेश करने की आवश्यकता नहीं। योगेशचन्द्र राय के मतानुसार अत्र ही अत्रावली है और मूर्ध-किम्बरस्ती कृष्ण से निमत के मामले में राधाकी

(१) किम्बरमाधव नाटक।

(२) श्रीकृष्णकीर्तन में राधा और अत्रावली की एक ही स्वरूप बणित किया गया है।

नक्षत्र की प्रतिइन्द्रिणी है। वैष्णव कविता के मान-कवितादि के पदों में चन्द्रावली ही राविका के प्रेम की मुख्य प्रतिइन्द्रिणी के तौर पर दिखाई पड़ी है। हमारे 'उज्ज्वल-नीलमणि' के कृष्ण-वस्तुमा' प्रकरण में राधा और चन्द्रावली को कृष्ण की मित्यप्रिया के रूप में वर्णित देखा है। लेकिन इन दोनों मित्यप्रियाओं में उत्कृष्ट राधा की श्रेष्ठता ही सर्वत्र वर्णित हुई है। दोनों में मौलिक अन्तर यह है—राविका के प्रेम में ध्यात्म-सुख की इच्छा का लक्ष्यमान नहीं है, सब कुछ ही कृष्णसुखैक-वात्पर्य है। लेकिन चन्द्रावली की कृष्णप्रीति में ध्यात्मप्रीति-कामना की गम भी। स्वागसम्भवाण के द्वारा राविका की सेवा केवल कृष्णसुख उत्पन्न करने के निमित्त भी। लेकिन चन्द्रावली के स्वागसम्भवाण के द्वारा मुक्त उत्पन्न करने की चेष्टा में कुर मुसी होने की कामना भी वर्तमान भी। इसलिए हम देखते हैं कि परवर्ती काम में राधातत्त्व और चन्द्रावली-तत्त्व वैष्णवों के सामने दो भिन्न तत्त्वों के रूप में दिखाई पड़े थे।

राधा-चन्द्रावली की बात छोड़कर साधारण तौर से योग्यमनियों से कृष्ण के धर्मप्रेम के धींचित्य के सम्बन्ध में भागवत-पुराण में प्रथम और स्पष्ट प्रश्न दिखाई पड़ता है। रास-लीला के वर्णन में देखते हैं कि परोक्ष योगिनी बेटानी के कहने पर ही कृष्ण की संगिनी बनी थी। कृष्णचरित्र के प्रति असीम श्रद्धावान् धर्मनिष्ठ महापुत्र परीक्षित ने श्रीधुक्सेब से इस विषय में एक प्रश्न किया था—“धर्म के संस्थापन और धर्म के प्रसार के लिए भगवान् भगदीश्वर अपने शंख में धर्मतीर्थ हुए थे धर्मसिन्धु समूहों के बन्ता कर्ता और धर्मिणितता रही कृष्ण दूसरे की स्थियों के पाठ जाने जैसा प्रतिभूत साधारण क्यों किया था ?” तब तब परकीयाबाब एक तत्त्व के रूप में नहीं बन पाया था इतीनिष्ट धुक्सेब ने अत्यन्त स्पष्ट और सहज भाव से उत्तर दिया था। उन्होंने कहा था—“तैजस्वियों के लिए कोई भी शीघ्र होय की नहीं है, जैसे सर्वमुक्त धर्मि (जिसे कमी थी

(१) राधा-चन्द्रावली-मुख्या प्रीक्षा मित्यप्रिया पत्रे ।

कृष्णचरित्रसौख्यं—वदाम्यादिमुनाधयाः ॥

उज्ज्वलनीलमणि कृष्णवस्तुमा ३६

(२) संस्थापनाय धर्मस्य प्रथमायेतरस्य च ।

धर्मतीर्थो हि भगवान्प्रेम भगदीश्वर ॥

त कर्ष धर्मसिन्धुना बन्ता कर्तामिरजिता ।

प्रतीपमाचरन् बहून् पत्न्यापमिनांजम् ॥

पाप या मतिभ्रता स्पर्श नहीं करती है) । ईश्वरयज्ञों का बाधक ही सत्य है आचरण सदा सत्य नहीं होता जो-जा क्रियाएँ उनके 'स्वबोधोक्त' अर्थात् जो आचरण उनके बचन से संगत है बुद्धिमान् व्यक्ति केवल उसी का आचरण करें । 'मह तो हुआ लौकिक नीति का पक्ष । तत्त्व की दृष्टि से बेला जाय तो जिन मुनिमों का प्रसिद्ध कर्मबन्ध योगप्रभाव के द्वारा विपुल हुआ है वे मुनि भी जिनके पारंपर्यपरंपरायणित्वेवतुत्त होकर स्वेच्छा क अनुसार आचरण करके भी बन्धनग्रस्त नहीं होते हैं उस भगवान् के अपनी इच्छा से बहक दिए हुए वपु में बन्धन कहाँ ? नीतियों का उनके पतियों का सभी प्रकार के बेहभागियों का जो अन्तराचरण करते हैं वह अशुभ (बुद्ध्यादिमाषी भयवान्) श्रेय के लिए ही मत्पदेह धारण करते हैं । अर्थात् तत्त्वतः या सभी प्राणियों की बेह धीर अन्तर में विद्यमान रहकर निरन्तर 'रमण' कर रहे हैं उनके लिए परदार नाम की कोई चीज नहीं है अतएव परदारानिमर्शन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है ।

बुद्धान के बोधामियों के आधिपत्य के पहले ही प्रधान गोपिनी के रूप में उभा वैष्णव-साहित्य में मुद्रितिच्छित हो चुकी थी । उभा-बुद्धानती तथा दूसरी गोपियों का अद्वैतमन करके प्रेम के विभिन्न प्रकार के नेत्र बिसाते हुए स्वबोधोक्तों ने कृष्ण-वस्तुमाषी को स्वकीया-मरकीया में बाँटा है आचार्य और से उभिमभी आदि मद्रिपिया स्वकीया धीर उभादि गोपिया परकीया मानी गई । लेकिन स्वगोम्बामी के नाटक तथा दूसरी उभामाषी पर विचार करने से जगता है कि उन्होंने भी तत्त्वतः परकीया-बाध को स्वीकार नहीं किया है । उनके अन्त-माधव नाटक के पूर्वमनोरथ नामक दसवें अंक में हम देखते हैं कि इच्छा के लक्ष-बुद्धान में सञ्जाति

(१) तेजोयसा न बोधाय बद्धोः सर्वमुजो यथा ॥

× × × ×

ईश्वरयज्ञो यथाः सत्यं तर्कवाचरितं स्वचित् ।

तेजां यत् स्वबोधोक्तं बुद्धिमास्तत् समाचरत् ॥

वही १ १३१।२८,३१

(२) यत्पारंपर्यपरंपरायणित्वेवतुत्ता

धौयप्रभाद्विकृतासितकर्मबन्धा ।

स्वीरं चरन्ति मुनयोऽपि न महामाना-

स्तास्यकृष्णयात्तत्पुणं कुत एव बन्धा ॥

गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् ।

योऽन्तराचरति सोऽप्यज्ञः श्रीकृष्णतद् देहिनाम् ॥

वही १ १३१।३४ ३५

राजा की कन्या सत्यमामा-वपिनी राधिका से कृष्ण का विचित्र ब्याह हुआ है। इस ब्याह में सतीभेष्ठा धरुवती सोणामुत्रा शचीदेवी के साथ इन्द्रादि देवपण ब्रह्मवत के नन्द-मण्डोबा धीरामादि सत्तायव भयवती पौरुषमाती आदि और इतरका के बसुदेव-देवकी आदि सभी उपस्थित थी। 'विदग्ध-मात्र' नाटक में भी देखते हैं कि अमिमन्सुगोप या धायान गोप से राधिका के ब्याह के प्रसंग न कहा गया है कि अमिमन्सुगोप से राधिका का ब्याह सच्चा ब्याह नहीं है अमिमन्सुगोप के ज्ञान के लिए ही स्वयं योगमाया ने उनके ब्याह को सच्चा ब्याह का विश्वास कर दिया था। वास्तव में एवादि सभी धीहृष्य की नित्य-श्रेयसी हैं। तो हम देखते हैं कि उपगोस्वामी के मतानुसार धीहृष्य का नित्य-श्रेयसीत्व ही एवादि गोपियों का स्वल्प-परिचय है बाहर उनका धनुषा कन्यापन या बुरी गोपियों का स्त्रीत्व योगमाया द्वारा घटित कराना एक प्रातिमायिक उद्यम मात्र है। इस प्रसंग में स्मरण किया जा सकता है कि भागवत के उस वर्णन में भी कहा गया है कि गोपियों जब राध-भुज में धीहृष्य के साथ उचलीमा में ठहरीन थी तब भी योगमाया के प्रभाव से गोपियों का माया-विग्रह उनके अपने अपने पतिवों की बगल में ही था।'

'कृष्ण-वस्त्रमा प्रकरण' में स्वगोस्वामी ने परकीया के विषय में जो विवेचन किया है उसे देखने से पता चलता है कि गोपियों के परकीया प्रेम के प्रसंग से उन्होंने मामा प्रकरण से कभी काटने या उसे हटाने करने की कोशिश की है। मायक-प्रकरण में स्वगोस्वामी ने धीहृष्य के धीपत्य के विवेचन के प्रसंग में इस धीपत्य पर ही श्रुंवार का प्रेमोत्कर्ष प्रतिष्ठित है इसे स्वीकार किया है और इसी प्रसंग में भय मुनि के मत का उल्लेख करके लिखा है कि इस प्रसंग का मुक्ता में ही न्यय की परमा रति है। लेकिन इसी प्रसंग में उन्होंने यह भी कहा है—

मधुत्वमत्र यत् प्रोक्तं तत्तु प्राकृतमप्यके ।

न कृष्णे रत्ननिर्घातस्वाशयमवतारिणि ॥

पर्यत् प्रम के इस उपस्थित के विषय में मधुत्व की जो बात कही गई वह प्राकृत मायक के लिए मागू होनी है उस के निर्घात के आस्वादन के लिए जो कृष्णावतार है उमक लिए इसकी कोई बात मागू नहीं होनी है। स्वगोस्वामी का यह कथन भागवत के स्वर से ही मम जात्रा है।

(१) तत्पूर्ववर्णनार्थमेव स्वयं धीपमायया मिच्छैव प्रत्यापिंत् तद्बिधा-
नामुत्प्रादिकम् । नित्य-प्रदाय एव तन्नु ता- कृष्णस्य । (प्रथम अंक)

(२) १ । ३३ । ३७

रमगास्वामी का अनुसरण करके जीबगोस्वामी ने इस स्वकीया-परकीया के बारे में बहुत विचार किया है। 'उज्ज्वलनीमगणि' की 'लोचन-रोचनी' टीका में जीबगोस्वामी ने उपर्युक्त श्लोक का प्रवक्षन्वन करके विस्तृत प्रामोचना की है। दूसरी जगह प्रासंगिक शब्द से जीबगोस्वामी ने अपने मत व्यक्त किया है। उनके इन मतों पर विचार करने से दिखाई पड़ता है कि जीबगोस्वामी तत्काल परकीयावाद का समर्थन नहीं करते थे। उनके मतानुसार परमस्वकीया में ही राधा-श्रेय का चरमोत्कर्ष है। स्वस्म में—अर्थात् अग्रकृत ब्रजलीला में राधा-कृष्ण की परमस्वकीया है, वहाँ कृष्ण के सपत्तित्व का श्रेष्ठमात्र भी नहीं है। इसीलिए जीबगोस्वामी ने अपने गोपासकधर्म नामक एक-एक काव्य के उत्तरधर्म में राधा-कृष्ण का ब्याह करवाया है। परकीया-वाद के बारे में रमगास्वामी की विल प्रवृत्ता ध्येयना से समझ में आने पर भी इस विषय में उनका मत स्पष्ट नहीं है। लेकिन जीबगोस्वामी ने इस विषय में अपने मत स्पष्ट व्यक्त किया है। उनके मतानुसार गोपासकीया में स्वकीया ही परम सत्य है परकीया मायिक मात्र है। कृष्ण की योगमाया प्रकट-बृत्वावगतीला में इस परकीया मात्र का विस्तार करती है। प्रकट-लीला में रसनिर्वास-वास्वावन की परिपाटी के लिए ही आत्मात्मग मुक्त्य अपने माया के द्वारा ही एक परकीयापन का भाव करके परम वैश्विभ्य उत्पन्न करता है। प्रकट-लीला के श्रेष्ठ में राधा और दूसरी पोषिनी ब्यवहारिक जीवन में अपने पति प्रारि को प्रस्वीकार नहीं कर सकी। लेकिन कृष्ण से जब कभी उनकी भेंट होती तब कृष्ण को वे प्राणवस्तुम जानते हुए भी योगमाया के प्रभाव से उनका स्वस्म-ज्ञान और कृष्ण से उनके स्वहृदय-सम्बन्ध का ज्ञान भावृत रहता। इसी के फलस्वरूप एक परकीया अभिमान होता था। प्रकट हो सकता है कि निवारणादि उपाधि के द्वारा ही परकीया रति में प्रेम की विशेषता सिद्ध होती है। अग्रकृत ब्रज मं धर राधा का स्वकीया-पन ही परम सत्य है तो वहाँ प्रेम का इस तरह का उत्पत्त और उत्कर्ष किस प्रकार साधित हो सकता है? इसके उत्तर में जीबगोस्वामी का यह कहना है कि अग्रकृत ब्रजनाम में राधा का इस प्रकार का प्रेमोत्कर्ष नित्य और विलक्षण स्वामाधिक है। मादनात्म्य महावाक्य-परकाष्ठा के अन्दर इस प्रकार का रामोत्कर्ष स्वामाधिक रूप से ही वर्तमान है। जो स्वामाधिक है उसकी महिमा किसी भी अंश में कम नहीं है। एक मतवाला हाथी जब सभी तरह की बाधाओं-विघ्नों को पारकर घागे बढ़ता है उस समय उसकी असीम सक्रियता प्रकट होती है। लेकिन इस बात को कोई नहीं कहेगा कि जब वह चुपचाप रहता है तब उसमें

शक्तिमत्ता नहीं रहती है। उसी तरह प्रकटनीता में अपने प्रेम के पथ के सारे बाधा-विघ्नो का शक्तिप्रमथ कर राधा न जिस रामोत्कर्ष का परिचय दिया है अप्रकट ब्रजधाम में परम स्वकीयावस्था में उनके उस रामोत्कर्ष में किसी प्रकार की कमी दिखाई पड़ी है ऐसा सोचने के लिए कोई कारण नहीं है।”

लेकिन हम देखते हैं कि जीवगोस्वामी के परवर्ती नाम में परकीयाबाद परमशुद्ध के रूप में ही स्वीकृत हुआ है। परवर्ती नाम के लक्षकों में जीव गोस्वामी को भी परकीयाव ही सिद्ध करने की चेष्टा की है। हमारे 'चैतन्य-चरितामृत'-कार इन्मदास कविराज के परकीया-शुद्ध समझ का बात मिली है। परवर्ती नाम के पंडित चिरन्तनाच ने भी अपनी शार्ङ्गिक दृष्टि से इस परकीया मत को प्रकट और अप्रकट ज्ञान भीमाघो में ही

(१) उज्ज्वलनीलमणि के नायक-प्रकरण के उपर्युक्त श्लोक की टीका में जीवगोस्वामी ने परकीयाबाद के विषय को विवेचन किया है उसके अन्त में एक संघम-उद्धेकारी श्लोक छोड़ गए हैं। उपसंहार में एक श्लोक है—

स्वेच्छया लिखितं किञ्चित् किञ्चिदत्र परेच्छया ।

यत् पूर्वानरसम्बन्धं तत् पूर्वमपरं परम् ॥

इस श्लोक की प्रामाणिकता के बारे में किसी किसी विद्वान् न सही प्रकट किया है। इस विषय में और परकीया-बाद के सम्बन्ध में जीवगोस्वामी के मत की विस्तृत आलोचना के लिए श्री राजा-गोविन्द नाथ लिखित चैतन्यचरितामृत की नूतिका देखिए।

(२) किन्तु कविराज गोस्वामी ने भी चरितामृत को आदि लीला में (चतुर्थ परिच्छद में) श्रीहृष्य की प्रकट-लीला में अक्षरार के सम्बन्ध में कहा है—

बंभुछाये नाहि ये लीलार प्रचार ।

ते ते लीला करिब घाले मोर कमल्लार ॥

मो विषये गोपीगजेर उपपत्ति भावे ।

योगमाया करिबेन आपन प्रभावे ॥

लेकिन यहाँ लगता है कि, योगमाया के प्रभाव से शोषियों की उपपत्ति भाव लेकर जो लीला है वह प्रकट-लीला की ही विधायता है बंभुछादि में इस प्रकार के उपपत्ति भाव की लीला नहीं है और इसीलिए बंभुछादि की लीला से इच्छाबतार के तौर पर अक्षरार-लीला में ही लीला की अधिकतर रत्नपुष्टि हुई है।

एक समान प्रमाणित करण की श्रेष्ठ की है। महुतम्बन वास क नाम से प्रचलित 'कर्मानन्द' ग्रंथ में इस परकीया-वाद की स्थापना जीवगोस्वामी का प्रथम उद्देश्य है यह सिद्ध करने की श्रेष्ठ की गई है। परकीया कास म स्वकीया-परकीयावाद के सम्बन्ध में विचर्क-समा हुई थी और उद्योग मुक्तिचर्क के द्वारा परकीया-वाद की ही प्रचलता स्थापित हुई थी ऐसे कस तर्क्यों का पता चलता है इन तर्क्यों की प्रामाणिकता सद्योचित नहीं है।

कस मिलाकर हम बसते हैं कि परकीया कास म गोस्वामियों के परकीया वाद में धीरे-धीरे प्रचलता प्राप्त की। तत्त्वकी दृष्टि के अलावा ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करण स इस परकीया-वाद की प्रतिष्ठि के बारे म हो प्रधान कारण मामूम होते हैं। पहला कारण है ब्यास का वैष्णव-धर्म और साहित्य मुख्यतः रामा-कृष्ण की प्रमतीता का प्रवसम्बन करक रस समुद्ध है। जयदेव के बाद चंडीदास-विद्यापति और उनके बाद के प्रचलित वैष्णव कवियों ने रामा-कृष्ण-भोग की मुरम प्रसंग्य विचित्रताओं के साथ रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इन सभी काव्य-कविताओं के मीठरसे रामा का परकीया-पन साहित्य में इस तरह प्रतिष्ठि हो गया था कि तत्त्व की दृष्टि से उसे प्रस्वीकार करने या केवल म्यास्या से डक रखने की मुरत नहीं थी। परकीया को केवल मायिक मान लने से तो रामा-कृष्ण की प्रकट लीला (जो मुख्यतः वैष्णव-साहित्य का उपजीव्य है) प्राणहीन हो जाती। वैष्णव कविता द्वारा अंकित प्रमथपी राबिका की मूर्ति को सजीव करने के लिए इस परकीयावाद के परमार्थत्व को भी स्वीकार करने की आवश्यकता थी। रामा-कृष्ण की समुद्धमीला को कमरा प्रतिष्ठि के साथ-साथ परकीयावाद भी प्रमथ प्रतिष्ठि होना है।

जगता है कि रामा का प्रवसम्बन करके इस परकीया-वाद की प्रतिष्ठि के पीछे तत्कालीन एक विशेष प्रकार की धर्म-साधना का प्रभाव भी था। यह है नर-नारी के युगल-रूप की साधना। हिन्दुतंत्र बौद्धतंत्र बौद्ध-सहजिया आदि के प्रसार से नर-नारी की युगल-साधना की यह भाग प्रवाहित थी। वैष्णव-सहजिया में आकर इस भाग ने एक विशेष रूप ग्रहण किया था। सर्वत्र एक धारोप-साधना की व्यवस्था थी इसके बारे में हम ध्यान निर्ये। इस धारोप-साधना में नारी-ग्रहण की जो पद्धति है वही परकीया की ही प्रचलता दिखाई पड़ती है विशेष करके वैष्णव-सहजिया मठों की साधना में। सहजिया साधना में परकीया की इस प्रचलता ने परकीया कास में वैष्णव-धर्म की रामा के परकीया-पन में विश्वास को और भी बृद्ध किया था ऐसा प्रतीत होता है।

तत्त्व की दृष्टि से राधा के बारे में और एक बात पर विचार करके हम इस प्रसंग का उपसंहार करेंगे। हमने देखा है कि परमतत्त्व की यह रसस्वरूपता ही उसकी प्रेम-स्वरूपता है। इस प्रेम में कृष्ण विषय और राधा प्रायय है। हम कह सकते हैं कि भगवान् की प्रेमरूपा ज्ञानिनी-शक्ति का राधिका ही पूर्वतम धामार है। यह परमप्रेमात्म्य इस राधिका के अन्दर से अमृतजीवों में भक्तिरस के रूप में फैल जाता है। उस दृष्टि से राधिका ही भगवान् की भक्त श्रेष्ठ है। लेकिन यहाँ एक बात को साफ कर लेना चाहिए। राधिका के कृष्ण की श्रेष्ठमत्त होने पर भी और राधिका के अन्दर से ज्ञानिनी शक्ति भक्तिरस के रूप में प्रवाहित होने पर भी राधिका-स्वरूपता प्राप्ति या राधा के भाव से कृष्ण की सेवा जीव के लिए कभी समझ नहीं है। हम इसीलिए जीव के सखी-भाव की साधना की बात सुनते हैं। लेकिन इस सखी भाव की साधना के अन्दर भी दो प्रकार की साधना के भेद को साफ-साफ समझ लेना होगा एक है रागात्मिका स्वार्थमयी सेवा और दूसरी है उदात्ता धानुगत्यमयी सेवा। नित्य-सुखधाम में सुखम धारि या नन्द-सखी धारि या राधिका धारि कृष्ण के जो नित्य परिकर है केवल उन्हीं को रागात्मिका सेवा करने का अधिकार है। यहाँ उन उनका नित्य-आत्मधर्म है इस आत्मधर्म के रूप में राग में प्रतिष्ठित रहकर जो नित्य सेवा है वही रागात्मिका सेवा है। जीव इन वज-परिकरधर्मों का धानुगत्य स्वीकार करके उनके राग के धनुष के तीर पर ही कृष्ण की सेवा कर सकता है। सुखम धारि वजसुधाधर्मों का कृष्ण के प्रति जो सखाभाव से प्रीति भा राग है यह उनका नित्यसिद्ध आत्मधर्म है अतएव सुखम धारि का सखाभाव से कृष्ण की सेवा रागात्मिका सेवा है भक्तों के लिए सुखम धारि की सख्यप्रीति परमावर्ण परमसाध्य वस्तु है इस साध्य के लिए साधन होगा रागानुभवात्मक धनुष-सेवा का धारण भवध-स्मरण धार के द्वारा धनुष राग से सखि उद्बोधित करके नीला का धास्वादन करना। जीवगोस्वामी ने अपने भक्ति-संघर्ष में कहा है, यह रागात्मिका भक्ति साध्यरूपा भक्ति-समस्त राग-धाम में तरंग-स्वरूपा है इसका साध्यत्व ही है साधन-भरण में इतना प्रवेष्ट नहीं है। रागानुभा में साध्य-भक्त के चित्त में पूर्वोक्त राग-विषय से सखि ही उत्पन्न होती है स्वयं राग-विषय उत्पन्न नहीं होता। यहाँ राग-सुपाकर के किरणभास के द्वारा भक्त-हृदयरूप स्फटिकमणि माने धनुषसिद्ध हो उठती है उस चित्तसमुत्थाम रूप सखि के द्वारा प्रबोधित होकर जो भजन होता है वही रागानुभवात्मक है। जीव के लिए

यही संभव है।' स्वर्गोत्थामी न भयन 'भक्तिरसामृतसिन्धु' के पूर्व भाग की साधनभक्तिमहती में रागात्मिका भक्ति के सम्बन्ध में कहा है 'इष्ट में स्वाभाविकी परमाविष्टता ही राग है, तन्मयी भर्षाद् बहु रागमयी जो भक्ति है वही रागात्मिका भक्ति है। धीर वज्रवाधियों में अभिष्यक्त रूप में बिराजमान जो रागात्मिका भक्ति है उसकी अनुसूता भक्ति ही रागानुगा नाम से विख्यात है। रागाप्रेम ही पूर्ण मधुर रस का रागात्मक प्रेम है, वह एक रागा के सिवा धीर कही भी संभव नहीं है। इस रागा की काय-भूह-स्वरूप है सलियाँ मञ्जरीमन उन सलियों की अनुमता सेवा-दासी है श्रीराममञ्जरी घादि ये मञ्जरीमन भी मोलोक की त्रितयपरिकर है अनुय-भाव से उनकी सेवा धीर सीमा-धात्वादन ही जीव का श्रेष्ठ काम्य है। रागानुगा भाव से भगवान् श्रीकृष्ण की 'अष्टकालीन' सीमा का स्मरण ही वैष्णव-शावकों का प्रधान साधन है। कृष्ण ही अष्टकालीन सीमा का आशय पुरुषादि में मिलता है रूपरोत्थामी कई श्लोकों में संक्षेप में अष्टकालीन सीमा का उल्लेख कर गए हैं। कविकर्णपुर की श्रीकृष्णाङ्गिकक्रीमुदी' कृष्णदास कविराज के श्रीविन्दसीमामृत काम्य धीर विस्वनाथ चक्रवर्ती के श्रीकृष्ण-भावनामठ' में अष्टकालीन सीमा का सुमधुर विस्तार दिखाई पड़ता है। सिद्धकृष्णदास बाबाजी के 'भावना सार-संग्रह' में इस अष्टकालीन सीमा के बारे में बारबार धीर श्रीविन्दस्त करीब तीन हजार श्लोक उद्धृत हैं। वैष्णव कवियों ने अपनी-अपनी बंगला परबावती में रागाकृष्ण की इस अष्टकालीन सीमा का मधुर रूप दिया है। 'निसान्दलीमा' से यह अष्टकालीन सीमा शुरू होती है इसके बाद 'प्राण-लीला' 'मध्याह्नसीमा' 'अपराह्न-सीमा' 'सायंसीमा' 'प्रबोध-सीमा' धीर अंत में 'नेत्रलीला' होती है। विविध भवस्वान के अन्दर से श्रीराधिका को ही हम इस कृष्णसीमा का प्रधान अवलम्ब देखते हैं। दूसरे वज्रपरिकर यक्ष ने प्रथम या परोक्ष में इसी सीमा का ही रसपरिपोषण किया है।

(१) तस्यायम् साध्यायां राग-मञ्जरीयां भक्ति-योग्यां तरङ्ग-रूपम्बद्धं साम्पत्त्वमेवेति न तु साधनप्रकरणेऽस्मिन् प्रवेशः । अतो रागानुगा कथ्यते । अस्य पूर्वोक्ते रागविशेषे वज्रिरेव ज्ञातास्ति न तु राग-विशेषे एव स्वयं, तस्य तानुसूतापनुवाकरकरानासप्तभुक्तसितसुवय-स्फटिकमन्त्रैः आत्मवशिभुतासु तावन्मा रागात्मिकाया भक्ते वरिप्राप्तीत्यपि वशिर्वा यते । ततस्तदीयं रागं वक्ष्यामिष्यति ता रागानुगा तस्यैव प्रकीर्ते ॥३१॥

(२) इष्टे स्वात्सीकी राग परमाविष्टता भवेत् ।
तन्मयी या भवेद्भक्तिः सात्र रागात्मिकोचिता ॥
विराजन्तीमनिष्कन्तं वज्रवाधिवनाधिपु ।
रागात्मिकामनुसूता या सा रागानुगोच्यते ॥

एकादश अध्याय

चतुर्थ्य चरितामृत में व्याख्यात गौरतत्त्व और राधातत्त्व

बृष्णदास कवियज्ञ के चैतन्य-चरितामृत ग्रन्थ की उत्पत्त्यालोचना की दृष्टि से बृन्दावन के गोस्वामियों के ग्रंथों में ध्यातोषित तत्त्व-समूह का कविश्रममय सार-संक्षेपन कहा जा सकता है। कवियज्ञ गोस्वामी न अपने ग्रन्थ में रूप-सजावन द्वारा विवेचित तत्त्व-समूह महाप्रभु चैतन्यदेव के उपदेश के अनुसार ही इस तरह प्रकाशित किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस विषय में मतभेद हो सकता है। लेकिन एक बात चीज को देखना होगा। वह यह है कि चैतन्य के प्राकिर्णिक के बाहर से भीतबा और भीचैतन्य भक्त-नवियों का उत्पत्त्यालोचना में और काम्य-रसायन में बहुतेरे स्वर्णों पर मिलजुलकर एक हो गए हैं। संक्षेप से के बाहर चैतन्य ने जब अपने गौरी ग्रंथ पर अरुण-वर्ण का बहुत बाराप किया तभी स के तत्त्व-मन से मानो राधा हो गए हैं। परवर्ती काल में प्रेमोन्माद रसा में उन्नी माटी केट्टाई और आचरण प्रमोन्मादिनी राधा की ही बात याद विना सेते हैं कम से कम गौड़ीय वैष्णव-गण के वर्तन में चैतन्य की हूँ इसी रूप और इसी भाव में पा रहे हैं। 'धामार गौर भाबर राधासर्णी'—यह सभी गौड़ीय भक्तों और कवियों का घटत विरवाग है। चैतन्य-चरितामृत में बृष्णदास कवियज्ञ ने कहा है—

राजिकार भावमूर्ति प्रभुर धन्तर ।
 तैइ भावे सुखहु-अ उठे निरन्तर ॥
 दोयनीलाय प्रभुर बिछु उम्पाह ।
 अममय केट्टा राधा प्रतापमय बाह ॥
 राजिकार भाव रीछे उठव बर्गने ।
 तैइ भावे मत्त प्रभु रहे रात्रि विने ॥
 रात्रे विनाय करे स्वहमेर कंठ धरि ।
 धावेये धायन भाव कहेन उपाधि ॥

—चैतन्य-चरितामृत (प्राकि चतुर्थे)

इस प्रकार से चैतन्य के परवर्ती रंगना-साहित्य में भीतबा का रूप विकसित हुआ। एक घोर चैतन्य विन तरह अपने सारे प्रम-बिछु

की चेष्टा को लेकर वीराभा क प्रमुख चिह्नित होने लगे उही तरह दूसरी ओर वीराभा भी वैतम्य के भावरूप में प्रकृत होन लगी । वैतम्य-चरितामृत में प्रभावेष में बिरहल महाप्रभु के वर्णन में देखते हैं—

प्राधान्य जाहया पड़ि भूम बड़ि आय ।
मुबर्न पर्वत येन भूमिती लोटाय ॥

बडीबास के नाम से प्रचलित एक पद में (इस पद के वैतम्य के पर वर्ती युग में रचित होने की संभावना है) राधा के वर्णन में हम देखते हैं—

प्रकपन बेयाधि ए कशा नाहि आय ।
बे करे कानुर नाम बरे तार पाय ॥
पाये घरि पड़े से बिरहुर पड़ि आय ।
सोनार पुतलि बेंग भूमाय मुदाय ॥

यहाँ कौन किससे प्रभावित हुआ है यह बहुत में न पढ़ने पर भी यह साफ समझ में आ जाता है कि यहाँ राधा और गौरांग एक ही पद हैं । इन्म के बिरह में उँबनी से भूमि पर निरन्तर सकीर सीञ्ठी हुई राधा को हम देखते हैं—

अपबन हेरि मूरखि पड़ भूतने चिन्तित लकीगय संय ।
पद-मंगुलि बेइ सिति पर लेबाइ पाणि कपल-अबलम्ब ॥

उसी तरह वैतम्य को हम देखते हैं—

भावाबेहो कमु प्रनु भूमिने बसिया ।
तर्जनीते भूमि लेले प्रथोमुख हैया ॥ (पद्य १३३)

कवि विद्यापति के नाम से राधा-बिरह का एक पद मिलता है—

भावब कत परबीनब राधा ।
हा हरि हा हरि कहुतहि बरि बेरि
अब बिड करब समाया ॥
घरनि बरमि ननि पतनहि बैठत
पुनहि उठइ नहि पाया ।
सहुतहि बिरहिनि अब माहा तापिनि
बैरि मरन-घर-बाया ।
अबब-नयन-सोरे तीतस कलेबर
विमुनित बीधल कैशा ।
नभिर बाहिर करइते संय
सहुबरि पफ्तहि घेया ॥

पद को पढ़ने से मन में जो चित्र उदयासित हो उठता है उससे इस पद को वैतम्य के परवर्ती भाव के बंगला के मिन्नी वैतम्य प्रभावित विद्या-पति की रचना मानने की इच्छा होती है। जामदास के एक प्रसिद्ध प्रति शार के पद में देखते हैं—

सत्येशे सजीर अंगे भंग हुआइया ।
 पद-भाष जसे धार पड़े मुरझिया ॥
 रराव जयक बीषा मुमित करिया ।
 पुन्वावने प्रवेधित जय जय दिया ॥

रराव जयक बीषा बजाते हुए जय-जयकार करते जो इस बुन्वावन में भसा वह वैतम्य महाप्रभु का ही कीर्तनरस या धीर भावावेश से सबी के (सभार धादि क?) घंग के सहार जो घाषा पग चलते धीर फिर मूर्च्छित हो जाते वे भी स्वयं वैतम्य हैं इस बात को समझने में अठिनाई नहीं होती।

वास्तव में महाप्रभु श्रीवैतम्य का सारा जीवन इस अप्राकृत राधा-प्रेम की भाव-व्याख्या है। साधारण लोगों के लिए अप्राकृत राधाप्रेम एक अपूर्त उत्पन्न-भावना मात्र है। ये सारी उत्पन्न-भावनाएँ महाप्रभु के जीवन में विपरीत हुए हुई थी इमीलिए साधारण जीव के लिए महाप्रभु के प्रेम के द्वारा राधा-प्रेम को समझ लेना ही सही रास्ता है। वैतम्य के परवर्ती कवियों ने महाप्रभु के राधामात्र से संभावित प्रेम-मूर्ति को लेकर ठीक राधा के प्रथम भाव के उदाहरण के रूप में वर्णन करते हुए बहुरंगे पद लिखे हैं। ये पद सब कीर्तन के प्रारंभ में 'गौरवत्रिका' (मुमिका) के रूप में पए जाते हैं। महाप्रभु का यह प्रेम मालो राधा-प्रेम के बूझ रहस्य में प्रवेश करने की कुंजी है। नागुरेव पोष (नरहरि सरकार?) ने इस उत्पन्न का बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया है—

(१) वैतम्य के परवर्ती पुन के वैष्णव कवि कैवल धीरराव के वर्णन में ही महाप्रभु की विरह-वेधादि के चित्र के द्वारा प्रभावित हुए वे ऐसी बात नहीं, जगह जगह विरहकण्ठर कीकृत्य भी महाप्रभु के धारक के अनुसार ही वर्णित करते हैं। पौषिण्यदास के एक प्रसिद्ध पद हैं—

'रा' कहि 'या' पलुं क्यूड न पाएइ बारा बरि बड़े लोर ।
 लोइ पुस्वजमि लोहाय परनि पुन का कह धारति घोर ॥

कीकृत्य के पूर्वराग का यह वर्णन महाप्रभु के विरह-वर्णन से एकास्वर हो गया है।

यदि गौरांग ना हंत कि मैने हइत केमत धरिताम रे ।
रापार भहिमा प्रेमरस-सीमा जाते जानात के ॥

मधुर-बुधाविपिन-माधुरी-प्रबोध-बाधुरी-सार ।
बरज-मुक्ती-भाखेर सकति प्रकति हइत कार ॥

गुदाधम के विपिन में जिस लीला-माधुर्य का विस्तार हुआ है उसमें 'प्रबोध-बाधुरी-सार' है गौरांग-प्रेम । इसीलिए राजा-प्रेम कीर्तन करने के पहले भक्त के चित्त में सूझ उत्पन्नवाना बचाने के लिए इस गौराचरित्रका का कीर्तन कर लेना पड़ता है ।

गौराचरित्रका में श्रीगौरांग के बारे में जो पद्य हैं वे केवल राजा के लिए ही प्रयुक्त नहीं होते कहीं कदाचित्त से कृष्ण के लिए भी प्रयुक्त होते हैं । बामुदेव शेष के प्रसिद्ध पद में कहा गया है—

गौरा-रूप सागिअ नयने ।
किबा निशि किबा विप्रि शयने स्वपने ॥
जे बिके छिराइ घाँछि सेइ बिके बेचि ।
पिछलितै करि ताब ना पिछने घाँछि ॥
कि जेन बैचिताम गौरा कि ना धोर हइत ।
निरवधि गौरारूप नयने सागिअ ॥
चित निबारिते चाहि नहे निबारण ॥
बामुधोये कहे गौरा रमणीमोहन ॥

यही है 'नरीया-नाकर' गौरांग कृष्ण से 'गुदाधम-नाकर' के ही 'नरीया-नाकर' के रूप में छिर घबडीर्ण हुए । कीर्त्तिय भक्तों का विश्वास है कि गौरांग स्वरूप में पूर्ण भयवान् कृष्ण के ही अवतार हैं, कृष्ण के रूप में ही उन्होंने राविका की शुभ्र मातृ-कान्ति या बेहू-कान्ति पाई थी । इसीलिए वे 'घंट-कृष्ण' और 'बहिर्गौर' हैं ।

कृष्णवर्ण त्विवाकृष्ण लोकोपावास्तव-वाचकम् ।
वक्तः संकीर्तन-प्रायर्मनन्ति हि सुनैवता ॥'

भाष्यरत के इस श्लोक के आधार पर ही गौड़ीय-वैष्णवों ने गौरांग के घण्ट-कृष्णत्व (कृष्णवर्ण) और बहिर्गौरत्व (त्विवा प्रकृष्ण) सिद्ध करने का प्रयत्न किया है । इसी भाव के आधार पर ही स्वस्वगोस्वामी ने अपने कठुचा में लिखा है—

राधाकृष्णप्रणयविकृतिह्लादिनीप्रकृतिरस्मा-
 देकस्मत्प्रणयविकृति भुवि पुरा देहमेव यती तौ ।
 चैतन्यास्यं प्रकटमधुना तद्द्वयं चैतन्यास्यं
 राधाभाव्युत्तिमुत्तिस्तौ नौमि कृष्ण-स्वरूपम् ॥

“राधा कृष्ण की ही प्रणय-विकृति ह्लादिनी प्रकृति है इसीलिए (दोनों) एकत्व होते हुए भी देहमेव को प्राप्त हुए थे । जब फिर उन दोनों ने ऐक्य नाम किया है । राधाभाव्युत्ति-मुत्तिमित चैतन्यास्य उक्त कृष्णस्वरूप को मैं प्रणय करता हूँ ।” राय रामानन्द से राधा-कृष्ण-तत्त्व पर विस्तारपूर्वक बहस के बाद अब रामानन्द ने महाप्रभु का स्वरूप-दर्शन करने की इच्छा प्रकट की तो—

तत्रे हासि तारे प्रभु वैजात स्वरूप ।

रसरत्न महाभाव दुइ एकस्य ॥ (मध्य अष्टम)

पूर्व मगवान् श्रीकृष्ण के इस चैतन्य-भवतार में एक ही धारा राधा-कृष्ण के मन्त्ररूप में आभिर्भाव का क्या तात्पर्य है ? इस तात्पर्य के धर पर ही चैतन्य भवतार के सारे गूढ़ रहस्य छिपे हैं । इस विषय में स्वरूप रामोदर के एक कदम्बा के केवल एक श्लोक में सारा तत्त्व बड़ी सूबी से स्पष्ट हो गया है ।

श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशो बानर्धवा-
 स्वाद्यो येनाद्भुतमधुरिमा कीदृशो वा मदीयाः ।
 सीक्यञ्चास्या भवतुमद्यतः कीदृशं वेत्ति मोमा-
 तद्भावात्तथाः सनजनि अचीर्षमसिन्धी हरीशुः ॥

जित प्रेम के द्वारा राधा मेरी अद्भुत मधुरिमा का आस्वादन करती हैं श्रीराधा की वह प्रणयमहिमा कैसी है और राधाप्रेम द्वारा आस्वाद्य जो मेरी मधुरिमा है वह कैसी है मेरा अनुभव करके राधा को जो सुख होता है वह कैसा है—इसी के मोम से राधामात्र मुक्त होकर अची के गर्भ की सिन्धु में हरि (वीरम) रूप इन्दु (अन्न) ने जन्म लिया है ।

(१) मुक्तता कीलिए योगिभ्रातृ के घर—

जय निज कान्ता-कान्ति-कलेवर जय जय प्रेयसी-भाक्-विनोद ।
 जय जय-सहचरी लोचन-मंगल जय मदीया-बन्धु-जयन-धामी ॥

(२) मुक्तनीय—अपारं कस्यापि प्रपयिजनवृत्तस्य कुतुहो
 रतस्तोमं हृत्वा मधुर-मुपनोक्तुं क्वपि यः ।
 एवं स्वामावरे सुतिमिह लवीमां प्रकटयन्
 स देवचैतन्याहृतिरहितरां नः कृपयतु ॥

गौड़ीय वैष्णवों के मतानुसार नृमार हरने के लिए कृष्ण ने भवठार किया था यह एक बहिरंग कथा है। उमका प्राविर्भाव हुआ था प्रेमरस के निर्यास के आस्वादन के लिए। इस प्रमरस-निर्यास-आस्वादनकथ मुख्य प्रयोजन के साथ प्रासुपंगिक भाव से नृमार-हरण का प्रयोजन था मिसा था। कृष्णभठार के बाद प्रमास्वादन के विषय में भक्तानु को कङ्क-कङ्क लाम था स्वकथ बानीवर ने उपर्युक्त श्लोक में सती लोम का ही उल्लेख किया है। इस श्लोक में हम तीन प्रकार के लोम देखते हैं—(१) राधा के प्रेम की महिमा कैंसी है (२) राधा-आस्वादिष्ठ कृष्ण की माधुर्यमहिमा कैंसी है (३) कृष्ण-सम्बन्धी प्रेम के आस्वादन में राधा का सुख कैंसा है। इन तीनों प्रयोजनो से ही अन्त कृष्ण-बहिर्गो रूप में गौरांग का भवठार हुआ। इन तीनों प्रयोजनों और इनका भवसम्बल करके भीराबा और उसके प्रेम का स्वल्प कविराज गम्भामी ने 'ब्रह्म्य करितामृत' ग्रन्थ के पादिसीसा के बीसे अध्याय में वर्णन किया है। उक्त वर्णन का अनुसरण करके ही इन विषय को स्पष्ट करने की चेष्टा कर र्हु है।

राधा-प्रेम की महिमा-वर्णन के प्रसंग में कविराज गम्भामी ने कर्हु है—

महाबाह-स्वकथा भीराबा टातुगली ।
सर्वगुण-दामि कृष्ण-कान्ता-शिरोमणि ॥
कृष्णप्रैमि चादिष्ठ बार बिलेनिप्रिय काय ।
कृष्ण-निजप्रसिठ राधा कीडार लहृम्य ॥

इसी कृष्णकान्ता-शिरोमणि राधिका से ही बूछरी कान्ताओं का विस्तार हुआ है। कृष्णकान्ताएँ तीन प्रकार की हैं प्रथम लक्ष्मीनय द्वितीय महिदीनय और तृतीय ललित व ब्रजामतागण। इनमें—

लक्ष्मीनय तार वैभवविभासासक्य ।
महिदीनय वैभव प्रकाश स्वकथ ॥
ललकार-स्वभाव नेहे ब्रजदेवीनय ।
कायक्यहृकथ तार रसैर कारण ॥

बहुकान्ता के पसाबा रस का उस्तास लही हुला है, इसीलिए एक राधिका ही इन तीन प्रकार के बहुकान्ता के रूप में कृष्ण की अन्त विधिप सीमारसास्वादन करती है। इसीलिए—

लोकिस्यामिन्की राधा—योबिन्द-सोहिनी ।
योबिन्द-सर्वस्व—सर्वकान्ता-शिरोमणि ॥

हृष्यामयी हृष्य और मिलने बाहिरे ।
 बाहिा बाहिा नत्र पड़े ताहा हृष्य स्तुरे ॥
 किंवा प्रेमरसमय हृष्येरे स्वल्प ।
 तौर शक्ति तौर सह ह्य एकल्प ॥
 हृष्यबांधा-पुतिल्प करे आराधन ।
 अतएव राधिका नाम पुराणे बाधाने ॥

अगत-मोहन हृष्य—ताहार मोहिनी ।
 अतएव समसौर करा ठाकुराची ॥
 राधा पूर्व-शक्ति हृष्य पूर्व-शक्तिमान् ।
 बुद्ध कस्तु बेद गाहि आत्म परमात् ॥
 मूमद तार नत्र पत्ते अविच्छेद ।
 अग्नि अवासाते येथे कस्तु ग्हे भेद ॥
 राधाहृष्य येथे सदा एकद स्वल्प ।
 सीतारस अस्वादिते बरे बुद्ध रूप ॥

इह अमल-विश्व-प्रेम से महिममयी राधा के साथ तारे सीता-रस
 का आस्वादन करते ही श्रीहृष्य के तीन लीन बाकी रह गये थे जिसके
 लिए फिर पीर-अवतार की आवश्यकता पड़ी थी । इन तीनों लीनों के
 अन्तर—

ताहार प्रथम बांधा करिये व्याख्यान ।
 हृष्य कहे आदि हृद रसेर निधान ॥
 पूर्वागन्धमय आदि चिन्मय पूर्व तल्प ।
 राधिकार प्रेमे आधा कराय उन्मत्त ॥
 ना आदि राधार प्रेमे आधे कत बल ।
 बे बने आधारे करे लखवा विह्वल ॥
 राधिकार प्रेम गुह आदि शिष्य भद ।
 तदा आधा ज्ञाना नृत्ये ताचाय उन्मत्त ॥
 नित्र प्रेमास्थारे नीर ह्य बे आह्वार ।
 ताहा हृते कौटि गुह राधा वेमास्थार ॥
 आदि येथे अरस्पर विच्छ-अर्थाधय ।
 राधाप्रेम तेथे कदा विच्छ-अर्थमय ॥

राधाप्रेमे बिनु जार बाकिते नाहि ठाजि ।

तबापि से सने सने बाढ़ये सबाइ ॥

। : : :

सेइ प्रेमारे भीराबिका परम प्राभय ।

सेइ प्रेमारे प्राप्ति हुइ केवल बियय ॥

बिययजातीय लुख प्रामार प्रास्वाइ ।

प्रामा हते कोटिपुन प्राभयेर प्राह्वान् ॥

प्राभयजातीय लुख पाइते मन प्राय ।

परने प्रास्वाहिते नारि कि करि उपाय ॥

कनु धरि एइ प्रेमारे हुइये प्राभय ।

तबे एइ प्रेमालम्बर धनुभव ह्य ॥

एत बिन्ति रहे कृष्ण परमकौतुकी ।

हुइये बाढ़ये प्रेमलौभ धक्यकी ॥

कृष्णावतार के बाद गौर-अवतार की यही प्रथम सोमरूपी प्रयोजन है। राधिका प्रेम का प्राभय है कृष्ण केवल प्रेम के बियय है। प्रेम के प्राभयत्व में कौन-सी महिमा है उसका धनुभव करने के लिए ही गौर-अवतार में हरि एक ही साव प्रेम का बियय गौर प्राभय होकर उभय मक्ष से प्रेम की महिमा का प्रास्वादन किया।

गौरवतार में हरिका दूसरा लोभ इस प्रकार का है। प्रेम के बियय म को 'धनुवतमबुरिमा' रहती है बियय लुव उसका प्रास्वादन नहीं कर पाता है। केवल प्राभय के द्वार पर ही इस प्रेम-बियय का माधुर्य प्रकट होता है। भीराबा के हुल-मुकुर में ही कृष्ण-माधुर्य की गरम अभिव्यक्ति गौर प्रास्वादन होती है। तिरक मही नहीं राधिका के प्रेम की गहवाई गौर वैचिभ्य के द्वार ही कृष्ण का तीक्ष्ण माधुर्य मानो बरबर बढ़ता रहता है। अतएव राजा रूप ग्रहण न करने से कृष्ण अपने में निहित अनन्त माधुर्य का स्वयं प्रास्वादन नहीं कर पने है। अपने मधुर-स्वरूप-उपलब्धि के लिए ही इसीलिए कृष्ण को गौर-अवतार में राधिका की भाव-आन्ति ग्रहण करनी पड़ी। इसीलिए दूसरे लोभ के बारे में वैठन्य-बहिष्कामृत में कहा गया है—

एइ एक लुन धार लोभेर प्रकार ।

स्वमाधुर्य बैजि कृष्ण करैव बिचार ॥

धनुवत अनन्त पूर्व मोर मबुरिमा ।

बिजकते इहार केहो नाहि पाय सीमा ॥

एह प्रेमद्वारे नित्य राधिका एवमि ॥
 भामार माधुर्यामृत प्रास्वारे सकृदि ॥
 यद्यपि विम्वल राजार सख्येन बर्षण ॥
 तथापि स्वच्छद्रा तार बाङ्गे लगे लग ॥
 भामार माधुर्ये नाहि बाङ्गिते धवकाशे ॥
 ए-बर्षणेर धापे नवनवक्ये भाने ॥
 मम्माधुर्य राबाधेय—बोहि होइ करि ॥
 लबे लगे बाङ्गे बोहि केहो नाहि हारि ॥
 भामार माधुर्य नित्य नव नव हय ॥
 स्व स्व प्रेम धनुष्य मन्ते प्रास्वारेय ॥
 बर्षणाद्ये देखि परि धत्यन माधुरी ॥
 प्रास्वारेके जोन हय प्रास्वारेते नारि ॥
 विचार करिये परि प्रास्वारे-उपाय ॥
 राधिकेसास्वक्य हृदये लबे मन बाय ॥

कविराज गोस्वामी ने प्रथम इसी को कहा है—“भापनि धापना
 बाहे करिछे धानिपन” यीरहरि के रूप राधामात्र में निमोद होकर निरन्तर
 निज-माधुर्य का सुद ही प्रास्वारेन किया है ।

यीर-रूप धवतार के प्रति कृष्ण में एक धीर लोभ या सह ईकृष्ण
 से मिलन होने पर राधा को जो सर्वाधिपानी मुख होता है राधा की
 धंगच्छान्ति को धपीकार करके उस मुख का एवमार प्रास्वारेन करना ।
 मिलन-अनिष्ठ मुख नामक वस्तु ने धीराधा के धन्दर जो सर्वाधिपानी
 विधिप्यता प्राप्त की थी धीर किन्ती दूसरे व्यक्ति में संभव नहीं है वह
 ब्रह्मधाम में एकमात्र राधा के धन्दर संभव हुई थी । कृष्ण के प्रति राधिका
 में ‘काम’ या राधिष्य ही ‘कामरूपी’ है, लेकिन ‘धविष्य महामात्र’
 रूप राधा के इस काम के धन्दर प्राकृत काय की लक्षमात्र नहीं का राधा
 का धमाकृतक काम विद्युद निर्मल प्रेम है । कविराज गोस्वामी के मठामुसार
 काम धीर प्रेम मोहा धीर सोने की नति स्वकृष्णविलक्षण है । एक है
 धारनेत्रिय प्रीति-रक्ष्या दूसरी है कृष्णेन्द्रिय-प्रीति-रक्ष्या एक है धन्वतम-
 दूसरी है निमल भास्कर । हम लोगों ने पूर्ववर्ती विवेचन में बहुत बार
 देखा है कि राधा का प्रेम विद्युद ‘कृष्ण-सुबैरताप्यं है ।’ ‘धन्वावती’

- (१) धतएव गोपीवधे नाहि कामगन्ध ।
 कृष्ण मुख सापि मात्र कृष्ण से सम्बन्ध ॥
 धन्वनमुख दुःख गोपीर नाहिक विचार ।
 कृष्ण मुख हेतु केव्य मनीष्यवहार ॥
 कृष्ण सापि धार सब करि बरिमाय ।
 कृष्ण मुख हेतु करे प्रद धनुराय ॥

के प्रवर भारतप्रीति का सौम्यमात्र प्रवर्णित रहने के कारण वह रामा प्रेम से निकृष्ट है। गोपियों के इस विषुद्ध हृदयगुणैकतात्पर्य प्रेम के साने कुछ हृदय को हार माननी पड़ी है इसीलिए भागवत में हृदयवचन में बोलते हैं कि भगवान् हृदय न कहा कि यह योपीप्रेम उनके लिए साध्य नहीं है। गोपियों की जो निजबेहृप्रीति है वह भी मूल में उठी हृदय प्रेम के लिए ही है। लेकिन धनपयधीन इस गोपीप्रेम के प्रवर एक प्रकृत रहस्य है यहाँ 'सुख बांधा नाहि, सुख हय कोटि गय'। यह गोपीप्रेम का एक विचित्र विरोधानास है। इस विरोधानास के प्रवर में कबिराज गोस्वामी ने अपनी धनमुकरणीय माया में कहा है—

गोपिका बर्साने हृदये ये प्रालम्ब हय ।
 ताहा हृते कोटिपुत्र गोपी प्रान्धारय ॥
 ताँ सवार नाहि निज-सुख-प्रानुरोध ।
 तबापि बाङ्गे सुख पङ्गिस विरोध ॥
 ए विरोधेर एकमात्र बैधि समापन ।
 गोपिकार सुख हृदयमुळे पर्यवसल ।
 गोपिकाबर्सान हृदये बाङ्गे प्रानुस्तता ।
 से माधुर्य बाङ्गे बार नाहिक समता ॥
 धामार बर्सान हृदय पाइल एत सुख ।
 एत मुळे योपीर प्रानुस्त धय सुख ॥
 गोपीधोमा बैधि हृदयधोमा बाङ्गे पत ।
 हृदयधोमा बैधि गोपीधोमा बाङ्गे तत ॥
 एह मत परस्पर पङ्गे हुङ्गठुङ्गि ।
 परस्पर बाङ्गे बैह सुख नाहि मुङ्गि ॥
 किन्तु हृदयेर सुख हय गोपीक्य मुळे ।
 तार मुळे सुख बुद्धि हय गोपीपये ॥

(१) १।१२।२१

(२) तबे बे बैधिये योपीर निज बेहे प्रीत ।
 सैहीत हृदयर नापि नाहि निरिचल ॥
 एह बेह कौत नापि हृदये समर्पण ।
 तार बन तार एह संयोग साधन ॥
 ए-बेह बर्सान स्वर्गे हृदय संजापण ।
 एह नापि करे बेहे मार्जन भूषण ॥

पोपीप्रेम और प्रेमबलिष्ठ सुख की यह जो बात कही गई उसमें—

देह गोपीधन मध्ये उत्तमा राबिका ।

कमे गुणे सौभाग्ये प्रेमे सर्वधिके ॥

त्रिभुवन में इस राबिका का धनुमनीय वैशिष्ट्य यह है कि अपनी सारी प्रेम-श्रेष्ठता के द्वारा वे पूर्णानन्द और पूर्वपुरुषस्वरूप इन्द्र को भी भ्रान्तित करती है। कृष्णसुक में ही उनकी सारी सुखश्रेष्ठता और प्रेम श्रेष्ठता परिणत होती है। इसीलिए इन्द्र ने मन ही मन विस्मित होकर सोचा है—

भ्रामा हृते भ्रान्तित ह्य त्रिभुवन ।

आपाके भ्रान्त्य दिने ऐशे कोम जन ॥

भ्रामा हृते आर ह्य भूत भूत गुण ।

तैह जन आङ्कारिते वारे मोर मन ॥

भ्रामा हृते गुणी बहु कपते भ्रतन्तव ।

एकलि रामलो ताहा करि धनुमव ॥

कोरि काम विमि क्य पद्यनि आमार ।

भ्रतमोदुर्ध्व माधुर्य साम्य वाहि आर ॥

मोरकमे आत्यापित्त करे त्रिभुवन ।

रावार वर्धन मोर बुझाय नयन ॥

मोर बंधीनीते आकर्षये त्रिभुवन ।

रावार बधने हरे आमार बधव ॥

पद्यनि आमार लये जगत् सुर्यध ।

मोर बिल आरव हरे रावा-ध्वन-ध्वन ॥

पद्यनि आमार ज्ने जगत् सुरस ।

रावार अवर एते भ्रामा करे बरा ॥

पद्यनि आमार स्पर्श कौटीयु शीतल ।

राबिकार स्पर्श भ्रामा करे मुष्टीस्तल ॥

एह मत अगलेर गुणे आनि हेतु ।

राबिकार क्यगुण आमार बीडानु ॥

एह मत धनुबध आमार प्रतीत ।

बिचारि वैशिये मनि सब बिपरीत ॥

रावार वर्धने मोर बुझाय नयन ।

आमार वर्धन रावा गुणे आचोपान ॥

वरस्वर बेबुमीते हरये चेतन ।

मोरअमे तमालेरे करे आतिगन ॥

इन्द्र-प्रातिपद पादनु बतम सखने ।
 सिद्ध मुझे मम रहे बुझ करि कोले ॥
 अनुकूल बने यदि पाय मोर पंख ।
 पक्षिया पक्षिते बड़े नेत्रे हय प्रख ॥
 ताम्बूल खचित पडे करे प्रास्वावने ।
 आमार संपने राधा पाय वे प्रख ॥
 शत्रु मुझे कहि यदि नाहि पाहु प्रंत ॥
 लीला प्रति मुझे इहार बे अंपमाधुरी ।
 ताहा देखि मुझे प्राप्ति आपना पसरि ॥

:
 :
 प्राणा होते राधा पाय ये आसीय मुझ ।
 ताहा प्रास्वाविते प्राप्ति स्वाइ उन्मुझ ॥
 नाना पल करि प्राप्ति नारि प्रास्वाविते ।
 से मुझ माधुर्य प्राप्ते लोम बड़े चित्ते ॥
 रस प्रास्वाविते प्राप्ति कैल अचतार ।
 प्रेमरस प्रास्वावित विविध प्रकार ॥

यही है पौर-अवतार में राधामाव-अपकामि बाल्य करने का राज्य
 श्रीमान्महाप्रभु श्रीरम देव की भयता और उग्र भयवता के स्वल्प
 पर विचार के प्रसंग में महाप्रभ से एक करके इन्द्रदास कबिराज न
 राधा की जिस मूर्ति का प्रकन किया है और राधावतल की स्थापना की
 है हमने अमर यथासंभव कबिराज गोस्वामी की ही माया में उसका परिचय
 किया है। इस विवेचन को मत्तीर्नाति देखने से पता चलेगा कि श्रीराधा
 की अम्प्यारम-मूर्ति का महिममय पूर्ण-प्रकाश इसी श्रीतन्त्रयन में हुआ है।
 श्रीतन्त्र के पूर्ववर्ती राधाइन्द्र-प्रेम-साहित्य में पौर श्रीतन्त्र के परवर्ती
 राधाइन्द्र-प्रेम-साहित्य में भी राधिका की एक इत्ता है उसकी अप्राकृत
 अम्प्यारम मूर्ति एक अष्टादशी आय की भांति उसकी काम्य में स्थापित
 प्राकृत मूर्ति के चारों ओर अक्ष-अक्ष पर एक दिव्य परिमलन का आभास
 मान देती है साहित्यिक स्थापन में हम बस्कि प्राकृत की ही अय देखते
 हैं। लेकिन राधाइन्द्र-प्रेम-साहित्य को प्राप्तिप्रकटा की उत्तमी अंबाई से
 देखने और ग्रहण करने की जो दृष्टि है वह दृष्टि मुख्यतः श्रीतन्त्र-युग की
 ही रंग मानुम होती है। श्रीतन्त्र के दिव्य भाव और प्राचरण में उनके

परमभक्त और परमद्वामिगुणी परिकरबग के ध्यान तथा मगन के अन्तर से शीतलता का एक नया आभिमति हमने स्पष्ट देखा । इस आभिमति की विभ्युत्ति अभी भी बगानियों की घाँसों पर छार्ई हुई है और इसीलिए हमने वैष्णव साहित्य के आस्वादन के समय साहित्य-रस के साथ अघ्यात्म रस को मिसाए बगर नहीं रहते । इस मिश्रण या समन्वय के अभाव में वैष्णव-साहित्य के आस्वादन में कहीं एक अपूर्णता रह जाती है । इसीलिए कहना पड़ता है कि भक्तकवि बासुदेव जोय गौराग के बारे में कह गए हैं—‘मञ्जुर-बुन्दा-विपिन-माधुरी प्रवेद्य बालुरी-सार’—वैठन्य के जीवन का इससे बढ़कर सर्वोयोग वर्णन नहीं हो सकता है ।

द्वादश अध्याय

वज्रय सहजिया मत में राधा-सत्त्व

हमने ऊपर के अध्याय में जिस राधासत्त्व का विशेषण किया वही गौड़ीय वैष्णव सिद्धांत सम्मत राधासत्त्व है। इस गौड़ीय वैष्णव धर्म से हम वैतन्व्य-प्रवर्तित वैष्णव धर्म को ही समझते हैं। वैतन्व्य-प्रवर्तित इस वैष्णव धर्म ने परवर्ती काम के वास्तविक वैष्णव गौस्तापियों के द्वारा ज्ञाना प्रचार से विचित्र होकर दार्शनिक सिद्धांत धीरे धीरे धर्मपरक बातों में ही एक विशेष रूप प्राप्त किया है। लेकिन इस विचित्र होकर वैष्णव धर्म के अन्तर्गत बंगाल में बंगाल धर्म की धीरे धीरे प्रवर्धित हुई है। इनमें वैष्णव-सहजिया मत प्रचलित चला है। इन सहजिया लोगों के धर्म की दार्शनिक सिद्धांत ने उन मूल सिद्धांतों के अनुकूल उसके राधासत्त्व में विकसितता प्राप्त की है।

इस वैष्णव-सहजिया मत के मूल पर विचार करने से हम देखते हैं कि इस सहजिया मत का मूल किसी विशेष वैष्णव दार्शनिक सिद्धांत पर प्रतिष्ठित नहीं है वास्तव में इस धर्म की प्रतिष्ठा कुछ कुछ साधनों पर है। सहजिया लोगों की इस कुछ साधना की चारा भारतीय साधना के क्षेत्र में एक प्रति प्राचीन चारा है। इन साधनाओं ने भिन्न-भिन्न रूपों में भिन्न-भिन्न धर्ममतों के साथ मिलकर विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों को जन्म दिया है। यह कहीं तांत्रिक साधना के रूप में प्रचलित है, कहीं यह बौद्ध-सहजिया के अन्तर्गत स्थापित हुई है इन साधना-मण्डलों ने वैष्णव धर्म से मिलकर वैष्णव-सहजिया सम्प्रदाय को जन्म दिया है। नर-नारी के परस्पर भिन्न-भिन्न भाव से एक धर्म-साधना की चारा मातृवर्ष के धर्म के इतिहास में बहुत पहले ही से प्रचलित है। इस साधना की विभिन्न परिणतियों से ही कामाचारी तांत्रिक साधना बौद्ध तांत्रिक साधना बौद्ध-सहजिया साधना आदि का उद्भव हुआ है। बाहर से ये धर्म-सम्प्रदाय परस्पर अलग-अलग रूपों में माजूम हों वास्तव में विचार करने पर उन सभी में एक बहरी एकाई दिखाई पड़ती है। विभिन्न सम्प्रदायों में इस साधना के प्रचलन के साथ-साथ ही दार्शनिक सिद्धांत बुझे हुए हैं। सभी सिद्धांतों के धर्म में इस देखते हैं कि धर्म सच है एक धर्म परमानन्द स्वरूप। यही धर्म सत्त्व ही परम सामरूप्य है। इन धर्म धामरूप

तत्व में दो भाग हैं। लेकिन प्रथम तत्व इन दोनों बाराओं की अपनी
 कृति नहीं है। प्रथम तत्व वह चरम तत्व है जहाँ ये दोनों ही भाग
 पुनः प्राप्त कर फिर एक अखंडतत्व के अन्दर पहचाने से मिली हुई
 है। यही मिथुनतत्व या यामसतत्व या युगत तत्व है। यही बीजों का
 युगततत्व है। तांत्रिक साधना के क्षेत्र में यह अखंड युगततत्व ही
 केवलमानन्द तत्व है। इस प्रथम तत्व की दो भागें — एक शिव
 और दूसरी शक्ति। तांत्रिक मत में इस शिव-शक्ति का मिलन-अनित
 केवलमानन्द ही परम साध्य है इस साध्य को प्राप्त करने की सामग्री-व्यक्ति
 बहुत प्रकार की है। सामक अपनी बेह के अन्दर ही इस शिव-शक्ति
 तत्व को पूर्ण-आप्त करके और पूर्ण-परिणत करके अपने अन्दर ही इन
 समय तत्वों के मिलनजनित अपूर्ण सामरस्य-मुक्त या केवलमानन्द का अनुभव
 कर सकता है। इस शिव-शक्ति तत्व को लेकर बहुतेरी प्रकार की
 साधनाओं में एक विषय प्रकार की साधना है नर-नारी की मिलित
 साधना। इस साधना के साधकों का विश्वास है कि शिव-शक्ति के
 नित्यतत्व ने द्रव्य रूप में सद्यः के नर-नारियों में रूप पाया है। नर
 नारी दोनों ही उसके स्वस्व में शिवतत्व और शक्तितत्व इन दोनों ही
 तत्वों के अधिकारी होने पर भी इनके अन्दर विधेय करके पुण्य शिवतत्व
 और नारी शक्तितत्व का प्रतीक है। केवल सूक्ष्मरूप से ही नहीं स्पष्ट
 रूप से भी पुण्य के प्रतिरूप में शिव का और नारी के प्रतिरूप में शक्ति
 का समधिक विकास होता है। साधना के क्षेत्र में पहली साधना है इस
 पुण्य और नारी दोनों के अन्दर गुप्त शिवतत्व और शक्तितत्व का पूर्ण
 आचरण। पुण्य के अन्दर से शिवतत्व और नारी के अन्दर से शक्ति-
 तत्व के इस प्रकार से पूर्ण परिणत और पूर्ण प्राप्त होने पर परस्पर
 के शिव-शक्ति-तत्व का आस्वादन होना अर्थात् पुण्य अपने अन्दर
 से शिवतत्व को पूर्ण परिणत और पूर्ण प्राप्त करके अपने को
 सभी कार से शिव के रूप में उपलब्ध करके नारी को पूर्ण शक्ति-
 तत्व के तौर पर अनुभव करेगा और नारी अपने अन्दर शक्ति
 तत्व को पूर्ण विकसित करके अपने को साम्राज्य शक्ति के तौर पर और
 पुण्य को साम्राज्य शिव के तौर पर अनुभव करेगी। साधना की इस
 रीति में पुण्य नारी दोनों की स्पष्ट बेह के प्रतिरूप में भी शिव-शक्ति का
 आचरण होता है। उन दोनों का जो मिलन होता है वह सामक-साधिका
 को पूर्ण सामरस्य में पहुँचा देता है—यह पूर्णसामरस्यजनित जो अमीम
 यन्त्र मानवानुमति है—यही तंत्र की भाषा में सामरस्य-मुक्त है बीजों
 की भाषा में महासुप्त और बीजों की भाषा में महामान-स्वरूप है।

द्वादश अध्याय

वैष्णव सहजिया मत में राधा-तत्त्व

हमने ऊपर के अध्याय में विश्व राधातत्त्व का विवेचन किया वहीं गौड़ीय वैष्णव सिद्धांत सम्मत राधातत्त्व है। इस गौड़ीय वैष्णव धर्म से हम वैतय-प्रवर्तित वैष्णव धर्म को ही समझते हैं। वैतय-प्रवर्तित इस वैष्णव धर्म ने परवर्ती काल के शास्त्रज्ञ वैष्णव गोस्वामियों के द्वारा नाना प्रकार से विविध होकर दार्शनिक सिद्धान्त और धर्मचरम दोनों में ही एक विशेष रूप प्राप्त किया है। लेकिन इस विविध-वैष्णव धर्म के प्रसारण बंगाल में वैष्णव धर्म की और कई बाराएँ प्रकाशित हुई हैं। इनमें वैष्णव-सहजिया धारा प्रधान धारा है। इन सहजिया लोगो के धर्मने कई दार्शनिक सिद्धान्त से उन मूल सिद्धान्तों के अनुरूप उसके राधातत्त्व न विधिप्यथा प्राप्त की है।

इन वैष्णव-सहजिया मत के मूल पर विचार करने से हम देखते हैं कि इस सहजिया मत का मूल किसी विशेष वैष्णव दार्शनिक सिद्धान्त पर प्रतिष्ठित नहीं है वास्तव में इस धर्म की प्रतिष्ठित कुछ कुछ साधनों पर है। सहजिया लोगो की इस कुछ साधना की धारा भारतीय साधना के क्षेत्र में एक प्रति प्राचीन धारा है। इन साधनाधर्मों ने भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न-भिन्न धर्ममठों के साथ मिलकर विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों को जन्म दिया है। यह कहीं तांत्रिक साधना के रूप में प्रचलित है कहीं यह बौद्ध-सहजिया के धर्म-क्यान्तिरित हुई है, इन साधन-प्रथासियों ने वैष्णव धर्म से मिलकर वैष्णव-सहजिया सम्प्रदाय को जन्म दिया है। नर-नारी के परस्पर मिलित भाव से एक धर्म-साधना की धारा मारतधर्म के धर्म के इतिहास में बहुत पहले ही से प्रचलित है। इस साधना की विभिन्न परिणतियों से ही बामाचारी तांत्रिक साधना बौद्ध तांत्रिक साधना बौद्ध-सहजिया साधना धारि का उद्भव हुआ है। बाहर से ये धर्म-सम्प्रदाय परस्पर मिलते भलग क्यों न मानूम हों वास्तव में विचार करने पर उन सभी में एक गहरी एकाई दिखाई पाती है। विभिन्न सम्प्रदायों में इस साधना के प्रचलन के साथ मिलते ही दार्शनिक सिद्धान्त बुद्ध हुए हैं। सभी सिद्धान्तों के मत में हम देखते हैं कि चरम धर्म है एक प्रथम-परमात्म-स्वरूप। यही धर्म-तत्त्व ही परम सामरस्य है। इन धर्म-धामर

तत्व में हो चाराएँ हैं। लेकिन प्रथम तत्व इन दोनों चाराओं की धन्वी-
 इति नहीं है। प्रथम तत्व यह परम तत्व है जहाँ ये दोनों ही चाराएँ
 पूर्णता प्राप्त कर फिर एक अक्षर-तत्व के धन्वर यहूई से मिली हुई
 हैं। यही विभुतत्व या सामतत्व या युपन तत्व है। यही बीजों का
 युपन-तत्व है। तादिक साधना के क्षेत्र में यह अक्षर युपन-तत्व ही
 अक्षर-तत्व है। इस प्रथम तत्व की दो चाराएँ — एक शिव
 और दूसरी शक्ति। तादिक यत्र मे इस शिव-शक्ति का मिश्रण-वर्णित
 अक्षर-तत्व ही परम साध्य है इस साध्य को प्राप्त करने की साधन-व्यवधि
 बहुत प्रकार की है। सामक अपनी देह के धन्वर ही इस शिव-शक्ति
 तत्व को पूर्ण-आप्त करके और पूर्ण-परिणत करके अपने धन्वर ही इन
 अन्य तत्वों के मिश्रण-वर्णित अपूर्व सामरस्य-मुख या अक्षर-तत्व का अनुभव
 कर सकता है। इस शिव-शक्ति तत्व का लेकर बहुतेरी प्रकार की
 साधनाओं में एक विधाय प्रकार की श्रमता है अर-नायी की मिलित
 साधना। इस साधना क साधकों क विश्वास है कि शिव-शक्ति क
 अक्षर-तत्व से स्वरूप रूप में अक्षर क अर-नायियों में रूप पाया है। अर-
 नायी शक्तों ही उसके स्वरूप में शिव-तत्व और शक्ति-तत्व इन दोनों ही
 तत्वों के अक्षर-वर्णित होना पर भी इनके धन्वर विधेय करके युपन शिव-तत्व
 और नायी शक्ति-तत्व का प्रतीक है। केवल सूक्ष्मरूप में ही नहीं सूक्ष्म
 रूप में ही युपन के अक्षर-तत्व में शिव का और नायी के अक्षर-तत्व में शक्ति
 का समन्वित अक्षर-तत्व होता है। साधना के अक्ष में पहली साधना है इस
 युपन और नायी दोनों के धन्वर युपन शिव-तत्व और शक्ति-तत्व का युपन
 अक्षर-तत्व। युपन के धन्वर से शिव-तत्व और नायी के धन्वर से शक्ति-
 तत्व के इस प्रकार से पूर्ण परिणत और पूर्ण प्राप्त होने पर अक्षर-
 तत्व के शिव-शक्ति-तत्व का आम्बानन होना अर्थात् युपन अक्षर-तत्व
 में शिव-तत्व को पूर्ण परिणत और पूर्ण प्राप्त करके अक्षर-तत्व का
 अक्षर-तत्व में शिव के रूप में अक्षर-तत्व करके नायी का युपन शक्ति-
 तत्व के और पर अनुभव करेगा और नायी अक्षर-तत्व अक्षर-
 तत्व को पूर्ण विशिष्ट करके अक्षर को अर्थात् शक्ति क और पर और
 युपन को अर्थात् शिव के और पर अनुभव करेगी। साधना की इस
 रचना में युपन-शक्ति दोनों की स्वरूप एक अक्षर-तत्व में ही शिव-शक्ति का
 अक्षर-तत्व होता है। तब दोनों का अक्षर-तत्व होता है वह अक्षर-तत्व-
 को युपन सामरस्य में अर्थात् अक्षर-तत्व है—इ युपन-सामरस्य-वर्णित दो अक्षर-
 तत्व अक्षर-तत्व-तत्व है—यही तत्व ही साधना में सामरस्य-मुख है, बीजों
 की साधना में अक्षर-तत्व और शक्ति-तत्व की साधना में अक्षर-तत्व-तत्व है।

संश्लेष में तब के तारी-मुख्य की मिलित साधना का रहस्य यही है। बौद्ध तांत्रिक और बौद्ध सहजिया साधना की भी यही मूल बात है। वही शिव-शक्ति की बगह देखते हैं। धूमता-कल्या-रत्न की मूर्ति भगवती-भगवान् को या बखोवती (या बखपावे (ली ?) खती) बखोवर को या 'प्रज्ञा' और 'उपाय' को। इनका चरम लक्ष्य है महासुख-रूप प्रज्ञा या सहजात्म्य की प्राप्ति। इन विषयों पर दूसरे ग्रंथों में विस्तारपूर्वक विचार किया है अतएव यहाँ उनके पुनरुल्लेख की आवश्यकता नहीं। पास राजाओं के समय बंगाल में तांत्रिक बौद्धधर्म और सहजिया बौद्ध धर्म का काफी प्रचार था। बौद्ध धर्म का प्रचलन करके जो कुछ साधनपद्धति बंगाल में प्रचलित थी वह साधना और हिन्दुतंत्रोक्त साधनपद्धति मूलतः एक थी। जनता है सेम राजाओं के समय से बंगाल में राजा-रूप-सुख वैष्णव धर्म का प्रसार होने लगा। इस वैष्णव धर्म के प्रसार के बाद पूर्वोक्त कुछ साधना वैष्णवधर्म के साथ मिल-जुल गई और इसी तरह वैष्णव-सहजिया मत का निर्माण हुआ।

तारी-मुख्य की मिलित यह कुछ साधना-मन्त्रादी वैष्णवधर्म में प्रविष्ट होकर रूपांतरित हुई। हिन्दु और बौद्ध तांत्रिक पद्धति में—वहीं तक कि बौद्ध सहजिया सम्प्रदाय के धम्बर भी जो मूलतः एक योग-साधना थी वैष्णव सहजिया के धम्बर योग-साधना का प्रचलन करके एक प्रेम-साधना में रूपांतरित हुई। हम पूर्णपर देख पाए हैं कि वैष्णव धर्म विशेष करके राजा-रूप का प्रचलन करके जो वैष्णव धर्म है—वह प्रेमधर्म है। वैष्णव सहजिया में हमने पूर्ववर्ती शक्ति-शिव या प्रज्ञा-उपाय की बगह राजा-रूप को पाया। शिव-शक्ति का मिलनजनित सामरस्य ध्यान स्वरूप या बौद्धों ने इसे महासुख-स्वरूप कहा है। वैष्णव सहजिया लोगों के राजा-रूप के मिलनजनित ध्यान को प्रेम के शिवा और कुछ नहीं कह सकते। यद्यपि यहाँ भी चरमावस्था में प्रेम ही ध्यान है और ध्यान ही प्रेम है। बिना रास्ते यह चरमावस्था प्राप्त होती है उसे वैष्णव-सहजियाधर्म योग का रास्ता नहीं कहिये इसे वे प्रेम का रास्ता कहिये।

वैष्णव-सहजिया मत के बारे में मैंने धन्यज लिखा है।^१ प्रस्तुत प्रसङ्ग में इस सहजिया मत के धम्बर से उपायएव किंच प्रकार रूपांतरित हुआ है केबल इसी पर विचार करेंगे।

(१) *Obscure Religious cults और An Introduction to Tantric Buddhism.*

(२) *Obscure Religious Cults etc.*

वैष्णव-सहजिया यत्न में युगल-रत्न ही परमतत्त्व है। इसी युगल में ही महानाथ रूप 'सहज' का स्थिति है। यह सहज समरस में स्थित प्रेम की पटाकाष्ठा-भवत्वा है। यह 'सहज' ही विश्व-ब्रह्माण्ड का अन्तर्निहित चरम सत्य है। इसी से अमृत-प्रपंच की उत्पत्ति होती है, इसी में सब कुछ की स्थिति है और इसी में सब कुछ का लय होता है। यह सहज 'नित्य के देव' की वस्तु है। बंजीबास ने 'नित्य' से ही सारे सहजदर्शनों को प्राप्त किया था नित्य के आदेश से ही सारी सहज साधनाओं में बरत हुए वे 'नित्य के आदेश से' ही उन्होंने जगत् में 'सहज बालवार उरे' (सहज को बालने के लिए) गीत रचे थे। यह 'बृन्दावन' और 'मनोबृन्दावन' को पारकर 'नित्य बृन्दावन' की वस्तु है। यह नित्यबृन्दावन ही सहजिया गम का गुप्त चक्रपुर है। इस गुप्त चक्रपुर में रामा-कृष्ण का नित्य विहार चल रहा है—इस नित्यविहार के अन्दर से सहज-रस की नित्य बाध प्रवाहित होती है और इस 'रस बर वस्तु नाह ए तिन मुचने' (रस के अभाववा तीनों मुचनों में कोई वस्तु नहीं है। सहजिया लोगों का विश्वास है कि नित्य बृन्दावन के 'गुप्तचक्रपुर' में रामा-कृष्ण के अन्दर से सहज-रस का यह जो निरन्तर प्रवाह है उसी की अविच्छिन्न संसार के सभी नर नारियों के अन्दर प्रवाहित प्रेमरस-बाध के अन्दर भी है। उपनिषद् में कहा गया है उसी आधुनिक स्मृत धारणों के अन्दर से प्राणिज उषी एक ब्रह्ममन्त्र के ही 'मात्रामुपवीचनित'। उपनिषद् के इस एक स्वर से स्वर मिलाकर सहजिया लोगों के साथ कहा जा सकता है कि नर-नारी का आधुनिक प्रेम—यहाँ तक कि स्मृत वैदिक संन्यास के अन्दर से जीवनम जाने धनधाने उषी एक सहज रस की बाध का उपमोय करते हैं। इस बृन्दावन के गुप्तचक्रपुर में रामा-कृष्ण की जो नित्य-सहज सीला होती है वही उनकी 'स्वल्प-सीला' है और जीव के अन्दर से स्त्री-पुरुष के रूप में जो सीला होती है वही 'भीरु-सीला' है। अत्राकृत बृन्दावन की स्वल्प-सीला ही ब्राह्मण अमृत में आकर भीरु-सीला में परिवर्तित होती है।

जीव के बृन्दावन से किस प्रकार से एक आदिम युगल में विश्वास उत्पन्न होता है इस बाध की अमृत धिधिरकुमार भोग ने अपनी 'भीकालाचार सीला' में अत्यन्त सहज भाव और माया में बड़े सुन्दर ढंग से समझाने की चेष्टा की है। वहाँ कहा गया है—

साक्षर वैशेषि

एह कम जाने ।

युगलके जीव

मात्रते विराजे ॥

पुत्रप प्रकृति	द्वेषि तत्र जीवे ।
एह दुइ भाष	मयबाने हवे ॥
मजनीय पवि	बाके कोल जन ।
अबन्ध हइवे	मनुष्य नान ॥
तार छाया मोरा	मुयल तफल ।
बार छाया सेधी	हइवे यबल ॥

बुद्धान्त में स्वस्व-सीता एक से हो प्रीर हो से एक होकर नित्य विद्यमान है 'इतना कोई पारवार नहीं है पंथा की बाप की नाति यह अक्षर प्रवाहित है।' संसार के 'बुद्धान्त' में राधा-कृष्ण का घोष-मोपी के रूप में अवतार प्रीर नर-नारी के रूप में सीता यह उस अत्राकृत-प्रम-रूप सहज वस्तु को मानुषी रूप में मनुष्य के सामने प्रकट करने के लिए ही है।' मर्त्य के बुद्धान्त को जो ऐतिहासिक सीता है वह नित्य-सीतावत्त्व का एक आभास देने के लिए ही हुई थी। 'दीपकोष्णम' ग्रंथ में कहा गया है कि राधा-कृष्ण की प्रकट बुद्धान्त-सीता 'स्वावेध' होकर— अर्थात् वेहारी होकर है। उस सीता का आस्वादन करने के लिए उन्होंने नर-नारी की 'रामय वेह' का आशय करके मर्त्य में अकतीर्ष होकर

(१) राधा-कृष्ण रस-प्रम एकुइ से हय ।

नित्य नित्य ध्वंस नाइ नित्य विराजय ॥

सहज-अपातना-तरव तदधी-रमय हवा धवीय साहित्य-
परियद् पबिकर, ४ अंड १ सं० १

(२) नित्यसीता कृष्णेर नाहिक पाठपार ।

अबिधाम कहे सीता येन पञ्जामार ॥

सहज-अपातना-तरव मुकुन्दबास प्रवीत, (मन्वीकृष्णनार
तन्वी प्रकटित) पु २८ पु० २४-२४ द्वेषिये ।

प्रीर नी—निज-अवित श्रीराधिक्य पाप्मा तन्व-मुत ।

बुद्धान्त नित्यसीता करये अङ्कत ॥ अही, ६१ पु ।

से कृष्ण राधिकार हयेन प्राणपति ।

अवास्तह नित्यसीता करे विवापति ॥ अही

(३) रति-विरास-पद्वति, कलकता विश्वविद्यालय में रचित पुस्तक-
२७२ नं ।

रस-प्राप्तावत किया है। सहजिया-यज्ञ के मतानुसार राधा-कृष्ण ने केवल बृन्दावत के गोपी-गोप के रूप में ही परम रस-रस्य का प्राप्तावत किया है ऐसी बात नहीं मनुष्य के धार से नर-नारी के रूप में ही वे कौतुक से विहार करते हैं।' तंत्र-मत में (हितु और बौद्ध दोनों में) जिस तरह हम देखते हैं कि प्रत्येक पुरुष स्वस्व में विभ-विग्रह और नारी अक्षि-विग्रह है इसी तरह सहजिया मत में प्रत्येक पुरुष-स्वस्व में कृष्ण विग्रह और प्रत्येक नारी राधा-विग्रह है। दूसरी ओर तंत्रादि में हम धर्मनारीस्वर की कल्पना देखते हैं। प्रत्येक जीव के धार यह धर्मनारीस्वर तत्त्व विराजमान है वेह का दक्षिण भ्रम विरा या इतर ओर काम भ्रम नारी मा अक्षि है। वैष्णव सहजिया लोगों में भी इसी प्रकार का विभाज दिखाई पड़ता है। कहीं देखते हैं बाहिनी भोग में कृष्ण और बाईं भोग में राधिका का निवास है यही वाहिना नेत्र साधक का स्वामकुण्ड और बाईं नेत्र राधाकुण्ड है।

नर-नारी के धार राधा-कृष्ण की जो सहज-रस की लीला है इस बात को अच्छी तरह समझने के लिए वैष्णव-सहजिया लोगों की स्वभाव लीला और भीष्म-लीला इन दोनों लीलाओं को भलीभाँति समझना होगा। प्राकृत जगत् में एक पुरुष का जो पुरुष रस है वह केवल बाहर का 'रस' है इस बाहर के रूप के धार इस रूप का साधक करके ही एक 'स्वस्व'

- (१) प्रकृत हृदये यदि कथं यत्ने ह्य ।
 क्वावेद्य हृदया तत्रै लीला प्राप्तावतय ॥
 सर्व पररस-रस्य करिया साधय ।
 रसमय वेह करि रस प्राप्तावतय ॥
 श्री(ही?)पकोज्ज्वल पुस्तक (कतकता विदविद्यालय १९४४ में) ।

(२) मनुष्य स्वयं करे कौतुक विहार ।
 बम्पक-कसिका, बंदीप-साक्षिय-परिवन्दु पत्रिका, १९७

(३) बाधे राधा बाहिले कृष्ण देखे रसिक जन ।
 नुद नत्रे विराजमान ॥

राधाकुण्ड स्वामकुण्ड नुद नेत्रे ह्य ।
 सजल नयन इतरे बाधे प्रेन प्राप्तावतय ॥

राधा-कतकवरास का 'सहजतराव';
 बंग-साक्षिय-परिचय, प्रितीय कण्ड ।

प्रवृत्तान करणा है। मनुष्य के अन्दर प्रत्येक पुरुष बाहरी रूप में कृष्ण स्वरूप' रह रहा है, उसी तरह प्रत्येक नारी के बाहरी रूप के अन्दर प्रवृत्तान कर रहा है उसका 'रामा-स्वरूप'। साधना की पहली धीर मुख्य बात है अन्दर के रास्ते इस रूप से स्वरूप में लौटना। स्वरूप में स्थिति प्राप्त करने के लिए नर-नारी का जो मिलन है वही प्रेमलीला है—उसी के अन्दर से विद्युत् सहज-रस का आस्वादन होता है। इसीलिए श्रीकृष्ण साधक के साधन-मार्ग में प्रवृत्तान मात्र है इस श्रीकृष्ण प्रवृत्तान से स्वरूप में ही उसकी अर्थात् स्थिति है।

इसीलिए सहजिया लोगों की पहली साधना केवल विद्युत् साधना है। जिस तरह सोने को बसा बसाकर निर्मल किया जाता है उसी तरह मर्त्य के प्राकृत बेह-मन को बसाकर शुद्ध करना पड़ता है। विद्युत्तम बेह-मन पर प्रवृत्तानित जो प्रेम है वह एक निकपित हेम' बन जाता है वही पूर्ण समरस है वही ब्रज का महाभाव-स्वरूप है। तो हम देखते हैं कि सहजिया लोगों के मत्तानुसार, मर्त्य और बुन्दावन प्राकृत और अमरकृत में जो अन्तर है, उसे भी साधना द्वारा दूर किया जा सकता है अर्थात् प्राकृत को ही साधना के द्वारा अमरकृत में अन्तर्हित और अमरकृतित किया जा सकता है। तब—श्रीकृष्ण स्वरूप हम स्वरूप श्रीकृष्ण' अर्थात् रूप के अन्दर ही स्वरूप की प्रतिष्ठा होने के कारण रूप और स्वरूप का अन्तर दूर हो जाता है। 'इस देश' और 'उस देश' में सहज मिलन हो जाता है। यही बात बंदीबास के नाम से मिलने वाले एक पद में बड़ी सूबी से कही गई है—

ते देशे ए देशे अनेक अन्तर

आजये सकल लोके ।

ते देशे ए देशे मिश्रामिश्रि भाजे

ए कथा क्यो ना काके ॥'

हम देखते हैं कि महाभाव-स्वरूप 'सहज' की जो बाध है एक बार में आम्बाद-रस ब्रह्म ही बाध में है आम्बाद-रस मित्य-बुन्दावन में रामा और कृष्ण ही इन दोनों तरफों की मूर्ति हैं। सहजियायक इन दोनों तरफों को पुरुष-मूर्ति तरफ कहते हैं। सहजिया लोगों ने नाना प्रकार से इस तरफ का परिचय देने की चेष्टा की है। 'रत्नसार' में कहा गया है—

(१) रत्नसार, कनकला विश्वविद्यालय की हस्तलिखित पीपी (नं ११११)

(२) सहजिया साहित्य मनीषीमोहन बनु सम्पादित, तं ८५ ।

(३) कनकला विश्वविद्यालय की हस्तलिखित पीपी ।

परमात्मार बुद्ध नाम बरे बुद्ध रूप ।
 एव मते एक ह्यप्या बरये स्वरूप ॥
 तादृं बुद्ध भवे ह्य पुरुष-प्रकृति ।
 सत्त्वोर मूल ह्य सेव रत्न-मूर्ति ॥
 ; ; ;
 परमात्मा पुरुष प्रकृति बुद्ध रूप ।
 सत्त्वकार-वर्ते करे रत्नेर स्वरूप ॥'

इस प्रसंग में हम बोलते हैं कि संन-पुराणादि में हम बृहदारण्यक उपनिषद् की यह ध्वनि सुनते हैं कि एक देवता ने अपनी रमणेश्वरा को चरितार्थ करने के लिए दो रूप धारण किये थे । यह विश्वास भारतीय धर्म-विश्वास में बुद्ध-मूल हो गया था और इसीलिए परवर्ती काल के छोटे-बड़े सभी धर्म-मठों के मन्दिर इसका स्पष्ट चिह्न दिखाई पड़ता है । 'दीपकोग्गल' ग्रंथ में कहा गया है—

एक ब्रह्म जलन द्वितीय माहिं भार ।
 सेव करने शुनि ईश्वर करेन विचार ॥
 अपूर्व रत्नेर सेव्या अपूर्व करण ।
 केमने हृदय इहा करेन भाजन ॥
 भाविते भाविते एक प्रथम हृदय ।
 मनते ध्यानम् हृया विमोल हृदय ॥
 अरु अंग हृते ध्यामि प्रकृति हृदय ।
 प्रसिद्धी राविका नाम ताहार हृदय ॥
 × × ×
 ध्यामि रत्नेर मूर्ति करिब धारण ।
 रत्न ध्यास्वामिब ध्यामि कर्त्या जतन ॥'

- (१) रत्न ध्यास्वामि नामि हृदया बुद्ध मूर्ति ।
 एव हेतु इत्य ह्य बुद्ध्य प्रकृति ॥
 प्रकृति ना हृदये इत्य सेवा धर्म्य मय ।
 एव हेतु प्रकृति भाव करये ध्याधय ॥

दीपकोग्गल-ग्रन्थ पीठी ।

- (२) दुर्गतीय—सेव कर्षते करे कुञ्जते विहार ।
 सेव इत्य एव राया एतद् ध्यास्वामि ॥
 राया हृदये निष्कार रत्नेर स्वरूप ।
 अतएव बुद्धरूप ह्य एक रूप ॥
 राविका-रत्न-कारिका, बंग-साहित्य-परिचय, ३रा अंश ।

ईश्वर-सहजिवा भोगों के मग में परम 'एक' की यह जो दो भागएँ राधाकृष्ण के मन्दर से प्रवाहित हुईं मरव के मर-नारी के मन्दर भी उसी वाद्य के दो प्रवाह बन रहे हैं। प्राकृत गुण के संस्पर्श में यह विभक्त हो गया है, साधना के द्वारा इस प्राकृतगुण-संस्पर्श को दूर कर देने से ही मर-नारी का यह प्रेम फिर प्रमाकृत ब्रज की वस्तु बन जाता है। मर-नारी के मन्दर सहज प्रेम की जो दो वागएँ बह रही हैं उन्हें नियन्त्रित करके फिर एक कर देने से वज्र के गुण-श्रेण का प्राप्तपदन होता है। 'बंभीषास के एक मीठ' में देखते हैं—

प्रेम सरोवरे बुझि वास ।
 धास्वादन करे रतिक वास ॥
 बुझ मारा बज्जग एकजे पजे ।
 तज्जग रतिक गुणन ईजे ॥

इन दोनों वागएँ के प्रतीक पुरुष-प्रकृति या कृष्ण-राधा को सहजिया सोचो न 'रस' और 'रति' कहा है। 'रस' शब्द का तात्पर्य है धास्वादन रूप रस-स्वरूप और रति है रस का विषय। पारिभाषिक तौर से कृष्ण-राधा का 'काम' और 'मदन' कहा गया है। 'काम' शब्द का अर्थ है 'प्रेम-स्वरूप'— जो प्रेम के धास्वक को धरती और धाकपित करता है और 'मदन' है प्रमाकृत का कारण-स्वरूप। साधना के क्षेत्र में नायक ही रस या 'काम' है नायिका 'रति' है। यही एक 'रस-रति' या 'काम-मदन' ही पक्षित नायिका-नायक का रूप धारण कर नित्यकाल विनाश कर रहे हैं।

(१) परस्परे नायक नायिका धनय रति ।

स्वात-सिद्धबाजे हय बजेते बसति ॥

रति-विनाश-प्रकृति,

(हस्तलिखित पोपी-कमकता विश्वविद्यालय)

और—रतिर स्वरूप औराशिका मुन्दरी ।

कामेर बित्त धासर्धय बपेर लहरी ॥

रायमपी कमर, हस्तलिखित पोपी क वि ५।

(२) जय जय सर्वादि वस्तु रहराज काम ।

जय जय सर्वाजेठ रस नित्य धाम ॥

प्राकृत प्रमाकृत वास महा प्रमाकृतै ।

विहार करिछ तुमि निज स्वेच्छामते ॥

स्वयं-काम निरय-वस्तु रस-रतिमय ।

प्राकृत प्रमाकृत धामि तुमि म्हासय ॥

एक वातु पुरुष प्रकृति जय इहवा ।

विनासह् शुभय करि बुझ काया ॥

सहज-वपस्तना-तरण, तराशौरपन-हर, बपीक-
 साहित्य-परिषद् परिषद, १९३५, ४४ बंभिया ॥

छहबिया सोम 'नायिका-मजन' की बात कह गये हैं। इस नायिका-मजन का तात्पर्य है राधा-मजन। साधक बनने के लिए प्रत्येक नायक-नायिका को अपने प्राकृत-नायक-नायिका के रूप के अन्तर कृष्ण-राधा के स्वस्व की उपसखि करनी होगी। यह उपसखि एक बारपों सम्भव नहीं है इसलिए 'धारोप'-साधना करनी पड़ती है। धारोप-साधना का अर्थ है जब तक रूप के अन्तर स्वस्व की पूर्ण उपसखि न हो तब तब स्वस्व को रूप के अन्तर 'धारोप' कहना अर्थात् जब तक नायक-नायिका रूप को सम्पूर्ण रूप से कृष्ण-राधा न उपसखि कर सकें तब तक नायक-नायिका एक दूसरे के अन्तर कृष्ण-राधा का धारोप कर साधना करते रहने। श्रीवास ने अपने प्यारिमक माने में इस धारोप को ही श्रेष्ठ साधन कहा है—

छाड़ि जपतप साधहु धारोप
एकता करिया मने ।

रजकिनी रामी ने अन्तर उन्होंने पहले राधिका का धारोप कर साधना की। इस धारोप-साधन में निश्चिन्ता होने पर रजकिनी रामी रजकिनी रामी नहीं रह जाती। वह सभी प्रकार से पूर्ण राधिका का विग्रह बन जाती है। इसीलिए श्रीवास के माने में देखते हैं—

स्वस्व धारोप धार रतिक भापरतार
प्राप्ति हुब मदनमोहन ।

× × ×
से बेगैर रजकिनी हुय रतेर धबिकरती
राधिका स्वस्व तार प्राप ।
तुमि तो रमभोर पुष सेहु रतेर कल्पतब
तार सने बास अमिमान ॥

—नीति धारोप साधना का उद्देश्य है—

क्येते स्वस्व हुइ एहु करि
मिघान कोरिया बुडे ।
सेइ से रतिते एकात्मकरिते
तने से धोमती पावे ॥

- (१) तुलनीय—ए रति ए रति एकम करिया
सेजाने से रति बुडे ।
रति रति हुडे एकत्र करिते
सेजाने बेकिते पावे ॥
स्वस्व धारोप यह रस-रूप
सकल साधन पार ।
स्वस्व बुनिया साधना करिते
साधक हवते पार ॥

इस में एकबार स्वल्प का आरोप करके स्व-स्वल्प को कभी जिस नहीं समझना चाहिये—

भारोस्विया स्वल्प हृद्यत्वात्
कभु ना भवतिषो मिस ॥

इस मिस बीच के मिस जाने पर आरोप के अन्तर से स्वल्प का मन्त्र कर पाने पर ही सच्ची उच्चारण सम्भव होती है—

भारोस्वये भविते चारिते
वाहये धीकती एया ॥

नामिका के अन्तर से उच्चारण की यह उपलब्धि—स्वल्प के अन्तर से स्वल्प उपलब्धि सहज नहीं है। कमल के प्रत्येक अक्षर-परमाणु से जिस तरह कमल की सुगन्धि प्रसिद्धि मात्र से मिमी-बुली रहती है एक नामिका के प्रत्येक अक्षर-परमाणु के अन्तर भी इही तरह उसका स्वल्प दिना-बुना रहता है। स्वल्प को छोड़कर केवल अन्वय मात्र ही बन्धन है, अक्षर के अन्तर स्वल्प की उपलब्धि ही मुक्ति है।

स्वल्प स्वल्प धमेके स्वय ॥

धीकतीक कभु स्वल्प नय ॥

॥ ॥ ॥ ॥

पदपंथ ह्य तद्धार भति ॥

तद्धारे चिहिते कर सकृति ॥

॥ ॥ ॥ ॥

स्वल्प बुधिते मानुष पावे ॥

भारोस्वये चारिते नरके चारवे ॥

यद्यत्काले साधन में इन दोषों से कि मनुष्य को सहजिया लोगों ने सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया है। 'अन्तर उपरे मानुष सत्य साहाय्य उपरे भाई'—बंजीवास की इस एक उक्ति के अन्तर से सहजिया लोगों की मूल धारणा प्रकाशित हुई है। मनुष्य को छोड़कर कोई भी ब्रह्मण्य नहीं है—तीर्थार्थ मानुष्य की भक्ति—भक्तिमती प्रेमस्वपिनी नाटी के अन्तर से ही उच्चारण का प्रास्तावक करने के सिवा इतरय रास्ता नहीं है। इस उच्चारण का प्राधि प्कार धीर उपलब्धि सम्भव हुई थी बंजीवास के लिए, जो बंजीवास (इसका ऐतिहासिक सत्य कल्प ही क्यों न हो) स्व से रह से परिपूर्ण प्रेम की बीवी-जागती मूर्ति रजिनी रानी की कहु सके थे—

शून्य रत्नकिनी रामी ।
 धो ह्रस्वि चरण श्रीतल जामिया
 शरण महानु ग्रामि ॥
 तुमि बेद-बाविली हरेर घरणी
 तुमि से नयनर तारा ।
 तोमार भजनने जितम्पा याजनने
 तुमि से गलार हारा ॥
 रत्नकिनी रूप किशोरी स्वरूप
 कामार्थ नहि ताप ।
 रत्नकिनी-श्रेम निकमित हेम
 बड़ चञ्डीवस्त पाप ॥

धनया—

एक निवेदन करि पुनः पुन
 शून्य रत्नकिनी रामी ।
 युगत चरण श्रीतल बेबिया
 शरण महानाम ग्रामि ॥
 रत्नकिनी-रूप किशोरी-स्वरूप
 कामार्थ नहि ताप ।
 ना बेबिले मन करे उज्ज्वल
 बेबिले बराध बुझाय ॥
 तुमि रत्नकिनी ग्रामार रत्नणी
 तुमि ह्यो मातृपितृ ।
 जितम्पा याजन तोषारि भजन
 तुमि बेदमाता पापणी ॥
 तुमि बागुबाविली हरेर घरणी
 तुमि से गलार हारा ।
 तुमि स्वर्ग शर्य पाताल पर्वत
 तुमि से नयनर तारा ॥

यह रत्नकिनी रामी ही राजातल की मूर्त प्रतीक है इसके अन्दर से ही राजातल आस्था होना है धन्यपा नहीं । बंगाल के सभी नासिका-भजन या किशोरी-भजन के पीछे यही राजातल है । अरु ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि पुण्यार्थ के युग में अिष तरह अिष-भक्ति पुण्य-भक्ति अिष-भक्ती मिसकर एक हो गए थे अह्निया मठ के अन्दर

उसी तरह रामा-कृष्ण सक्ति-धर्म प्रवृत्ति-मुख्य लोक-विश्वास के धर्म मिलानकर एक ही गए हैं।

इसी प्रसंग में हम एक और बात देखते हैं। हम पहले देखे आए हैं कि पौड़ीय वैष्णवों ने ध्रुव में परकीया-बाद ग्रहण नहीं करना चाहा था कानोस्वामी के मत को लेकर विवाद रहने पर भी श्रीबोस्वामी ने अत्यन्त स्पष्टरूप से राधापूज्य के लेख में परकीयावाद को अस्वीकार करके परम-स्वामीबा शब्द को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की थी। लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता गया जैसे-जैसे वैष्णवों के धर्म परकीयावाद का प्राचाल्य दिखाई पड़ता है। विविध नौवीं वैष्णव धर्ममत के धर्म परकीयावाद के प्राचाल्य का एक बड़ा कारण यह लगता है कि उपर्युक्त सहजिया मत का इस पर परेस प्रभाव है। इस सहजिया-साधना में प्रेम-साधना के लिए उपयुक्ततम नायिका है परकीया नायिका। इसलिए सहजिया मत मानता था कि अग्रिम विद्यापति श्रीबास से लेकर बुन्दारन के भोस्वामिया तक सभी ने किन्हीं विधेय परकीया नायिका के साथ सहज साधना की है। सहज-साधना में सूक्ष्म नायिका उचिता-म्बक्या है और वह स्वभाव परकीया है यही मतवाद परवर्ती काम में लगता है उचिता को परकीया के रूप में मञ्जूती से प्रतिष्ठित करने में सहायक हुआ। यह बात बकर है कि पूर्ववर्ती और परवर्ती साहित्य में उचिता तथा परकीया नायिका के रूप में वर्णित हुई है इस बात को हम पहले कहें आए हैं। हमारा विश्वास है कि 'साहित्य' की यह धारण और सहजिया-साधना का प्रभाव इन दोनों ने मिलकर परकीयावाद को अक्षिप्तानी बना दिया था।

त्रयोदश अध्याय

राधावल्लभ सम्प्रदाय की राधा और बंगाली बङ्गव

कवियों का 'किशोरी' तत्त्व

हिन्दी वैष्णव-कविता और बंगला वैष्णव-कविता के तुलनात्मक विवेचन में एक बात रिश्ता पड़ती है। हिन्दी वैष्णव-कवियों में 'राधा-वन्दन' सम्प्रदाय एक विशेष स्थान अधिकृत किया हुआ है। इस सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण इन दोनों तत्वों में राधातत्त्व को जो प्रधानता दी गई है वह राधा-वाद के अन्विकारा के इतिहास में विशेष रूप से सन्नगीय है। हमने गौड़ीय वैष्णवों के राधातत्त्व पर विचार करते हुए देखा है कि 'मत्स्यपुराण' के मुक्त विवेक का कारण। राधा ही प्रथम-व्यक्ति है इसलिए राधा-कृष्ण में गौड़ीय वैष्णवों ने बहुधा राधा को ही प्रधान धनसम्बन्ध माना है। गौड़ीय वैष्णव-धर्म और गौड़ीय वैष्णव-साहित्य में राधा-राधा-वन्दन राधा-वन्दन ही बहुधा श्रीकृष्ण के परिचय है। हमने प्रसंग-वश इस बात का पहले उल्लेख किया है कि 'जय राधे' ही कृष्ण-वन्दन के वैष्णवों का मारा है। प्रथम एक बंगाल में बिलने वैष्णव मिश्रारी चर-चर-मीठ-मीठ के लिए निकलते हैं वे भी 'जय राधे' कहकर ही गृहस्थों से मीठ का निवेदन करते हैं।

प्रसिद्ध श्रीराधापुत्रानिधि नामक ग्रंथ में जो सम्प्रदाय श्री प्रबोधानन्द-चरणाती रचित राधिका के प्रेम और महिमा का बड़ी-बड़ी से वर्णन किया गया है। वही राधिका के वर्णन में देखते हैं—

प्रमोदमातृकसीमा परमरक्षकमन्वरेकसीमा-
 सौन्दर्यकलीमा किमपि नवकयो क्यलाकल्पसीमा ।
 मौलामाधुर्यसीमा निजजनपरशौभाग्यवस्तुस्यसीमा
 सा राधा सौवर्णसीमा अयति रसिकसाकेतिमाधुर्यसीमा ॥
 ध्रुवप्रेमवितासुखमवनिधि संशोरातोभानिधि
 वेदधीमधुरांगमंगिनिधि सावधुस्यप्रिधि ।
 श्रीराधा अमृताम्बुहाररत्निधि- कर्णवर्णनीलानिधि
 सौन्दर्यकलुषानिधि नपुण्ये सर्ववन्तुतो निधि ॥'

(१) श्री हरिदास बात के श्री श्रीगौड़ीय वैष्णव साहित्य में उद्धृत ।

उषा के बारे में इस प्रकार के बहुतेरे वर्णन मिलते हैं। नीलकण्ठ मुखोपाध्याय द्वारा प्रकाशित बंशीदास की पद्यावली में हम कृष्ण को भी उषा का अपूर्व महिमा-कीर्तन करते देखते हैं। वहाँ कहा गया है—

राह, तुमि से प्रामार गति ।

तोमार करबे रसतल्ल जागि

गोकुल प्रामार स्थिति ॥

प्रामार एक बाची सुन बिनोदिनी

बया ना छाड़िप्रो मोरे ।

भजन सावन लिछइ ना जानि

छवाइ भाबि है तोरे ॥

भजन सावन करे छोइ बन

तहारे सवय बिधि ।

प्रामार भजन तोमार करब

तुमि रसमइ निधि ॥

छिर—

जयते तोमार नाम बंशीधारी अनुपाम

तोमार करबे परि बात ।

तुमा प्रेम साबिपोरी छाइनु गोकुलपुरी

बरजर्मबले परकास ॥

धनि, तोमार महिमा जान के ।

अबिरान युग बात मुन बाइ अचिरत

गाइया करिखे भारि होय ॥

अपना—

प्रेमेते राधिका स्नेहेते राधिका

राधिका प्रारति पाये ।

राबारे भजिया राधाकान्त नाम

येयेछि अनेक प्रामे ॥

जानते राधिका ध्यानते राधिका

बपेते राधिकामप ।

सबबि राधिका स्वप्नेह राधिका

सबब राधिकामय ॥

(१) दूसरे बर में है—

राबारे भजिया

राधाकान्तनाम

येयेछि अनेक प्रामे ॥

इन सारे पदों में राधिका की ही महिमा प्रकट होती है, इसके प्रभावानुसार बंटीबास के किशोरी-सम्बन्धी पद हैं उन्हें भी स्मरण करना चाहिये ।

उठिते किशोरी बसिते किशोरी
 किशोरी गलार हार ।
 किशोरी मजन किशोरी पूजन
 किशोरी चरण सार ॥
 धयने स्वपने गमने किशोरी
 भोजने किशोरी धाम ।
 करे करे बाँधी फिरि बिबा निधि
 किशोरीर अनुराधे ॥
 किशोरी चरणे पराज संपिधि
 भन्तेते हृदय भरा ।
 देखो हे किशोरी अनुगत जन
 करो ना चरण-दाढ़ा ॥
 किशोरीर दास ग्रामि पीतदास
 इहाते सन्नेहु चार ।
 कोटि पुय यदि ग्रामारे मजये
 बिचल नजन तार ॥

बंटीबास के प्रचलित पदों में किशोरी-भजन के इस तरह के बहुतेरे पद मिलते हैं इन पदों को किस बंटीबास ने लिखा या इसके बारे में निर्दिष्ट नहीं है । लेकिन हम इस बात को जानते हैं कि बंगाल के ईश्वर सम्प्रदाय में 'किशोरी-भजन' का एक सम्प्रदाय बन गया है । इस सम्प्रदाय में साहजियों की तरह पुरुष में कृष्ण का आरोप और स्त्री में किशोरी का (राधा का) आरोप करके साधना की प्रथा प्रचलित है यही में लेकिन कृष्ण मिमाकर सभी अवसथों में 'किशोरी' की प्रभावता देखी जाती है ।

उत्तर भारत के 'राधा-वस्तन' सम्प्रदाय के प्रवर्तक वे जोसार्द हित हरिद्वार । इनके आधिपति काल के बारे में पंडितों में मतभेद है । बहुत संभव है कि ये ईसा की सोमहनी पाठाधी के पहले हिस्से में हुए थे । हितहरिद्वार राधाकृष्ण के दुबसरूप के ही साधक थे । अपनी कविता में भी उन्होंने इस युगल-भेद का ही दाव माया है । लेकिन सभी मानों के धारक से भी राधा की प्रभावता ने ही इस सम्प्रदाय की साधना और साहित्य को एक विशेषता प्रदान की है ।

कहा जाता है कि हितहरिबंध गौड़ीय शास्त्रण से। हितहरिबंध द्वारा प्रचलित इस राजा-वस्तुन सम्प्रदाय के साधन-संज्ञक के पीछे अपना किसी कोई धार्मिक मतवाद का इसका पता नहीं चलता। कम से कम इस विषय पर कोई सामाजिक प्रश्न नहीं मिलता है। हितहरिबंध के बाहर भी इस सम्प्रदाय में भी प्रवेश मकत करि हो गए हैं। उन्होंने भी गाने सिखाने के प्रसारा उत्साहपूर्ण नहीं किया है। सामाजिक भी ने अपने मकतमात्र प्रश्न य कहा है श्रीहितहरिबंध गोसाईं की मजम-रीति स्पष्ट रूप से कोई नहीं जानता है। वे श्रीपदा के चरण को ही बुझता से हृदय में चरण करते वे श्रीग पुगन के कजकेलि का इत्तल श्रीर वास्तुवाहन करते से। जो लोग इस साधन-मार्ग का प्रवक्तव्यन करते हैं केवल नहीं इस सम्प्रदाय क मत को मनीषीति जानते हैं, दुसरे नहीं जान सच्ये।

श्रीराधाचरण प्रयाग हूरे प्रति सुबुद्ध उपासी।
 कुंड केलि इत्यती तहीं श्री करत लबासी।
 सधनु यहा प्रसाद प्रसिद्धता के धमिचारी।
 बिधि निषेध नहि बाध धन्य उत्कृत कतधारी।
 श्रीपदा सुकन पच अनुसरी सोइ भले पहिचानिहै।
 श्रीहरिबन्ध गुसाईं भजन की रीति सङ्कत कोइ जानिहै।

इत सम्बन्ध में त्रिमासा श्री ने कहा है, श्री हितजी की रति को मासों में कोई एक जानता है, वे राजा को ही प्रदान मानते हैं उसके बाद कृष्ण का ध्यान करते हैं—

श्रीहित्नु की रति कोऊ जाननि न एक जाने।
 रत्नारहि प्रदान मान पावे कृष्ण व्याहारे ॥

कहा जाता है कि गोसाईं श्री को अपने में श्रीपदा ने ही दीक्षित किया था। 'हरि रचना राजा-राजा रट'—यही गाना राजा-वस्तुन सम्प्रदाय की विशेषता है।

राजा श्री यह प्रदानता क्यों है? हितहरिबंध के 'श्रीहितशीपरी' प्रश्न के एक पद में देखते हैं—

सुनि शरी बचन प्रीतीनी राजा ।
 तै पायी रससिन्धु प्रवाधा ॥
 तू रूपवानु पो की बेटी ।
 मोहननाल रसिक हँसि भेटी ॥

जाहि बिरंभि जमापति नाये ।
 तारे ते बनफूल बिनाये ॥
 ओ रस नेति-नति श्रुति भारण्यो ।
 ताकी धमर-मुखा रस भाष्यो ॥
 सेरो रूप बहुत नहि धार्ये ।
 हित हरिबंध कछुक अनु गाथ ॥

यही राधिका की अपार महिमा है। राधा के बारे में इस तरह की कविता अष्टछाप के कवियों से एकदम नहीं मिलती ऐसी बात नहीं। पुराण के एक पद में बेलते हैं—

नीलाम्बर पहिरे तनु भामिनि अनु धन में समस्त है बामिनि ।

जग नायक अणवीन पिपारी जगत बननि अपरानी ।
 मित बिहार गोपालनाथ संघ बुन्दावन रजधानी ॥
 धमतिन को गति भक्तन ओ पति श्रीराधा पद मंपलवानो ।
 अक्षरब सरनी भव भय हरणी बेद पुराण बखानो ॥
 रसना एक नहीं सत कोटिक सोमा धमिल अपारी ।
 इण्णमसिद्ध शीर्ष श्रीराधे नूरदास बलिहारी ॥

परमानन्द दास ने कहा है—

जनि यह राधिका के चरण ।
 हें नुमय छोड़त अति सुकोमल कमल जैसे चरण ॥
 रतिकलास मत मोक्षकारी बिछू सागर तरत ।
 बिचछ परमानन्द छिन छिन स्यामजी के चरण ॥'

राधा-वस्तुमियों ने हमी राधा की कृपा पर ही अधिक जोर दिया। बुन्दावन के अनन्त प्रेम की विचित्र लीला में प्रवेश करने का एकमात्र उपाय है श्रीराधिका की कृपा। इस कृपा के न होने पर सारा प्रेमरस्य 'धम्य' रहता है।

प्रथम जबमति प्रथमई श्रीबुन्दावन अति रम्य ।
 श्रीराधिका कृपा बिनु सबके मवनि धम्य ॥

हित-हरिबंध-रचित युक्त-सीता मास्वाहन के अनेक सुन्दर पद हैं। एक पद में पाते हैं, सबसे सशामधिर में नूतन-मिलन हो रहा है और

(१) दीनदयाल पद का संप्रह।

उससे प्रभुर मुक्त बरस रहा है। मोटी राधा श्रीर श्याम कृष्ण प्रभिराम प्रेमभीसा में भरपूर है—हितहरिबंस इस बीसा-याग में उगमच है।

घान्धु प्रमत्त सतामदिर में
 मुक्त बरपत अति युगतबर ।
 श्रीर श्याम प्रभिराम रंन रंन भरे ।
 अदकि लदकि पम परत अचनि पर ॥
 मुक्त मुमकुम रंजित मानाबनि ।
 सुरत नाब भीस्याम कामबर ॥
 प्रिया प्रेम अक अस्तंहुत चित्रित,
 अचुर शिरोमनि निज कर ॥
 बम्पति अति अचुराग मुबित कल
 पाग करत मन हुरत परस्पर ।
 अ भीहित हरिबंस प्रसंस परात्मन
 पाइन अति गुर रैत मधुरतर ।

इस युगत प्रेम के हितबस-रचित एक श्रीर मधुर पद में बसते हैं—

बोई बोई प्यारो कर सोइ सोइ मोहि भाबे ।
 भाबे मोहि बोई सोई सोई कर प्यारे ॥
 मोको तो भावती ठीर प्यारे के ननन में ।
 प्यारो भयो चाहे मेरे नननि के तारे ॥
 मेरे तो लन-मन-ब्रान्हें में प्रीतन प्रिय ।
 अपने कोटिक प्राण प्रीतन मो सों हारे ॥
 जे थोहित हरिबंस हुंल हुंसिनी साबल गौर ।
 करी कौन करे अस तरगिनि प्यारे ॥

हरिबास व्यास राधा-वस्तन सम्प्रदाय के प्रसिद्ध कवि हो गए हैं। कहा जाता है कि उन्होंने हितहरिबंस का शिष्यत्व ग्रहण किया था। इनकी कविता में बसते हैं जो व्यास जी के शिष्य हैं उनका परिचय 'राधा-वस्तन' है—

राधा-वस्तन मेरी प्यारी ।
 ब्रतपी बनह उन्होंने कहा है—
 रसिक अनम्य हमारी आति ।
 कुतरेबी राधा, बरसानी खेरी, बबबतिन सों पति ॥

राधा-वस्त्रमियों की दृष्टि में बुन्दावन ही सबसे 'सच्चा-वन' है, क्योंकि यहाँ स्वयं लक्ष्मी भी श्रीराधा की चरणरेजुसीवा है।—

बुन्दावन लीचो घन भैया ।



जहाँ श्रीराधा चरणरेजु की समता लेति बसैया ॥

व्यास के एक ग्रीर मोठ में देखते हैं—

परम वन रामे-नाम धरार ।

जाहि श्याम मुरली में डेरत, सुमिरत चारंवार ॥

बंन-मंत्र धी बेद-तंत्र में लखे तार की तार ।

धीतुक प्रपट क्रियो नहि पातें जानि सार की सार ॥

कोटिन क्य धरे मंड-मंडन तऊ न पायी पार ।

व्यासरास धर प्रगट बजागत डारि नार में नार ॥

इस राधा-वस्त्रम सम्प्रदाय में श्रीराधा ने सैरा स्वान अधिकार किया था इसका परिचय ऊपर लिखे पद से मिलेगा। प्राकृत नाम छोड़कर धरा कृत नाम में प्रवेश करने के लिए श्रीराधा ही राधा-वस्त्रममय की तरणी थी। इसीलिए व्यास ने इस राधिका के बारे में लिखा है—

सदकति किरत बुवन-मरमती अंपक-बीबिन अंपक बरनी ।

रतनारे अनियारे लोचन लखिसें लामति हे नर हरिनी ॥

धस भुजा परि लटकत सालाहि, निरखि बके मरगज पति करनी ।

बुन्दाबिपिन बिनोबहि देखत, मोड़ी बुन्दावन की धरनी ॥

रास-बिलास करत जेह मोहन बनि बनि बनि बनि है

बहु बरनी ।

श्रीवृषनाभु नंदिनी के सम व्यास नहीं त्रिभुवन मूर्ते तरनी ॥

कहा जाता है कि भुवरास स्वप्न में हितहरिबंध के द्वारा दीक्षित हुए थे। महाभाव-कपिणी राधा का वर्णनात्मक भुवरास का लिखा एक पद हम पहले ही उद्धृत कर चुके हैं। इसी भुवरास ने अपने एक बोध में कहा है—

पजरेबी के प्रेम की बेपी बुजा धति हरि ।

ब्रह्मादिक बाधत रहुं तिनके पर की बुरि ॥

(१) ब्रह्मात्मक मुक्त-सार—स्वल्प इत्यादि। इस ग्रंथ के पृष्ठ पर पाद-टीका देखिये।

सूर्य विद्य प्रकार वर्णनादि में प्रतिबिम्बित होता है उसी तरह एक ही शक्ति विभिन्न देवताओं के आधार से आधारभूता हुई है। पराशक्ति को इस विशेष-विशेष आधार में विशेष-विशेष रूप से धारण की समता ही सच्चा शक्तिमत्त्व है। इसीलिए शक्तिमान् का आशय करके शक्ति का अर्थस्वान नहीं शक्ति को धारण करके ही शक्तिमान् का अर्थस्वान होता है। कूर्मपुराण में कहा गया है—

सर्वदेवास्तदेवेषु निविचरत ब्रह्मादादिभिः ।
एकं सर्वपतं सुवतं कृत्स्नमक्षरं शुभम् ॥
अनन्तमक्षरं ब्रह्म केवलं निष्कलं परम् ।
योमिन्नस्तत् प्रपश्यन्ति महादेव्या परं पदम् ॥
परात्परतरं तत्त्वं साक्षरं शिवमभ्युतम् ॥^१

प्रचलित पुराणादि में शक्ति-आधार्यकार की एक बात का ध्यानात्माना प्रकार से मिलता है पद्मपुराण के अन्तर्गत पातालखंड में हम श्रीकृष्ण की उक्ति देखते हैं—

अहं च सज्जिता देवी राक्षसा या च वीर्यते ॥
अहं च बालुदेवाक्ष्यो स्तिव्यं कामकलात्मका ।
सत्यं योषित्-स्वक्ष्योऽहं योषित्-अहं सज्जता ॥
अहं च सज्जिता देवी पुंस्या कृष्णविग्रहा ।
आश्वयोत्तरं नास्ति सत्यं सत्यं हि नारद ।

ये पाठों का ही लिखी हुई है इसे निविचर रूप से नहीं बताया जा सकता। लेकिन यहाँ हम देखते हैं कि कृष्ण स्वयं ही योषित्-स्वक्ष्य है और सज्जिता-देवी-रूपा जो आद्याशक्ति परममत्त्व है वही पुंस्या हाकर कृष्ण-विग्रहा हो उठती है। तो इस मत में राजा कृष्ण से उद्भूत नहीं है कृष्ण ही राजा के रूपान्तर है। 'शक्तिरसंपदं' में देखते हैं—

कदाचिद्दाम सज्जिता पुंस्या कृष्णविग्रहा ।
लोक सम्बोहृणार्याय स्वक्ष्यं विद्यती परा ॥
कदाचिदाद्या श्रीकाली सैव तारास्ति पार्वती ।
कदाचिदाद्या श्रीतारा पुंस्या रत्नविग्रहा ॥

(१) तत्रैतत्त्व प्रथम खंड से उद्धृत।

(२) केदारनाथ भक्तिविभोद-सम्पादित संस्करण।

इसी शक्ति-भाषान्यथा मे सुमोक्षित विवर्तन के अन्दर से श्रीराज के नामांकित पक्षों में किशोरी प्राणायाम को जन्म दिया है, राधा-वस्त्रम सम्प्रदाय के अन्दर राधा प्राणायाम का रूप दिया है। इस प्रसंग में यह भी स्मरण किया जा सकता है कि 'राधास्वामी' सम्प्रदाय के प्रवर्तक साधक विवदयाम (जन्म १८२८ ई.) का जपमंत्र था 'राधास्वामी'। इसके बारे में कहा गया है—“सन्मुख कबीर ने भगम की भाषा को लिखा दिया है, भगम की भाषा को उलटकर स्वामी के साथ मिठाकर स्मरण करा। 'भगम की भाषा' अर्थात् भगम के शक्ति-प्रवाह को उलटने पर 'राधा' होता है, उस भगम की शक्ति भाषा को उलटने पर परम इष्ट 'राधा-स्वामी' मिलेगा।



चतुर्दश अध्याय

वल्लभ-सम्प्रदाय के हिन्दी-साहित्य में राधा

हम ऊपर विभिन्न प्रसंगों में श्रीराधा के बारे में जितना विवेचन कर आए हैं उस पर एकत्र विचार करने पर बंगला-साहित्य में बलिष्ठ राधा के बारे में कृम मिलकर एक धारणा होती। ब्रह्म के परिशिष्ट में ब्रिये गए विवेचन में इस प्रसंग की कृष्ण बातों पर विचार करेंगे। हम पहले जो कृष्ण ब्रह्म आए हैं उसके आधार पर कहा जाता है कि पहले प्रबलतः साहित्य का अवलम्बन करने ही श्रीराधा का विचार हुआ है उससे साव-परोक्षमात्र से ब्रह्म के सम्बन्धित होने पर भी वहाँ ब्रह्म का कोई स्पष्ट स्फुरण नहीं है। साहित्य-भारत के अन्दर से क्रमविकसित श्रीराधा ही क्रमशः अपने विभिन्न कविवरिणों के परिमंडल में विभिन्न रम्य ब्रह्म-विश्वास और आर्धनिक-रूप का वर्णन-प्रवृत्त प्रवृत्त करने लगी और इसी के अन्दर से प्रेम-ब्रह्म की केन्द्रबिन्दु राधा दिन-दिन 'कान्ताशिरोमणि' के रूप में परिपूर्णता प्राप्त करने लगी। वैतन्वयुग में ही 'कान्ताशिरोमणि' के रूप में श्रीराधा की पूर्ण परिष्कृति हुई।

राधा के बारे में पहले विचार करते हुए हमने सिखा है कि भारतीय प्रेमिक कवि-मानस में परिपूर्ण नारी-श्रीराम्य और परिपूर्ण नारी-प्रेम-भाष्य के अवलम्बन से जिस अपरूप मानस-प्रतिमा का सूजन हुआ था राधा के अन्दर उसी की सुकृमार किन्तु सुनिष्ठुन प्रसिद्धि-विशाल पड़ती है। बुद्धावन की पृष्ठभूमि में साहित्य के अन्दर वह और भी उच्चतर और महि मान्वित हो उठी है। वैतन्वयुग और वैतन्वोत्तर युग में राधा के अन्दर प्राकृत और अप्राकृत का एक अपूर्ण मिलन हुआ है। इसके केवल रस में स्वार की ही विविधता नहीं हुई है उद्गाति के अन्दर से यहाँ रस के स्वरूप के अन्दर भी विविध विविध परिवर्तन हुए हैं। लेकिन इन युगों में भी वह 'काम-श्रीराम-नाम्न' ही हो या आस्तिक-आत्मन्वय के रूप में ही हो प्राकृत में ही राधा की प्रतिष्ठा है, ब्रह्म-संग पर अप्राकृत के स्पर्श से उनका असीम महिमा का विस्तार होता है। वैतन्वयुग में और वैतन्व के परवर्ती युग में अनेक कवियों ने प्रत्यक्ष रूप से वैतन्वयुग से अनुप्राणित होकर राधा-प्रेम के सम्बन्ध में कविताएँ लिखी हैं। संस्कृत और प्राकृत वैतन्वय कविता के बाद पहले पहल भारतीय ब्रह्मनामा में ही राधा-रूप की प्रेम-सम्बन्धी वैतन्व

कविता पदद्वयीं सदी के (श्रीद्वयीं ?) शैविसी के कवि विद्यापति और बंगमा के कवि बंड़ीदास की रचना में पाते हैं। हमने पहले ही विविध प्रसंगों में धामास देने की चेष्टा की है कि विद्यापति एक विदग्ध रसिक कवि थे। धर्ममठ में वे वैष्णव थे या नहीं इस विषय में संदिग्ध करने के काफी उर्ध्व-संगत कारण हैं। संक्षिप्तारम्भ में विद्यापति का ज्ञान प्रपाङ्ग और सूक्ष्म था। विद्यापति-रचित सलीखिमा के पदों से पता चलता है कि कवि रति-रस्य में कितने डूबे हुए थे। बंड़ीदास के बारे में कहना पड़ेगा कि धर्म 'श्रीकृष्ण-श्रीरतन' को ही 'धामि और प्रहृषिम' बंड़ीदास की सच्ची रचना मान में तो कहना पड़ेगा कि वहाँ राधा केवल मामूली प्रेम की ही मूर्ति नहीं है। मामूली प्रेम में भी जो एह-स्वप्न धमाङ्कित 'बमार' जगदाम है 'श्रीकृष्ण-श्रीरतन' की रथा के बहुलाय के धर्मर वही बमार मूर्तिमान् हो उठता है। बिच्छू के स्तर पर धारक ही उसमें मूर्ध्मता धार है।

हम पहले देख आए हैं कि राधा के बारे में जो दो-एक पलोक पुरुषों में मिलते हैं वे संक्षिप्त हैं। लेकिन उन्हें सच्चा मान लेने पर भी राधा का धर्मराम्यन करके छोटे-बड़े धर्मराम्यन जगदामाओं में प्रेमलीला का जो विस्तार हुआ है पुरुषाधिक में उसका जस्तोक नहीं है। केवल ब्रह्मवैवर्तपुराण के धर्मराम्यन संस्करण में कुछ-कुछ मिलता है, राधाकृष्ण की सीमा की समृद्धि को देखते हुए वह भी बिलकुल नगण्य मानना पड़ता है। राधा की बात छोड़ देने पर भी गोपियों के साथ कृष्ण की बुधावन सीमा का पुरुषाधिक में अधिक विस्तार नहीं मिलता है। गोपी-कृष्ण-सीमा की सबसे अधिक समृद्धि भावकत-पुराण में हुई है। इस भावकत पुराण में और कुछ दूसरे पुराणों में गोपी-कृष्ण-सीमा के धर्मर राम-सीमा सबसे उत्तम सीमा के रूप में प्रसिद्ध हुई है। राम-सीमा में ही बगवान् के माधुर्य राम का सम्पूर्ण विद्यमान हुआ है। इस राम-सीमा का प्रभाव जगदाम से लेकर सभी वैष्णव कवियों पर बोझ बहुत पड़ा है। भावकत-पुराण में इस राम-सीमा का धमाका दूसरी गोपी-सीमाओं में धर्मर स्वर के इच्छीमर्षे धमाय में

(१) धर्मराम के हिन्दो वैष्णवधर्म के गानों में भी 'बमार' या 'बामारि' शब्द का जस्तोक मिलता है। धाम 'होरो' के प्रसंग में ही इस शब्द का प्रयोग विद्यार्थ पड़ता है। भारत के विविध प्रसंगों में धर्मराम्यन होनी के साथ धर्मराम्यन निम्नरवि के नाच-गानों के साथ जिन प्रेम-यात्राओं का प्रवर्तन है उसी से 'बमार' या 'बामारि' शब्द का तात्पर्य समझ में आता है।

घर्यु शत्रु में बुन्दावन में श्रीकृष्ण की बंधी की ध्वनि सुनकर गोपियों की विह्वलता और व्याकुल बेच्यारें सभी विशेष रूप से उल्लेख योग्य है। इस विषयमोहिनी सर्वाकार्यक बंधी की ध्वनि से केवल गोपियाँ ही नहीं बल्कि पशु-मखी तकसता यहाँ तक कि नरियाँ व्याकुल हो उठी थीं। इस बंधी-ध्वनि का प्रभाव परवर्ती काल के सभी वैष्णव क्रियाओं पर पड़ा है। भागवत के इसमें स्कन्ध के बाईसवें अध्याय में हम ब्रजकुमारियों का गन्धमोपसृत कृष्ण का पाठ के रूप में पाने की कामना से आत्मापत्नी की पूजा करते देखते हैं और इसी के साथ गोपियों के भीर-हृदय की सीमा का वर्णन पाते हैं। इसके बाद हम गोपियों को रास-संवाध्यामी में देखते हैं। इस रास-वर्णन के अंत में संक्षेप में गोपियाँ के साथ कृष्ण के बल-बिहार और बल-बिहार का वर्णन पाते हैं। इस अर्धमें स्कन्ध के पौरीषमें अध्याय में देखते हैं कि वित्त को कृष्ण के पाय करने वाले जाने के बाद

(१) बुन्दावनं सखि भुवो वित्तमोति कीर्ति

यद्देवकी सुतपराभुजप्रव्यवसमी ।

बोधिन्वदेवुमन् भतममूरुत्स्य

प्रेक्षयादिसात्परताभ्यसाभतसस्त्वम् ॥

वभ्या स्म मुहुमतयोऽपि हरिव्य यता

या नखगन्धनमुपात्तविधिभवेवम् ।

आकर्ष्य देवुरदितं स्रुहृष्यसारा

पूजां वभुविरधितां प्रणयाबनोर्ध्व ॥

+ + + +

गावश्च कृष्णमुच्चमिर्दितेवुगीत-

पोपुपमुत्तन्मिदत्कर्षुर्षु पित्तस्य ।

आवा स्मुतस्तनपयः क्वला स्म तस्व-

र्षोधिन्वमात्मनि बुशाभुक्ता स्पृक्षस्यः ॥

प्रथो वताम्ब विहृपा भुवयो बलप्रसिम्

कृष्णेसितं तदुदितं कतवेवुमीतम् ।

धावश्च ये इमभुवान् वचितप्रवाताम्

भुन्वस्यमीतितवृद्धो विपताभ्यवाचः ॥

नद्यस्तथा तनुपधाय मुकुन्वयोत-

माकर्तनक्षितभतोमपभण्यैषा ।

आसिङ्गनस्वमित्तुमिभुजमुरारै-

मृद्गन्ति पावयुसलं कमलोपहारा ॥

गोपियाँ बिन मर कृष्ण-सीसा का अनुकरण कर कृष्ण के प्रेम में—कृष्ण के ध्यान में अपने को डबाए रखती थीं। इसके बाद कृष्ण को प्रकृत के साथ बुन्दावन छोड़ते पाते हैं और उसी प्रसंग में गोपियों की व्याधा देखते हैं। इसके बाद गोपियों के प्रति उद्बसंबोध पाते हैं। संक्षेप में यही भाग-वत-वर्णित गोपीलीला है।

हिन्दी के वैष्णव कवियों ने (हम प्रधानतः बल्लभ-सम्प्रदाय के अष्ट रूप के वैष्णव कवियों की बात ही लिख रहे हैं) मुख्यतः इस भागवत-वर्णित सीसा का ही अनुसरण किया है। लेकिन बंगाल में हम राधाकृष्ण की सीसा को लेकर निरन्तर सीसा-विस्तार देखते हैं। इस सीसा राधाकृष्ण की उत्पत्ति और विस्तार गुरु से ही कवि-कल्पना में ही हुआ है। हरक युग की कवि-कल्पना का प्रथममूल्य करके सीसा-राधाकृष्ण नित्य-मूतन साक्षात्-प्रधानाएँ फैला रहा है। व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाय तो समुच्च के एक ही प्रसंग को नित्य मूतन प्रवस्थान के अन्तर से हम मूतन बना लेते हैं। सभी वैष्णव कवियों को एक राधाकृष्ण के प्रेम को लेकर कविता लिखनी पड़ी है। इसी एक राधाकृष्ण-प्रेम को विभिन्न न बना पाने पर उसके आधार पर नित्य-मूतन काव्य-कविता रचना संभव नहीं है। इसीलिए निम्न-निम्न युगों में कवियों को राधा-कृष्ण के प्रेम को लेकर वैशो-चित और सुमोचित विभिन्न प्रवस्थान तैयार करना पड़ा है। इसीलिए राधाकृष्ण-साहित्य पर ऐतिहासिक क्रम से विचार करने पर पता चलेगा कि जैसे-जैसे समय बीतता गया जैसे-जैसे सीसा का विस्तार होता गया है। जयदेव की पूर्ववर्ती राधाकृष्णपरक कविता में विभिन्न सीसा का प्रामास मिलता है। लेकिन जयदेव ने अपने गीतगोविन्द में राधाकृष्ण-सीसा को अपनी मन्त्रबोन्ने पर्यायिनी प्रतिमा से बहुत कुछ विस्तृत कर लिया। जयदेव में हमें जो सीसा मिलती है विद्यापति बंशीदास में वही विभिन्न ढंग से प्रस्तुत हो उठी है। प्रथमिब बंशीदास-यशोवती में हम देखते हैं कि राधा को लेकर मार-सीसा नीचा-सीसा धान-सीसा आदि को लेकर ही कवि सुखी नहीं हुए हैं कवियों को मिमल और विरह के बीच भी अगणित 'व्यपदेशों' (उद्देश्य) का मूल्य करना पड़ा है। राधा से मिमल के वैशिष्ट्य के लिए कृष्ण को क्या नहीं करना पड़ा? उन्हें सँपरा बनकर साँप की साँपी सिर पर उठानी पड़ी दूकानदार बनकर घुमना पड़ा जाहूँपर बनकर न जान कितन प्रकार के लेल दिखाने पड़े। हटना ही नहीं कृष्ण को भावस्पर्शानुसार मामिन माहल पेटौशाली मकितन विकित्सक ज्योतिषी सब कुछ बनना पड़ा। गोविन्ददास के एक प्रसिद्ध पद में हमें मिलते हैं कि कृष्ण को गौरनयोपी का वेप चारण कर सिपा बनकर राधा को मनाना पड़ा है।

हिन्दी वैष्णव-साहित्य विद्येप करके बल्लभ-सम्प्रदाय के द्रष्टृरूप के कवियों की रचना पर विचार करते हुए बंगला के वैष्णव-साहित्य के बारे में इतनी बातें लिखने का एक विशेष प्रयोजन है। इस सीमा-विस्तार की दृष्टि से हिन्दी और बंगला में एक पार्वक्य है उस पार्वक्य की ओर दृष्टि आकर्षित करने के लिए ही बंगला के वैष्णव-साहित्य की प्रकृति के बारे में ऊपर विद्येप रूप से विचार करता पड़ा। बंगला की वैष्णव कविता के अन्दर राधाकृष्ण-भीमा के अतिने उपास्यान-प्राचुर्य और वैचिष्य है, हिन्दी वैष्णव-कविता के अन्दर हमें बहु बात नहीं दिखाई पड़ती। इसका मुख्य कारण यह है कि जिन्होंने हिन्दी वैष्णव-कविता की रचना की वे अधिकांश में बल्लभ-प्राचुर्य-सम्प्रदाय के थे। कहा जाता है कि कोई निम्बा कर्षार्थ के सम्प्रदाय के भी थे। इन दोनों सम्प्रदायों के अन्दर कृष्ण के साथ राधा को भी ब्रह्म किया गया है वहीं में और मुगल उपासना की बात नहीं है। मगर बंगला के वैचिष्य-सम्प्रदाय के अन्दर इस मुगल उपासना और उसके साथ सीतावाद की जिस प्रकार सभी साध्य-साधनों के मूलीमूल रूप के रूप में ब्रह्म किया गया है निम्बार्क-सम्प्रदाय या बल्लभ-सम्प्रदाय में सीतावाद की इतनी प्रशानता हम नहीं देखते हैं। वही कृष्ण की सीता पर अतिना ओर दिया गया है वह सब कुछ कान्ता-भंग पर नहीं है, शान्त वास्य सख्य वात्सल्य आदि पर भी समभाव से ओर दिया गया है।

हिन्दी के कवियों में राधाबल्लभ सम्प्रदाय के कवियों के अलावा द्रष्टृरूप के कवियों की प्रायः समसामयिक उन्मेषायोव्य वैष्णव कवि है मीरजाई। मीरजाई के बारे में जो किम्बदन्तियाँ प्रचलित हैं उनसे पता चलता है कि बृन्दावनवासी किसी-किसी पौड़ीय मोस्वामी (रूपगोस्वामी या बीरगोस्वामी ?) से उनका साक्षात्कार और वैष्णव-रूप के सम्बन्ध में भावों का आशान प्रदान हुआ था। लेकिन मीरजाई की कविता और उसके अन्दर से जिस प्रेमधम की अतिव्यक्ति हम देखते हैं वह पौड़ीय वैष्णव धर्म की भाँति किसी अग्राह्य बृन्दावन के सुयम सीतावाद पर प्रतिष्ठित नहीं है। मीरजाई किसी सम्प्रदायविद्येप के अन्तर्भूत भक्त या कवि भी ऐसा नहीं प्रतीत होता। उन्होंने स्वतंत्र बनविहारी की भाँति ही अपने 'प्रियधम' का पाल पाया है। मीरजाई के नाम से अतिने गान प्रचलित हैं उनमें राधा का उन्मेष बहुत ही कम है। केवल दो-एक पदों में राधा का उन्मेष मिलता है—दो-एक पदों में राधा का आभास है। जहाँ राधा का उन्मेष मिलता भी है वहाँ भी राधाकृष्ण-भीमा के आम्बान का कोई प्रश्न ही नहीं है—

केवल योगानुष्ण की विविध सीला के वर्णन के प्रयोग में ही राधा का उल्लेख दिखाई पड़ता है। जैसे—
भाली म्हीने ताये बुवाबन लीको ।

कुंडन कुंडन फिरत राबिका सबब सुखत मुरलीको ।
मीरा के प्रभु फिरिबर नापर नजन बिना नर कीको ॥

अर्थ—
हजारो प्रथम बकि बिहारी को ।
मीर मुकुट माये तिलक बिराजे कुंडन भलकाकारी को ॥
अंबर मधुर पर बंधी बजाव रीत रिताये राधा प्यारी को ।
इह अंबि देख मयन भई मीरा मोहन फिरिबरपारी को ॥

अर्थ—
माई री में तो योबिन्द लीनो मोन ।

कोई नहै घर में कोई कहे बन में राधा के संग किमोल ।
मीरा के प्रभु बरतन बीज्यो पूरब बनम को कीन ॥
तो-एक पर ऐसे है वहाँ मीरा ने राधा का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है केवल अपनी प्रेम-बिह्वलता का ही वर्णन किया है। लेकिन मीरा की अपनी प्रेम-बिह्वलता प्रकट करने के मीठर से श्रीराधा का आभास मिलता है। जैसे—

नना लीनी रे बहुरि लके नहि प्राय ।
रोम-रोम नकलिक सब निरकल नसब रहे लनचाय ॥
न ठापी पृह प्रापये रे, मोहन निकले प्राय ।
छारंग घोट तजे कुन प्रंकुत, बदन दिये मुलकाय ॥
लोक कुडम्बी बरज बरज ही, बतियां कृत बनाय ।
बबल बपल घटक नहि पालत पर हाय गये बिकाय ॥
नली कहे कोई बरी बहो में सब लई तीस बढ़ाय ।
मीरा कहे प्रभु फिरिबर के बिन पल भर रह्यो न जाय ॥

इसके मीठर मीरा का प्रेम और उसकी अभिव्यक्ति हर्म स्वतः बूझने वैयक्त बतियों द्वारा बर्णित राधा-भ्रम की स्मृति जाग्रत कर देती। लेकिन यहाँ लक्षणीय विशेषता यह है कि मीरा कुत ही राधा क स्वाग पर अधिकार किए हुए है राधा की भाँति ही मीरा ने प्रेम-भाषना की है। यह भी

हमें बंगाल की वैष्णव-कविता में कहीं नहीं मिलेगी। बंगाल के सभी वैष्णव कवियों ने बराबर ही रामाङ्गुष्ण की प्रेम-सीमा का आस्थागत किया है—उषा के भाव का धबधबान बिन्दी ने भी करना नहीं चाहा है। हमने पहले विद्याद बिबेचन के अन्दर देखा है कि सखी या मंजरी की अनुभव भाव से साधना करके निरय युगल-सीमा का आस्थागत करना ही बंगाल के वैष्णव कवियों का साम्यसार था। बंगाल के सभी वैष्णव कवियों के विधि पूर्वक दीक्षित वैष्णव न होने पर भी इस वैष्णव बर्मावर्ष से बंगाल का वैष्णव काव्यावर्ष सामान्यरूप से प्रभावित हुआ था। इसीलिए ऊपर मीरा की वैसी कविताएँ हमने देखी वैसी कविताएँ बंगाल में नहीं मिलती हैं। इस प्रकार की कविताएँ ही मीराबाई की विशेषता हैं। मीरा के एक पद में हम देखते हैं—

सखी मोरी नींद नसानी हो ।

पिया को पंख बिहारते, सब रैन जिहानी हो ॥

सखियन मिस के सीख गई, मन एक न मानी हो ॥

बिन देखे कल ना पड़े जिय ऐसी ठानी हो ॥

धंगल छीन व्याकुल भई, मुझ पिय पिय जानी हो ।

अस्तर बेदन बिरह की बह, पीब न जानी हो ॥

क्यों जातक घन को रटे मसरी जिनि पानी हो ॥

मीरा व्याकुल बिरहिनै, सुख मुझ बिसरानी हो ॥

मीरे हम मीरा का एक घोर पद देखे रहे हैं। यह पद भी रामा के मुँह बहुत ही घोमा देता है—

म हरि बिन कैसे जिहँ रो पाय ।

पिय कारण बग बैरी भई, बत काठइ घुन जाय ॥

धोवब मूस न लंबटे, मोहि जायो बीराय ॥

;

;

पिय झूझन बन बन पई कहुँ मुरली घुन पाय ।

मीरा के प्रभु लाल गिरियर मिलि पये सुखदाय ॥

मीराबाई की इस प्रकार की कविताओं से बंगाल की वैष्णव-कविता का मस नहीं है यह हम पहले कह आए हैं। वैष्णव कविता की इस वैसी से दक्षिण के आसवार सम्प्रदाय की कविता से काफी मस बिसाई पड़ता है। आसवार सम्प्रदाय के भक्तों ने अपने को नायिका मीरा बिष्णु की नायक स्वीकार करके मधुर रसायित कविताएँ लिखी हैं। वहाँ

मी बिरह की घाति और मितल की व्याकुल कामता विभिन्न रूप से प्रकट हुई है। धानधारों में मम्म-भालवार की कन्या प्रंडाल और मीराबाई के जीवन तथा प्रेम-साधना में प्रादुर्भावजनक एकता दिखाई पड़ती है। प्रंडाल रणनाथ का जीवनसर्वस्व मानकर रंगनाथ के मंदिर में ही रहती थी रंजनाथ को प्रिय के रूप में पाकर उन्होंने व्याहृ की जरूरत नहीं समझी। गोपी के भाव से प्रंडाल बहुतेरी कविताएँ भिन्न गई हैं।

राधाकृष्ण की प्रेमसीसा का प्रबलमयन करने कविता करने वाले कवियों में 'घण्टछाप' के घाठ कवि ही प्रसिद्ध हैं। इस 'घण्टछाप' कवि सम्प्रदाय के बारे में एक और बात देखी जा सकती है। प्रायः समसामयिक काम में चैतन्य के प्रभाव से लड़ीछा में 'पंचसखा' सम्प्रदाय नामक भक्तवैष्णव-कवियों का एक सम्प्रदाय बन गया था। घण्टुतामन्द दास अबलदास दास अनन्त दास यद्योदध दास चैतन्य दास घाति इस सम्प्रदाय के कवि थे। चैतन्य के प्रभाव से प्रभावित होने पर मी राधाकृष्ण की प्रेमसीसा को लेकर इन्होंने कविता नहीं लिखी। इनके उपास्य श्रीकृष्ण 'सुखमति' 'सुखपुख' हैं इनकी साधना-व्यक्ति में नाथ-सम्प्रदाय की साधना के अनुकूल कामा-साधना पर जोर दिखाई पड़ता है।

चैतन्य के समसामयिक घाठनाथ के संकरवेब एक और पूर्वभारतीय वैष्णव आचार्य थे। संकर वेब से चैतन्य के साक्षात्कार की किम्बदन्ती है, यद्यपि इसे तब मान लेने के लिए कोई भी ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है। संकरवेब केवल प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य और प्रचारक ही नहीं थे वे घाठनाथ के प्राचीन साहित्य के सर्वप्रधान कवि माने जाते हैं। इनका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ है भागवत का अनुवाद। मूलतः भागवत के घाठार पर और नाम कीर्तन पर जोर देते हुए संकरवेब ने त्रिंशद् वैष्णव धर्म का प्रचार किया और जो वैष्णव-साहित्य लिखा उसके अन्दर हमें राधा का कोई विशेष स्थान नहीं दिखाई पड़ता है। महापट्ट में भी वैष्णव धर्म काफ़ी फैला था। नामवेब तुकाचम घाति का रचा हुआ वैष्णव साहित्य सारे भारत में प्रसिद्ध है। मराठी वैष्णव-साहित्य में भी राधा का नाम कदाचित् मिलता है। वहाँ 'राही' के तौर पर राधा का उल्लेख मिलता है वहाँ भी कृष्ण की प्रियेरी के तौर पर राधा की कई मर्यादा नहीं दिखाई पड़ती है। महापट्ट के कृष्ण (बिठोबा या बिठुल = बिष्णु ?) बहुत दिनों तक बिनी घण्टि या स्त्री के विना ही महापट्ट में पूजित रहे। अबसे घण्टि या स्त्री का प्रचलन चलन है तब से बिनी ही मुख्य कृष्ण-प्रेयसी मानी गई है। बंगला और हिन्दी-साहित्य में त्रिंशद्

कृष्ण के राधा-वस्सम राधा-नाथ राधा-रमण वगैरह नाथ हैं उसी तरह मराठी-साहित्य में कृष्ण का परिचय है इकिमभी-पति या इकिमभी-वर के नाम से। साहित्य में इकिमभी ही 'रत्नमाई' या 'रत्नमाबाई' के रूप में परिचित है। सारी कृष्णलीलाएँ इस स्वकीया गारी रत्नमाई या रत्नमाबाई को लेकर होने के कारण मराठी-साहित्य में कृष्ण का प्रथमम्बन करके किसी परकीया प्रेमलीला की समृद्धि नहीं हुई है। सारी प्रेमलीलाओं में पति-पत्नी के सम्बन्ध में लौकिक विद्युद्धि है। लेकिन अष्टछाप के कवियों पर राधा-कृष्ण की प्रेमलीला का गहरा प्रभाव पड़ा है। गुरदास कृमनबास परमानन्द बास कृष्णबास गोविन्द स्वामी मन्वबास छीतस्वामी और चतुर्भुज बास ये ही अष्टछाप के घाठ कवि हैं। ये सभी कवि बल्लभाचार्य के 'पुष्टिमार्ग' सम्प्रदाय के कवि थे। 'पुष्टि-सम्प्रदाय' के भक्तों का विश्वास था कि बल्लभाचार्य और उनके पुत्र विठ्ठलनाथ श्रीकृष्ण के अवतार थे और अष्टछाप के घाठों कवि श्रीकृष्ण के घाठ उल्लासों के अवतार थे। हम गौड़ीय वैष्णवों के अन्दर भी यह विश्वास देखते हैं कि श्रीकृष्ण के अवतार श्रीचैतन्य के गवाचरादि पार्यवराज राधा-प्रादि घाठ गोपियाँ के अवतार थे। बल्लभ-सम्प्रदाय के भक्तानुसार अष्टछाप के घाठ कवि दिन में सखा का भाव और रात में सखी का भाव रखते थे। कृमनबास दिन में तो सखा भर्तृन् थे और रात में विद्याबा सखी थे गुरदास कृष्ण-सखा और चम्पकसता सखी परमानन्द बास स्तोत्र सखा और चक्रमाया सखी कृष्णबास रूपस सखा और ललिता सखी गोविन्दस्वामी श्रीराम सखा और मागा सखी मन्वबास भोज सखा और चन्द्ररेखा सखी छीतस्वामी सुवस सखा और पद्मा सखी चतुर्भुजबास विद्यास सखा और विमला सखी थे।

पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक श्रीबल्लभाचार्य ने गोपासकृष्ण की उपासना को अपनी धर्म-शासना में ग्रहण किया था। उन्होंने श्रीकृष्ण के बालरूप पर ही जोर दिया है इसीलिए उनके विवेचन में राधा के बारे में कोई विचार या उल्लेख नहीं मिलता है। कहा जाता है कि इस सम्प्रदाय की उपासना के अन्दर बल्लभाचार्य के पुत्र प्राचार्य विठ्ठलनाथ ने ही राधाबाद का प्रवर्तन किया था। कथित है 'स्वामिप्यष्टक' और 'स्वामिनी-स्तोत्र' नामक दो संस्कृत श्लोक विठ्ठलनाथ ने लिखे थे। इन दोनों श्लोकों में हम राधा-सम्बन्धी स्तोत्र पाते हैं। विठ्ठलनाथ ने किसी विशेष प्रकृति-सिद्धान्त को स्वीकार कर राधाबाद का प्रथम धर्ममठ में ग्रहण किया था कि नहीं इसमें सन्देह है, पर उन्हीं के समय में पुष्टिमार्ग में राधाबाद का प्रचलन

हुया था इसमें सन्देह नहीं। बल्लभ-सम्प्रदाय के बर्तमान में तथा साहित्य में राजाबाद के प्रचलन के ध्वस्त चैतन्य और उनके मन्त बुन्दावन के पोस्वामियों का प्रभाव होने की संभावना है। स्वयं बल्लभाचार्य चैतन्य के अमसामयिक वे बुन्दावन में इन दोनों का साक्षात्कार और भाव का आवाज-मदान होने की बात का पता 'निजवाता' 'बल्लभविम्बिजय' आदि ग्रंथों से जसता है। इन ग्रंथों से हमें यह भी मान्य होता है कि बल्लभाचार्य चैतन्य और उनके अनुयायी बुन्दावन के पोस्वामियों के गहरे प्रेमी थे। एक ही आरामी दोनों सम्प्रदायों से सम्बन्धित वे ऐसी शक्तिशाली हैं।'

इन ग्रंथों पर विचार करने से जसता है कि बल्लभाचार्य कुछ बालकृष्ण की उपासना का ही प्रचार कर गए हैं और इसीलिए हम अष्टछाप के साहित्य में वास्तव्य रक्त की इसी समृद्धि देखते हैं। लेकिन कुछ ही पहले के प्रसिद्ध वैष्णव कवि जयदेव-विद्यापति के काव्य के प्रभाव और कुछ चैतन्य-सम्प्रदाय के काव्य के प्रभाव से अष्टछाप साहित्य में मुनजसीता और उसके साथ ही उषा की प्रतिष्ठा हुई थी।

लेकिन यहाँ एक बात विशेष रूप से लक्षणीय है। अष्टछाप के पूर्ववर्ती जयदेव-विद्यापति की उषा परकीया है उनके साहित्य में हम अर्ध परकीया-मेमसीता का ही वर्णन देखते हैं। चैतन्य-सम्प्रदाय का मन्त स्वकीयाबाद या या परकीयाबाद इस बात को लेकर बहुत होने पर भी चैतन्य मुन के बंगला के वैष्णव कवियों में सभी ने परकीया-सीता का अनुसरण किया है। लेकिन बल्लभ सम्प्रदाय में कहीं भी हमें परकीयाबाद की प्रतिष्ठा नहीं दिखाई पड़ती है, यहाँ उषा सर्वत्र स्वकीया है।

बंगला और हिन्दी की वैष्णव कविताओं की तुलना करने से दोनों में पारम्य सात दिखाई पड़ता है। पहली बात है, धारि से बंगाल में मधुर रक्त को ही श्रेष्ठ रक्त माना गया है। इसके अलखक्य शान्त वास्तव सख्य और वास्तव्य सम्बन्धी पद बंगला में अपेक्षाकृत कम मिलते हैं। हिन्दी-कविता में श्रीकृष्ण का अखलखन करके शान्त और वास्तव्य रक्षाधिक साधारण शक्ति और प्रपत्तिमूलक कविताएँ यथेष्ट मिलती हैं। लेकिन बंगला की वैष्णव-कविता में इस प्रकार के पद बहुत कम हैं। बंगाल में साधारण शक्ति, वास्तव-सर्वत्र और प्रपत्तिमूलक जितनी कविताएँ मिली हैं वे इनको लेकर बहुत कम और चैतन्य को लेकर बहुत व्यापक मिली

(१) अष्टछाप और बल्लभ-सम्प्रदाय-रीनदयाल मुद्र, द्वितीय खंड

गई है। गौरव सम्बन्धी इस प्रकार के पदों की संख्या कम नहीं है। मधुर रस के अन्दर बंगला-साहित्य में मुगल-सीसा के प्राधान्य के कारण कान्ता प्रेम के पद ही सबसे अधिक हैं। कान्ता प्रेम के ये पद गोपियों को लेकर नहीं लिखे गए हैं। कुल्ल जिस तरह 'कान्ताशिरोमणि' हैं वही तरह राबिदा 'कान्ताशिरोमणि' हैं। इसलिए कान्ता प्रेम के सभी पद राबिका को लेकर लिखे गए हैं। बंगला में वास्तव्य रसके कल-कल अन्तर्गत पदों के होने पर भी हिन्दी के वास्तव्य रस के पदों की तुलना में बहुत कम हैं। हिन्दी के घेठ वीर्यव कवि सूरदास के पदों की विशेषता है वास्तव्य रस। हिन्दी में कान्ता-प्रेम के पद अधिसंख्य में गोपियों को लेकर लिखे गए हैं। राधा को लेकर नहीं। सूरदास के इस प्रकार के पदों में 'उदक-संवाद' पर ही सबसे अधिक प्रसिद्ध है। उदक-संवाद के पदों में राधा एकमात्र प्रेयसी के रूप में नहीं दिखाई पड़ी है। उनमें बिरहिणी गोपियों की हृदय-वेदना ही प्रकट हुई है। राधा इन गोपियों में बहुत स्थायी पर प्रधान गोपी के तौर पर दिखाई पड़ी है। बंगला की वीर्यव कविता में बुन्दावन की गोपिका अनेक स्वरों पर राधा के परिमंडल में एक प्रकार से बक-सी गई है। अष्टसदियों राबिका का ही कायाभूत रूप है। सोलह हजार गोपियाँ प्रेयसी राधा का ही विभिन्न प्रसार हैं। हिन्दी की वीर्यव कविता में गोपियों का काफी स्थान है।

बंगला और हिन्दी की वीर्यव कविता के इस पारम्य के मूल कारणों को हम ने पहले ही बताया है। वह है बंगाल में अयोध से लेकर आरंभक साहित्य और बर्न में कुल्ल की मुगल-सीसा का प्राधान्य। बाल्मिकी ने बालकृष्ण की उपासना पर ही अधिक धोर दिया है। प्रायः इसीलिए सूरदास प्रायः कवियों के रचे कुल्ल की बालक्रीडा-सम्बन्धी पद इतने प्रसिद्ध हुए हैं।

दूसरी बात बताने की है कि वीर्यव की सीसा के वर्णन में हिन्दी के कवियों ने श्रीमद्भागवत का अनुसरण किया है। हम पहले ही लिख चुके हैं कि बंगाल के कवियों ने वीर्यव की सीसा-सम्बन्धी रचनाओं में बिरह गहनबोधेय शासिनी कविप्रतिभा का परिचय दिया है। हिन्दी के वीर्यव कवियों के वर्णन में श्रीमद्भागवत बहुत कम है। भागवत की केन्द्र करके ही उनकी कवि प्रतिभा प्रकटित हुई है। इसीलिए सूरदास की कविता में हम वहुधा भागवत की भाषा का ही अन्तर्गत पाते हैं। दूसरे हिन्दी के कवियों ने भी सूरदास के रास्ते की ही अपनाया है। लेकिन बीच-बीच में गाना-कविता कुछ

कविताओं के परिचित मागध का ऐसा अनुसरण बगला में बहुत अधिक नहीं दिखाई पड़ता है ।

किसी विशेष बार्सनिक विद्यालय या साम्प्रदायिक बर्म-विद्यालय के तौर पर युगल-सीमा की उपायता को प्रष्टध्याप के कवियों ने प्रहस्य नहीं किया फिर भी भक्तिधर्म के स्वतःप्रवाह और कवि-धर्म के स्वतःप्रवाह में इस युगल-सीमा का स्मरण कीर्तन और आत्वात्म प्रष्टध्याप के कवियों में प्रकटित हुआ था । बुम्बावनतत्त्व पोतीतत्त्व राधातत्त्व के बारे में हम बंयाम के कवियों में कल मिलाकर जो चारमा या विश्वास पाते हैं प्रष्टध्याप के कवियों में भी वही बात मिलती है । हमने ऊपर मीराबाई की बिध तर्ह की कविताएँ देखी हैं, उसी तर्ह की कविताएँ प्रष्टध्याप के कवियों में भी मिलती हैं । जन्हीने भी अपने को पोतीमाध से माधित कर 'प्रेमरसैकसीम' हृष्य के बिध से ब्याकुलता और उनसे मिलने की आकांक्षा लेकर पब सिखे हैं । इसके साथ ही हम देखते हैं कि गौड़ीय वैष्णव कवियों की तर्ह जन्हीने भी युगल-सीमा का बयमान करके उस अप्राहत बुम्बावन में पूर से सखी या दूसरे परिकरों की माधित मित्य युगल-सीमा का आत्वात्म करने की बेच्छा की है । सुरदास इस मित्य नव-नव प्रबसीता से मुग्ध हुए थे—

राधा-माधव भेंट नई ।
राधा-माधव माधव राधा, कीर-नुगपति होइ जो गई ॥
माधव राधा के रंग राधे, राधा माधव-रंग रई ।
माधव राधा प्रीति निरंतर, रसना कहि न गई ॥
बिहूँति कह्यो हम-सुम नहिं धारत, यह कह ब्रज पडई ।
सुरदास प्रभु राधा-माधव, प्रज-बिहार मित नई गई ॥

केर—
बली मेरे नैनन में यह खोटी ।
सुन्दर क्याम कमलबल लोचन संय बुपमानु बिसोटी ॥
सुरदास प्रभु तुम्हरे बरस को का बरनों मति खोटी ।
युगत बिसोटी बरनरज माँतों, पाई सरस बमार ॥
औरारा गिरिबत्पर रूपर सुरदास बकिहार ॥
सुरदास के प्रसादा प्रष्टध्याप के दूसरे कवियों के इस युगल-सीमा आत्वात्म के कृष-कृष पब हैं । परमानन्द बाध ने कहा है—

गोपीनाथ राजिका अस्तम ताहि जयसत परमार्था ।

इसी परमानन्द के एक धीर वर में हम देखते हैं—

लम्बकुंवर जेनात राधा संय यमुना पुनिन सरस रंग होरी ।

बब बनय्याम मनोहर राजत श्याम मुमय तन बामिनि पौरी ॥

● ● ● ●
जके बेन किन्नर मुनिवत सब यममच निज मन ययो लज्योटी ।

परमानन्द बास या मुचकों पावत बिपन मुक्ति पर छोरी ॥^१

पोकिन्दबास ने कहा है—

लम्बनाल संन नाचति लजलकिसोरी ।

● ● ● ●
पोकिन्द प्रभु बनो लजनाचरी निरिबर रस छोरी ॥

उनके एक धीर वर में हम देखते हैं—

भावति माइ रामिका प्यारी बुकती नून में बनी ।

निकति लरन बबराज भवन से सिंहाार ठाढ़े ललन कुंवर
विरवारी ॥

निरखि बरन भीहु मोरि तोरि तुन जोनि शोर बितबनि ।

तिहि किन बंधरा संभारि बंधर की धोड हू तियो है
नाल कनुहारी ॥

पोकिन्द प्रभु दम्पति रंग मूर्छति बुद्धि लो बरत बंधवारी ॥

(१) बीनवयाल गुप्त के अष्टाक्षर धीर अस्तम-सम्प्रदाय ग्रंथ में उद्धृत ।

(२) अष्टाक्षर धीर अस्तम-सम्प्रदाय । तुलसीय परमानन्द दास का

सटाकि नाल रहे राधा के भर ।

कुंवर बीरो बनाय कुंवरि हौति हौति जाय, बैठ बोजन कर ॥

गोपी ललमुच बितबति ठाढ़ी तिब सौं केति करत कुंवर वर ।

ज्यों बकोर बंधा तन बितवत त्यों घाली निरवत

विरिबर वर ॥ इत्यादि, वही ।

१८— धान बनी दम्पति वर छोरी,

लांवर धीर बरन दम्पति लम्बकिठोर नृपनाथु किठोरी ॥

इत्यादि वही ।

(३) वही ।

श्रीतस्वामी श्री कृष्ण श्री धाराबला के दर्शन में हम देखते हैं—

राजिका रम्य गिरिधरचरण, योपीनाम धरनमोहन कृष्ण
नन्दनर बिहारी ॥

राजे स्व नियाम गुण धायरी नन्द नन्दन रतिक बंध खोली ।
कुंजन के बदन भक्ति चतुर चर नायरी चतुर नायरी सौं करत
केली ॥

कृष्णदास के रास के पद में लिखा है—

नको तरनि लजवा परम पुनीत अपवावनी,
कृष्ण नमनावनी बधिरनामा ।
भक्तिन तुच्छ शायिनी सब सिद्धि हेतु,
श्रीराजिकारम्य रति कारण स्यामा ॥

गुप्त-नीला के धाराबला में कृष्णदास ने लिखा है—

धाम भान भूपनाम भक्तिनी बंधन नयन बिभाल ।
कृष्णदास बन्धति छवि निरखत बंधिया कई निहाल ॥

राधा-कृष्ण के निराम की जो स्वामकतमानवेष्टित कमकसता की
उपमा हम बीच बंधियों में प्रायः पाते हैं, हिन्दी के कवियों में भी बहु
बात मिलती है । नन्ददास ने कहा है—

नन्ददास प्रभु भक्ति ध्याम लमान द्विप कमकसता उह्ये ।

बंगाल के कवियों की भाँति हम कुंजनदास के पद में पाते हैं—

नौतन स्याम नन्दनन्दन भूपनाम सुता नभ बीरी ।
मनहुँ परस्वर बदन बाध को निवत बहोर बहोरी ॥'

परमानन्द ने भी लिखा है—

ललत ललत कितोर कितोरी ।
उत बजबुधन कुंजर रतिकर इन भूपनाम भक्तिनी पोती ॥
नौताम्बर नौताम्बर करकत, उपमा धनबाभिति छवि पोती ।

(१) सुमनीय बरनालन्द दास की राधा लज्जानी एक पद—

समुत विद्योय कियो एक धीर ।
तेरो बदन लवारि मुपानिनि तादित बिचिना रबी ब धीर ॥
मुनि रावे क्हा अपना बीजे स्याम ननोहर बये बहोर ।
छाबर पीकत भुवित छद्दि देखत, लपत काब उर नन्दकितोर ॥

अष्टाश्राप के कवियों की जीवनी देखने पर पता चलता है कि प्रायः सभी ने अंत में इस सुपथमूर्ति का ध्यान करते-करते देह छोड़ी ।

हम पौड़ीय वैष्णवदर्भ और साहित्य में बिना प्रकार सखीभाव की सुपथ-अपासना देखते हैं अष्टाश्राप के कवियों में उसी सखीभाव के सुन्दर नमूने हम ऊपर के पदों में पाते हैं । सुरदास ने तो इस सीताबाम कृष्णवन की लूनासता पदुपत्री यहाँ तक कि अक्षरेणु धारि किन्ती भी रूप को धारण कर लीला भास्वारण के धपिकार की प्रार्थना की है—

करहु मोहि अब रेनु रेहु कृष्णवन बासा ।
मानीं यहै प्रसाद और नहि मेरे दासा ॥
कोई प्रार्थ ली करहु कृष्ण कृष्ण ललित हुन नहु ।
प्यास गाइ को नुनु करै मनीं लय बत एहु ॥

सुपथ-मिमन के पास एह कर सुरदास ने लिखा है—

संप रावति सुपमानु कुमारी ।
कुंड लवन कुमुमनि लेख्या पर दम्पति होमा मारी ॥
धालत परे मगन रस बोझ अंश भग प्रति जोहुत ।
मनहुँ पीर इयाप बीरब लति प्रलम बीठे सम्मुख जोहुत ॥
कुंड मवन राधा मनमोहन चहुँ बाल बज्रनारी ।
सुरदास लोचन इच्छक करि दारय तनमन बारी ॥

अंगला के वैष्णव कवियों ने राबिका के असीम सीमाप्य का अकणन किया है, क्योंकि जो हरि निमुबन के आराध्य है, वे भी राधा के प्रेम से मुग्ध होकर उसके अधीन हैं । परमात्मक बास ने भी यही कहा है—

राधे तू बड़ भापिनी कौन तपस्या कीन ।
तीन लोक के नाथ हरि ती तैरे अधीन ॥
भावत ही धनुता नरे पानी ।
स्याम बरख काहु को डंडा निरखि कवन पर कई भुजानी ॥
जब धी तन ने उन तन बिसयो लखो तै उन हाथ बिकानी ।
उर पकनकी टकटकी लामी तनु ध्याहुत मुक कुरत न बली ॥

फिर—

सुन्दर जोमत आगत अंग ।
वा जानीं ठेहि समय लकी री लख तन अवन कि नैव ॥

(१) सुकनीय—प्रति अंश सप्रति कवि प्रति अंश और ॥—तामदास का पद्य ।

(२) बीनदयाम गुप्त का संज्ञक ।

रोम रोम में श्याम सुरति की लज निज क्यों बल देन ।
 यों माव बड़ी बचकला सुनी न समुझी लेन ॥
 तब तकिक किकि हूँ रही बिज सी पल न लपट बित बँन ।
 मुक्कु सुर यह लाँक, की संजय सपन कियोँ बिन रन ॥

कृष्णदास के मुग्ध पद में देखते हैं—

पद्यानि कृष्ण बरत लों बडकी ।
 बार बार पनप्य पर घाबत तिर यमुना बल मटकी ॥
 मनमोहन को रूप मुखाविधि पीबत प्रेम-रत पडकी ।
 कृष्णदास बग्य बग्य पबिका लोक लाज तब पडकी ॥

यथा कृष्ण वय नाथ सुनकर पागल हो गई थी । इस के मुग्ध में है पूर्वपग संकाश होने के भाव का प्रबलम्बन करके बड़ीदास का सर्वश्रेष्ठ पद है, 'तब कैना भुनाइस स्वाम नाथ । (सकि कियने श्याम का नाम मुनाया ।) इछे हम गन्धदास के निम्नलिखित पद का मितान कर सकते हैं—

कृष्ण नाथ बड तेँ मुन्दी री घालो,
 भूती रो भवन हीँ तेँ बावटी भई री ॥
 मरि मरे घाँव मैम बित हूँ न बई बँन,
 तब को बल कळ घीरे भई री ॥
 जेतिक नम बर्म पत कोन री में बहुविधि
 यंग यंग भई न तो प्रबलभई री ।
 नंददास बाके भवन मुनेँ ऐली गति,
 जानुरी मूरति बँचोँ बँतो बई री ॥

इस प्रकार की कविताओं के विषय में याद रखना होगा कि बंवाल के वैष्णव कवियों ने बहाँ प्रभावित स्वाम नाथ के पदा-कृष्ण के पूर्व पदात्म्य प्रेम का ही दूर से परिचर की हैतियत से आत्मादन किया है हिन्दी के वैष्णव कवियों ने बहाँ केवल पदा-कृष्ण या गोपी-कृष्ण के पूर्वपग अनुपम मितान-विषय का ही आत्मादन नहीं किया है बल्कि कुछ ही पदा के नाथ से पौरी के भाव से परिभाषित हो कर इस प्रकार कृष्ण-प्रेम की घाशाया की है । परमात्म्य दास के इन प्रकार के विषय के एक पद में देखते हैं—

या हरि को सबैत न धायो ।
 बरस मास बिन बीतन जाते बिन बरसनु बुझ पायो ॥
 घन परज्यो पावस शत्रु प्रपटी शत्रुक पीड तुनायो ।
 मल मोर बन बोलन जाये बिरहिन बिरह बनयो ॥
 रागमस्हार सह्यो नहि बार्ह कष्ट पबिकहि पायो ।
 परमात्मबाल कहु शीबे इत्य मधुपुरी धायो ॥'

अष्टाङ्ग के कवियों के समसामयिक एक और प्रसिद्ध कवि थे स्वामी-
 हरिदास । स्वामी हरिदास द्वारा प्रबलित-सम्प्रदाय हरिदास-सम्प्रदाय या सखी-
 सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है । कहा जाता है कि प्रसिद्ध मायक तालसेन इसी
 साधक हरिदास स्वामी के शिष्य थे । हरिदास-सम्प्रदाय का अपना कोई विशेष
 दार्शनिक यथ नहीं था केवल विशेष साधना-मठति ही थी । इसी साधना
 मठति की विशेषता थी सखी-भाव । स्वामी हरिदास ने केवल
 सखी-भाव साधना को ही साधना माना था । नाभादास ने अपने 'भक्त
 मान' ग्रंथ में स्वामी हरिदास के बारे में लिखा है कि इनकी प्रेममण्डि
 का नियम था केवल मात्र राधा-कृष्ण के पुनस की पूजा करना । राधा के
 साथ कृष्णबिहारी कृष्ण इनके उपास्य हैं । ये सखा सखी-भाव से राधा-
 कृष्ण के ध्यान-बिहार का व्यवहार और आस्वादन करते थे । यह मत
 भी प्रचलित है कि स्वामी हरिदास वैतन्त्र्य-सम्प्रदाय के थे । यह मत बहुल-
 योग्य है वा नहीं इस पर मतभेद है । लेकिन इस प्रसिद्धि की देखकर
 समझा है कि स्वामी हरिदास स्वयं वैतन्त्र्य-सम्प्रदाय के न होने पर भी
 वैतन्त्र्य-सम्प्रदाय से और उसके धन्वर से वैतन्त्र्य-मत से सुपरिचित थे और
 बहुत संभव है कि उनके धनन्यवरण होकर नियमबद्धादि का परिहार करके
 केवल सखी-भाव से पुनस-कीर्ता, आस्वादन की साधना में वैतन्त्र्य-मत का
 प्रभाव था ।

पंचदश अध्याय

परवर्ती काव्य की राधा

हमने ऊपर देखा है कि विविध वैष्णव धर्म में राधा-राज्य संघर्ष के संकट-राज्य और साक्ष्य के प्रकृति-राज्य से बिलता भी घलप गयी न हो वैष्णव साहचर्या यत् में राधा-राज्य फिर भूम-भिरकर जनप्रिय संकट-राज्य और प्रकृति-राज्य से मिल गया है। हम प्रपर प्रपनी दुष्टि पोस्वामियों द्वारा प्रचारित वैष्णव धर्म पर निबद्ध न रखकर बंधन के साधारण जन-समाज के धर्मविश्वास को धीरे विस्तारित कर रहे थे वेबोंमें कि वैतन्पोत्तर युग में भी संन की प्रकृति साक्ष्य की प्रकृति धीरे बेदांत की माया से बहुत कुछ प्रविष्टकर्म से ही राधा जन-समाज में स्वीकृत हो रही है। प्रनेक परवर्ती काव्य के धारकों की कविता में भी बहुत-से देखा है कि उनकी शक्ति का वर्णन बाने-भनवाने वैष्णव कवियों की राधा के वर्णन से मात्र धीरे मात्रा में बिलकृत मिल गया है। दृष्टान्त-स्वरूप हम पीने दो ही काम पुणने कमलकाण्ठ के 'सायक-रत्न' काव्य का उल्लेख कर सकते हैं। इस ग्रंथ में मूलाकारस्थिता कृतकुंडलिनी शक्ति का वर्णन गति से चित्रबान में जाकर चित्र से मिलित होने को वैष्णव-साहित्य के भीषणिक के संकेत कुंड में घीकृत से मिलित होने के लिए प्रविष्टार की शक्ति ही वर्णन किया गया है। वैसे—

क्याम्ब कुमुद जनु ललत छिद्रे तनु
 यद्वयि निरञ्जिताम् तारे ।
 अरि पारथिवे चाह धारणा पारसे चाह
 एना धन कर्तृक कर्तारे ॥
 कैह से श्रीवत मोर रत्तिकेर नभचोर
 रजनी रतेर शिरोमणि ।
 परिहृति मोकनावे राक्षिब हृदय भास
 ना छार्तिव विषस रजनी ॥
 हेन प्रनुमानि तारे बाधि हृदि कारगारे
 नमान बहुरी विपे राधि ।

कामिनी करिये चुरि हृदय पंजरे पुरि
प्रमियेके हेन रूप देखि ॥१

(१) सामक-रंजन पृ १ (बंगीय-साहित्य-परिचय से प्रकाशित) ।
घोर भी तुलना कीजिए—

यजपतिनिन्दित गति प्रबिलम्बे ।
 कुञ्चित केश निवेश मितम्बे ॥
 बाह्यरथ गति धानरथगुह्ये ।
 नखरमुकुरकर क्षिप्रकर निम्बे ॥
 जरसि सरसीच्छु वामा ।
 करिकर जिह्वर मितम्बिनी रामा ॥
 मृपपति दूर सिद्धरमुख वाय ।
 कटिच्छ कीच सुबोधन वाय ॥
 नामि गभीर नीरजबिहार ॥
 द्विपत् बिकच कमलमुख नार ॥
 बाहुमस्ता प्रलते लक्ष्मी प्रंग ।
 शोभित वैह मुनेह तरंगे ॥
 तुमभुर हात प्रकाश्र वासा ।
 बालासपदाचि नयन विमाला ॥
 सिन्धुरवर(ज) विनकर लम शोला ।
 प्रभुञ्ज बदन भवनमनोमोला ॥
 प्रदक्षित प्रंजन तिचि अतिवेश ।
 भाय कलेश्वर बाहु निश्रय ॥
 चिरविन अन्तर लतीपति पाव ।
 परमोम्स्तास ललित बरकभय ॥
 रत्न केचि बर सुरतधमूल ।
 मणिमय मंदिर लक्षि प्रमुकल ॥
 लक्ष्मी लय प्रवेश्र नारी ।
 कमलाकमल हेरि बलिहारी ॥—बही, पृ ३-४

चिर—

बंधन कपला जिमिये प्रबला प्रबला मुहु ममुहसे ।
 तुमनि उम्मनि लइये लंगिलो बाइल बहानिबाली ॥
 उम्मल बेधा विपक्षित केया मणिमय धनरथ लाजे ।
 तिमिर बिनासि केन पाय कपली मुमुमु मुपुर बाजे ॥
 जाति कुल नाशिये उपनीत आसिये प्रभुत सरोवर तीरे ।
 प्रेम बरे रजनी तिहरे पुलके लन मय लमीरे ॥ बही, पृ ३४

गौबिन्द धबिकाटी की 'कृष्णदास' की बातचीत में देखते हैं कि कवि भीषणिका से प्रार्थना कर रहा है—

प्रेममयी ह्यासिनी पौबिन्द-हृदि-वासिनी
तुमि यो भादि-क मिनी
गौबिन्दबन्ते निदान छय हुयो सम्मन-सातिनी ॥

यहाँ जिस देवी को लक्ष्य करके प्रार्थना की जा रही है वर्णन में उचका (देवी का) एक मिथस्थ काही स्पष्ट है। परिव्राजक कृष्णप्रसन्न सेनने धरित के सम्बन्ध में भीत लिखा है—

तुमि धरतपूर्वा मा,
तुमि समन ने ह्यामा
सोतासेते जमा तुमि बँहूण्टे रमा ।
बर विरिचि सिध विष्णु क्य
सुजन नय पामने ।
तुमि पुक्य कि नारी
त बुजिते नारि;
स्वयं ना बुझाने से कि बुजिते पारि ।
ताइ त भाषा राषा भाषा कृष्ण
साजिने बुदाबने ॥

फिर पौबिन्द चौपुटी के गीत में देखते हैं—

झझाने सुनाते रे मन पाले एमन इन्द्रजाल
कनु काली-क्ये तारा करे परे करवास
कखन बा सीता हय, मुझे किन्तु छिछ नय
झझादि देवता किञ्चइ बुजिते नारे ।
भाज येमन पौबिन्देर काछे बुगर्क्ये एतेछे,
काल देखे राषा-क्ये ह्यामेर बाये बसेछे ।
ताइ बलि एइ काया किछ नय सुपु भाषा,
परने परे जानेर धालो-सुक्य भावार धौंजारे ॥

इस तरह के गीतों की बंगला साहित्य में कोई कमी नहीं है। इन गीतों को देखने से पता चलता है कि यहाँ भीषणिका बंगाल की सभी तरह की देवियों से सहज ही में मिल-जुलकर एक हो गई हैं। इस सहज मिलन का कारण है, बंगाल की जनता के बर्मविश्वास या बर्मसंस्कार के धन्दर से देवियाँ धरित सहज भाव से मिल-जुलकर एक बनी हुई हैं।

धार्मिक काम में व्यर्थ बीसवीं शदी के प्रारम्भ में शेषमोहन बन्द्योपाध्याय की 'ठकुरानी की कथा' नामक पुस्तक में उपासक पर सुन्दर विवेचन मिलता है। विवेचन पूर्ववर्ती मोस्वामियों के विवेचन के आधार पर होने पर भी उन्होंने अपने ग्रंथ में कुछ-कुछ मौलिकता का परिचय दिया है। मोस्वामियों के सिद्धान्तों को भी उनहू-जगह काफी माधुर्यमयि करके प्रकट किया है। उन्होंने भी अपने समग्र विवेचन में उपा को 'मूला धाया प्रकृति-शक्ति' के रूप में प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की है।

विवेचन के प्रारम्भ में ही ग्रंथ के प्रथिपाद्य विषय को बताते हुए लेखक ने श्रीराधिक का व्यक्त सुन्दर और तात्त्विक व्यञ्जनात्मक परिचय दिया है। 'राधा-कनकसता-वेष्टित इप्सा-वसास है विराजमान त्रिदिशम्बकार की मूर्ति गोविन्द-नीलमणि की दुर्लभ्य दुर्लभ मूर्ति को लोक-लोकनों को सुलभ बनाने के लिए ही कदनामयी राधा-बन्धवली उज्ज्वल शीत के मूर्ति स्वामसुन्दर की नित्य-सहचर है। यह सुलभ-तत्त्व ही नित्य-सत्य है ब्रह्मावस्था में भी यह सुलभ है। हम मोस्वामियों के विवेचन में देख पाए हैं कि ब्रह्म भगवान् का ही अंशमान है भगवान् की ही 'तनुवा' है यहाँ शक्ति का विकास स्मृतम है, कहाँ का शक्यता है कि बिलम्बन नहीं है। वर्तमान लेखक के मतानुसार यह ब्रह्मवत्त्व गोविन्दराजवत्त्व की ही सुपुष्पावस्था है यह है शीला के सभी तरंगमयि भावों को सम्यक रूप से वर्णन पूर्वक बहुवारम्बक की—'प्रियया स्थिता सम्परिष्कृतो न बाह्यं किञ्चन वेद, शान्तर'—अवस्था "तव पुष्प महीं जानता है कि वह पुष्प है, गारी नहीं जानती है कि वह गारी है। यह जो ध्रुव निस्तरं ब्रह्मानन्द है वही ऐतिरीय का—'रसो वै स है। यही कुंभ में उपासिषिठ सुपुष्प गोविन्द है, यही गौरीशृंग में शिगमूर्ति है—'माधीन "शिवमईतम्" है, उपा वही नित्य गारी है इप्स वही नित्य पुष्प है, इनमें कौन प्रधान है, कौन अग्रधान है वह प्रश्न नहीं उठता है, बल्कि देवक भक्तों के लौकिक व्याकरण को उलटता होगा—'पुलिन रात्र इत्र ब्राह्मणारि रात्र को प्रधान करके उरबीन स्त्री प्रत्यसिद्ध इत्रापी ब्राह्मणी धारि सधों को नहीं पाना होगा। सही की मूर्ति उपाशानी को 'प्रापेस्वरी' कार्य करके अपने पुलिन में उरबीन उसके कान्त को 'प्रापेस्वर' सम्बोधन करना होगा गोविन्द सजीवनों के धारात प्रापेस्वर नहीं है प्रापेस्वरी के वस्तम होने के कारण ही प्रापेस्वर है।'

(१) सुलभोव पूर्वालोचित 'राधावस्तव' सम्प्रदाय के मत।

‘बिद्वान्त आत्म का निर्विधेय ब्रह्मवाद भ्रान्त नहीं है लेकिन वह अस्त में ‘सत्त्वात्म का एकवैधमान है, अस्पष्ट है—उपाङ्गण की कुञ्जमन में सुपुष्टि है। किन्तु सुपुष्टिमर्ग के बाद बीजात्तरमित ‘अपर वेद्य ही अधिक वेद्य है, और वह—सुपुष्टिमुक्त उपास्याम त्रिय सखीजन मत्ता यद्योमति कामवेगु बृन्व अस्पष्टकमच बृन्वारभ्य की कोयल और पुष्पवाटिका बमुता का स्निग्ध जल चरद्वन्द्व का मेला और माता नर्म परिहास लीला है। वही ब्रह्मरूप है वही भी सुपुष्टि एक अत्रय उपागोविन्द’ ह।

निर्कुञ्ज मंदिर माने सुतल कुमुमभ्रमे
शुद्ध बोझ बाँधि कुञ्जपाथे।”

हमने पहले श्रीगोस्वामी का अनुसरण कर मयत् शक्ति के सम्बन्ध में जो विवेचन किया है उससे पता चलता है कि श्रीमद्भागवत की स्वल्प शक्ति की अतिशक्ति दो प्रकार से होती है एक उनके स्वल्प में और दूसरे उनके स्वल्प-विमर्श में। भगवान् की स्वल्प-शक्ति के अन्तर स्व प्रकाशतामन्नन वृत्तिविधेय है वही विद्युत्सत्त्व है। भगवान् के इसी विद्युत् सत्त्व से ही काम परिकर, बीजापार्यद सेवकारि वैभवोक्त विस्तार हुआ है और ब्रह्मानन्द के जीवसमूह भगवान् की तटस्वाशक्ति से जात है, अङ्ग-अयत् उनकी बहिरंगा मायाशक्ति से बना है। लेकिन वर्तमान लेखक के मतानुसार समग्र ब्रह्मवाम—यही तक कि अज्ञेतर काम और मूला प्रकृति प्राधाशक्ति एकमात्र उपा का परिणाम और विवर्तन है। श्रीशक्ति महामाया योदमाया योपनिष्ठा श्रीललिता पौर्यमायी प्रेम त्रिष्ठ नाम से क्यों न पुकारा जाय—योविन्द की स्वल्पशक्ति प्रकृति पारी प्रेम की देवी योविन्द की प्रीति के लिए अपने को योविन्द के आत्मिक में रखकर और गोविन्द को अपने प्रमानिजन में रखकर दोनों सम्मिश्रित होकर, दोनों आत्मविभोर होकर, सुपुष्ट मुक्तक्य ब्रह्म होकर रहते हैं और परस्पर जोड़ा ब्रह्म विरहित होकर, सम्पुक्त धमय बड़े होकर परस्पर स्पष्टनवीय होकर या गोष्ठ्यादि प्रवेशान्तरित अतएव बर्षन के आयोचर होकर समुत्कृ-
ष्टि रहते हैं और स्वयं सम्पुक्त अक्षंभाकार में रहकर भी श्रीउपा—छोटे अक्षंभाकार में अत्रा पया यद्योया नन्दपोयादि पद्म-गङ्गी यमुनादि के रूप में स्वयं विम्वस्ता परिणता होकर मुत्पोरिषयत आपत ब्रह्ममूर्ति होती है। योविन्द के ही मुन के लिए मन्वरा डारका बैकुण्ठ, पूष्ठी पावालादि देवा और देवा के जीव तथा दूसरी मम्पति के रूप में स्वयं विवर्तित होकर स्वल्पक्य अज्ञेतर शक्ति होती है। श्रीमती की तीन मूर्तियाँ हैं स्वल्प उपा-
मूर्ति परिधाव ब्रह्ममूर्ति और विवर्ते अज्ञेतर लोकमूर्ति। हम देखते हैं

कि इत मत के अनुसार राधा सत्, किंतु धीर भाग्यवकी कृष्ण की स्वस्वयंभक्ति के तीन बंधों में सिर्फ एक बंध नहीं है, राधा ही समर्पण है—एक धीर प्रवृत्तीय। इष्ट प्रबंध-भक्ति का परिणाम ही समग्र स्वयं-भार्य-जीवन-पधुपत्नी के साथ ब्रह्मसूत्रि है धीर जिसे अत्यन्त बहिरंग मयाभक्ति कहते हैं वह राधा का विवर्त नाम है। इसके अन्तर यह भी देखना होगा कि लौकिक मूढ-परिणति मूढबट धीर धनीभक्त राधा-परिणति ब्रह्म में एक मौलिक अन्तर है। वह अन्तर यह है "मिट्टी के बट में छोटे-छोटे बंधों में विभक्त होने पर सारे छोटे-छोटे बंधों के एकत्र न होने से सारी मिट्टी नहीं मिलती है। लेकिन 'समर्पण' राधारानी स्वयं प्रबंधाकार में बंधी भी है मगर ब्रह्माकार में ब्रह्म-भोग्योपी प्राधि वस्तुओं में बट न मिट्टी की भाँति, वर्तमान है। राधा मूलरूप में भी पञ्चक है मगर समग्र ब्रह्म राधा का ही आयम्पूह है।'

राधा-कृष्ण के प्रसंग में पहले अन्तर्गत 'पुरुष' धीर अन्तर्गत अन्तर्गत 'मायी' की बात कही गई है। वह पुरुष' धीर 'मायी' तत्त्व ही 'विषय' एवं 'धायय' तत्त्व है। जो कृष्ण को प्यार करते हैं वे प्यार के 'धायय' धीर स्वयं कृष्ण प्यार के 'विषय' हैं। धायय अन्तर्गत कृष्ण की वृत्ति के लिए बहुतेरे प्रकार की चेष्टा करते हैं। ये धायय ही मोक्ष हैं देखक है—यही मायी तत्त्व है। जो विषय है मोक्षदा है देखक है, यही पुरुषतत्त्व है। "सारे ब्रह्मवासी क्या मन्त्र, मुबन्ध क्या पशोमती कृष्ण ब्रह्मा पद्या मलिता राधा—सभी अपने अपने बाब के अनुसार कृष्ण को ही प्यार करती हैं अतएव तब गोविन्द ही एक प्रवृत्तीय पुरुष है इसके सभी मायी हैं। पुरुषावैधी मन्त्र-मुबन्ध-श्रीधामाधि राधा-परिणाम के विवर्तन के अन्तर्गत हैं, वे पुरुष नहीं हैं वे राधा परिणाम है राधा-मायु की बनी हुई ब्रह्म मारियाँ हैं। ब्रह्म में पुरुषावैधी मन्त्र का स्वरूपण मायी होकर भी उन्मत्त पुरुष होने का अन्तिम विवर्तमान है विवर्तबध यह पुरुषामिपान धीर उन्मत्त पुरुषामिनिवेश के न होने से किष्वात्मस्व धीर सत्य मन्त्र में बाधा होती है।

अस्म हो सकता है, 'भगर प्यार करने से ही मारी हुआ का संस्था है तो कृष्ण भी तो हमारी अङ्गुरानी को प्यार करते हैं इसलिए मायी है धीर अङ्गुरानी प्यार का 'विषय' होकर पुरुष है।' इसके उत्तर में

(१) पुनर्नीय—पूर्वमन्त्र पूर्वमिष्टं पूर्वमिष्टं पूर्वमिष्टं ।

पूर्वमन्त्रं पूर्वमन्त्राय पूर्वमिष्टायतिष्ठते ॥

कहा गया है—“साठ कहने में क्या राधा-काण्डा में कौन पुरप है, कौन नारी है इसका विचार करने की सामर्थ्य हममें नहीं है। शायद वे ही कुछ नहीं जानते। राधा और उनका परिणाम समस्त प्रकृति का प्राथम्य होने के कारण नारी है। और प्रकृति को प्यार करके प्रकृति का प्राथम्य होने के कारण कृष्ण नौ नारी हैं।

साधारण तौर से कहा जा सकता है कि—“कारण” की सुप्ति-स्वप्ता ही ब्रह्मनिर्विघ्न है। जाग्रत भाव ब्रजलोक है और स्वप्नलोक ब्रह्म-लोक है। यह ब्रजलोक साधारणतः ब्रज के बाहर कल्पित होता है। लेकिन वेदक के मतानुसार—“ब्रजतर बहिर्द्वेष नहीं है। बुद्धि ब्रज प्रकृत्यापी है। समस्त वेद ब्रज और नित्यलोक है। उपतिरिक्त कोई स्वप्न नहीं है। हम यथा ब्रह्म में ध्येय रहकर ब्रह्म के धर्म ही स्वप्न में बड़े-बड़े रहकर और मीमांसा को रचित देखते हैं। यह मानो ब्रह्म के बाहर है मगर ब्रह्म के बाहर नहीं है—मर के धर्म ही तद्रूप ब्रह्म में ही रहकर ब्रह्म में निहित सुप्त ब्रह्म स्वप्न देखते हैं, तब ब्रह्म के धर्म ही ब्रह्म के बाहर की भाँति माना लोभों की रचना मिलती है। यहाँ-यहाँ नोकिन्व भयने को—कर्मबुद्धि ब्रह्मलोक समस्तानिर्विघ्न विघ्न भयोप्या के राम जानक नरसिंह, द्वारका के राजा समुद्र के तीर पर मोहिनी पाताल के कर्मादि समस्त हैं। भीमती आङ्गुली भयने को लक्ष्मी ब्रह्मलोक इत्यभ्यासा सीता ब्रह्मलोक समस्त हैं। हम जो ब्रह्म-लोक के बीच हैं—“हमें ब्रह्म के लक्ष-यतोमती सुक-शारी भयने-भयती बुद्ध-लता श्रीराम-सुख कृष्ण-प्रेमती या सखीपथ—सर्पात् कृष्ण के सेवक नारीमान हैं। उसे सुप्त ब्रह्म ही नहीं है। लेकिन स्वप्न भूल जाने से क्या होता है हम नारी ही हैं। भक्ति ब्रह्म ब्रह्मलोक नारीत्व ही भक्ति ब्रह्म का साधक राधात्व है।

साध्य के मतानुसार विघ्न पुरप-ब्रह्म का विवेचन किया गया है यहाँ प्रकृति धर्मनी ब्रह्म और स्वतंत्र है। धर्मतः प्रकृति पुरुष से सम्पूर्ण रूप से हो है। सत्त्विक सम्पर्क से प्रकृति या पुरप में या दोनों में ब्रह्मलता होती है। यह ब्रह्मलता ही ब्रह्म है। इत मत्त क अनुसार प्रम ही ब्रह्म है। धर्म—श्रीराधीन्य ही मुक्ति है। बुद्ध के भक्त्यावास में ही मुक्ति होती है—इत्यत्र मत्तत्र यह नहीं कि मुक्ति पारम्पर्य है। लेकिन के मतानुसार इस प्रकार के मत के नाक्यकार ‘अपि है मगर यह नहीं है। धर्म-अपि मात है। यह माया पुरप की ब्रह्म की पत्नी है—भक्ति द्वारा ब्रह्म लपुप होकर भोक्ता हुए है। प्रकृति ईश्वर की ‘नारी’ है। ईश्वर की उपाधि है। वैदिक यह कहता है कि कोई भी उपाधि यत्कि कारणता ब्रह्म में होने पर ही ब्रह्म प्रत्य न होकर प्रत्य होता

है लेकिन वैष्णव मत में प्रकृति या शक्ति शब्द ब्रह्म का स्वरूप है, वह ब्रह्म की शब्दपटा को कोई शक्ति नहीं पहुँचाती है। शक्ति और शक्तिमान् ईश्वर शब्दों में एक ही हैं। ब्रह्म को ध्यान-स्वरूप होता हो तो ध्यान को जो प्रधान श्रेष्ठ विषय और 'धाम्य' इन दो नामों में विभक्त होना होगा ये विषय-धाम्य ही तो मुख्य-गती—कृष्णराधा है। ध्यान का पूरक निर्देश किया गया लेकिन इससे वस्तु शब्द नहीं हुई शक्ति और शक्तिमान् का शब्द ही निश्चित वस्तु है। विवशावशत दोनों का उल्लेख मात्र हुआ। "विवशावशत" यह जो शब्दों का उल्लेख है उसमें यही शब्द रहना होगा 'शब्द का सापेक्ष ही है कारकत्व नहीं है। 'यहाँ एक उपहित है, दूसरा उपाधि है। इच्छा उपहित होने पर राधा उपाधि है राधा उपहित होने पर कृष्ण उपाधि है सम्बन्ध—शक्तिधाम्य है। राधा कृष्ण की स्वरूप शक्ति है स्वरूप-शब्द का तात्पर्य है "स्व और स्वरूप एक ही वस्तु है जो राधा है वही शक्ति है जो गोविन्द है वही राधा है। गोविन्द राधा को प्यार करता है राधा भी गोविन्द को प्यार करती है प्यार ही रस है राधा भी रस है गोविन्द भी रस। कृष्ण 'मदन मोहन' है। मदन को लेकर कोई कृष्ण के पास जाय तो कृष्ण उठ मदन को मोहित करके प्रात्येन्द्रिय-प्रीति-दृष्ट्या को कृष्णोन्मत्त-प्रीति-दृष्ट्या में पर्यवसित करता है। इसीलिए कृष्ण के से रूप हेरिसे काम हम प्रेममय" (उस रूप को हुँने पर काम प्रेममय होता है)। किन्तु कृष्ण से भी बड़ी है हमारी राधा के मदन-मोहन-मोहिनी है। "राधा हमारी ठठकी कञ्जामयी और साध्यामयी है उसकी प्रयात मामुरी यह है कि उनका कृष्ण के प्रति प्रेम शरीर है उस प्यार से स्वयं कृष्ण प्रसन्न होकर प्राकृत होते हैं उस प्यार के पीरों में पड़े रहने के लिए कृष्ण साक्षात् होते हैं उस प्यार के पीरों में पड़े रहने के लिए आपने करके मूडु काम शक्तिसारिका निर्दुःख में आकर मिलित होने पर गोविन्द—'निद्र करकमले मोदत हेरर चिर चिर धीरि।

'राधा गोविन्दा वा गोवमाया वा महामाया है राधा मुपुत्त गोविन्द को शक्तिज्ञान से मुक्त करने पर मायो नित्यकाम ब्रह्म की उत्पत्ति शुरू हुई और तालाबिब कैसिबिनास छोटे-बड़े विरह और उज्ज्वल-ममर के पन्थ य फिर नौनों मुपुत्त और फिर चागरब और प्रज की समुत्पत्ति होती है। यह पारम्पर्य ही पूर्ण तत्त्व है विरह और मिसन फिर विरह और फिर मिसन ही रस है। चिरमिसन से विरहित की शीतों के शीत

सुख जाने पर निरलसाह रस के रसत्व का समाव होता था। इसीलिए राधा-गोविन्द परामर्श करके जब मैं विमग्न ही घाँसों के घाँसू नहीं पोछते हैं। छोटे-सम्बे बिच्छू में प्रेयसी की घाँसों का घाँसू प्रवाहित करने बाद मैं पुनर्मिलन संघटन के द्वारा अपने कमलकरों का बुझन करके गोविन्द प्रेयसी के चन्द्रवदन के घाँसू पोछते हैं। मिमन] के घाँसू भितने ही झसझसा उठते हैं। गोविन्द उठने ही मल से समाहार से घाँसू पोछते हैं।

सुषुप्ति में भी कृष्ण का बिच प्रकार राधा से गहरे प्रामिषन के धाम मिमन होता है। जागने पर भी उही तरह सर्वत्र ही राधा—सब कुछ ही राधा है। इस बात को भेदक में बड़े सुन्दर ढंग से कहा है—“कृष्णने बाग कर बगल में पीठ-बसत देखा सोने के रम का पीठ बसत धम में लपेटने जाकर देखा कि वह बसत नहीं है वह राधा है—झाड़िनी है—प्यार की राधी है। इसी एक ही राधा ने अपनी सोमह कनार्यों से सोमह ह्वार गोपियाँ बनाकर प्रत्येक गोपी का प्रेमबिधिय प्रस्ताव करवा है। उहीने एक विश्वव्यापिनी नारी ही सुब प्रमिमन्वु (भ्रामान बोय) होकर, जटिम-कुटिमा होकर अमगिनत बाबा-विपतियों के घम्बर से प्रेम की परिपुष्टि की है, सुबल भवमंवल थीशमादि होकर नर्मससा मिब कृष्ण को सख्य रस का प्रस्ताव करवा है। मन्व-मद्योवा होकर वात्सल्य रस का प्रस्ताव करवा है। इस तरह जब ही भीराधा का कायम्भूह हो उठ्य है। वह सर्वव्यापिनी प्रीति—इस सर्वव्यापिनी नारी थीराधा की ही बय है—वह बयकार केवल मक्त के कंठ में ही नहीं—स्वयं थीमगवान् के कंठ में भी है।

कितने लोगों ने रखा इसके बारे में काफी बहस है लेकिन इन बहसों और
 संकामों के बावजूद पूर्ववर्ती काल के सभी स्वतन्त्र सूक्ष्म-हस्ताक्षरों की
 संज्ञासूचियों को करते हुए एक बात माननी पड़ती है कि ये पीठिकाओं
 में बंगाल के प्राथमिक और प्रेमबर्ष के कितने ही सार्यक विषय हैं। साहित्य
 के पक्ष में यही इनका विशेष मूल्य है। इन प्रेम-नीतिकार्यों से वैष्णव
 प्रेम-कविताओं की तुलना करने पर दोनों में कई आश्चर्यजनक साम्य देखते
 हैं। ये साम्य केवल बटना सम्बन्धी ही नहीं भाव और भाषा सम्बन्धी
 भी हैं। इन बातों को देखकर हम स्वभावतः इन पर वैष्णव-कविता के
 प्रभाव की बात कह सकते हैं। लेकिन ये साम्य एक पर दूसरे का प्रभाव
 जन्मित न होकर सायद यही बात यह है कि बंगाल की एक विशेष बीजन-
 प्रणाली—और जिस विशेष बीजन में प्रेम की भी एक विशेष बात थी—
 उस प्रेम की अभिव्यक्ति की भी कई विशेष परिभाषें थीं। उस भाव
 की भाव और अभिव्यक्ति की संगिमा एक सामान्य भारतीय उत्तराधिकार
 के दौर पर वैष्णव कविता और दूसरी प्रेम-नीतिकार्यों में दिखाई पड़ी
 है। भाव और अभिव्यक्ति की संगिमा की दृष्टि से वह साम्य बगह
 बगह कितना पहर है यह कुछ उद्धरणों से साफ हो जायगा। जिस तरह
 वैष्णव-साहित्य में देखते हैं कि कृष्णने बंधी बनाकर राधा को बाट पर
 माने का संकल्प किया है इन पीठिकाओं में बहुतेरे स्थलों पर देखते हैं
 कि उही तरह नायक ने नायिका को पकड़नी बाट पर माने के लिए
 इच्छा किया है।

(१) तुलनीय

सिरे खिल धार बाँधिनी तुम्हा मिल हस्तो ।
 धर दिया बाजाइल बाँधी मजुपारे धारिने ॥
 प्रातमान्ते बैतार बड डले बने जन ।
 बाँधी तुम्हा सुम्बर कइस्यार जाँया येन बुन ॥

मजुपा (नेवर्तितह पीठिका)

प्रायः प्रांगुल बाँसेर बाँधी मध्ये मये धेवा ।
 नाम परिया बाजाय बाँधी कर्लीकनी रावा ॥
 लेह बाँधी बाजाइया मइवल मनेठे बाय ।
 बाजि केन सुम्बर कइया किरुया किरुया बाय ॥
 बाजि केन मइवाल तोमार हइल एम्न ॥
 तोमार हजे बाँधी हइल होवबन ॥

सुख जाने पर निरस्ताह रस के रसत्व का प्रभाव होता था। इसीलिए राधा-बोधिन्द परमर्ष करके ब्रज में बिलकुल ही घाँसों के घाँसू नहीं पोछते हैं। छोटे-सम्बे बिरह में प्रेमघी की घाँसों का घाँसू प्रवाहित करके बाद में पुनर्मिलन संघटन के द्वारा अपने कमलकरों का चूमन करके, बोधिन्द प्रेमघी के चन्द्रबदन के घाँसू पोछते हैं। मिलन के घाँसू बितने ही धूलधमा उठते हैं। गोविन्द उतने ही यत्न से समाचार से घाँसू पोछते हैं।”

सुपुष्टि में भी कृष्ण का जिस प्रकार राधा से गहरे धातिलगन के साथ मिलन होता है। आपने पर भी उसी तरह सर्वत्र ही राधा—सब कुछ ही राधा है। इस बात को लोचक ने बड़े सुन्दर ढंग से कहा है—“कृष्णने बाव कर बगल में पीठ-बतन देखा सोने के रंग का पीठ बतन ढंग में लपेटने पाकर देखा कि वह बसन नहीं है वह राधा है—झाड़िनी है—प्यार की रानी है। इसी एक ही राधा ने अपनी सोलह कसाओं के सौसह हृत्कार योपिमा बनाकर प्रत्येक गोपी का प्रेमबोधिभ्य धास्वाह करवा है। उसीने एक दिम्बध्यापिनी नारी ही कुछ धर्मिण्यु (दायाब बोप) होकर, बटिम-कुटिता होकर धर्मिण्यु राधा-विपतिर्या के धन्वर से प्रेम की परिपुष्टि की है। सुबल मभर्मयन श्रीरामादि होकर नर्मसखा प्रिय कृष्ण को सक्य रस का धास्वाह करवा है। नन्द-यद्योबा होकर बालक्य रस का धास्वाह करवा है। इस तरह ब्रज ही श्रीपदा का कायभ्युह हो उठा है। यह सर्वध्यापिनी प्रीति—इस सर्वध्यापिनी नारी श्रीपदा की ही वय है—वह वयकार केवल भक्त के कंठ में ही नहीं—स्वर्ग श्रीमपदान् के कंठ में भी है।

परिशिष्ट

बंगाल का ब्रह्मव प्रेम-साहित्य और पार्थिव प्रेम-साहित्य

बंगाल की वैष्णव-कविता में ब्रज भाषा की एक प्राकृत मानवीय मूर्ति है। हम ने पहले कहा है कि साहित्य की दृष्टि से विचार करने पर वैष्णव साहित्य में बहुतेरी अवस्था में यह प्राकृत मानवीय भाषा ही काम-मूर्ति है ब्रह्मव की अप्राकृत भाषा उसकी प्रथमीय भाषा-मूर्ति है या उन्हें कि प्राकृत मानवीय की ही प्रतिष्ठा हुई है—उस पर अप्राकृत ब्रह्मव का शब्द शब्द पर स्पर्श लगा है। वैष्णव-कविता की भाषा पर विचार करते हुए स्वर्गीय दिनेशचन्द्र सेन ने एक जगह अत्यन्त प्रशिषानयोग्य कुछ बातें कही हैं। उन्होंने कहा है—“काव्यरसता की दृष्टिसे गुरुका का शीघ्राशील विभिन्न प्रेम मनुष्या और अनाकृती की निष्ठा काव्यमाता का प्रेम की धर्म में जीवन-प्राप्ति—उद्योग में किसी भी युग में किसी भी नायिका ने प्रेम के पथ पर बसकर जो अमानुषीय गुण दिखाए हैं—भाषा उन सब की प्रतीक है। सैकड़ों पंथी पिता पर बस कर भस्म हो गई हैं—उस पिता की पूव विमूर्ति से भाषा का उद्भव हुआ है। वे 'सती' गम और नायिकाएँ हृष्य स्वरूप हैं लेकिन जब वह हृष्य होमाभि की प्राप्ति होती है तब उसका नाम होता है भाषा-भाव। साहित्य की दृष्टि से विचार करने पर हम देखते हैं कि बंगाल में मुनी से ब्रज नायिकों ने प्रेम की साधना की है उनसे पश्चिम की एक समन्वयता है। बंगाल की भाषा अनेक स्थलों में 'अवसा-अवसा' बंगाली के बर की लड़की या कुसुमपु बन गई है। प्रेम सभी देशों और सभी कालों में एक होने पर भी भिन्न-भिन्न देशों की जीवन-यात्रा और परमपथ का अन्तर्धान करके प्रेम की अपने अन्तर्धान और अन्तर्धान की विशेषता के अन्तर् से विशिष्ट हो उठता है। इसीलिए वैष्णव-कविता का अन्तरेजी अनुवाद करने बीटा तो 'मानिनी भाषा' अर्थ का ठीक-ठीक प्रतिपादन नहीं है पाया। वास्तव में 'मानिनी भाषा' में एक एसी सूक्ष्म सुकुमार भाव दीयता है जो यूरोपीय प्रेमजीवन में सुलभ नहीं है वहाँ जीवन में सुलभ नहीं है वहाँ भाषा में सुलभ नहीं होगी? वास्तविक के भाषा-प्रेम का

विस्मय करने पर हम देखते हैं कि राजा-कुल के प्रेम के कुछ विषय प्रवृत्त हैं। या तो कुल की बच्ची राजा ने काँच में गायर लिए घाट पर पानी भरने का इन्धन का साक्षात्कार पाया है नहीं तो गाँवों की बचपने हुए इन्धन की बँधी घुनकर प्रेमासक्त हुई है नहीं तो स्वामि की कुलबधु यही-युव लेकर हाट बनी है। रास्ते में इन्धन से साक्षात्कार और मिलन हुआ है, भारतीय रमणियाँ हीन्धन से यौवन में प्रवेश करते ही या कुलबधु होते ही अपनी बधाओं में 'बर हूँते धांगना विवेध' (बर से धांगन में जाता विवेध ही जाता है) प्राचीन जीवन के इस प्रकार की सामाजिक परिस्थिति में प्रेम करने के जो-जो सुभीते थे राजा की प्रेमसीमा में हम केवल ऊँची का उल्लेख या प्रतिदि पाते हैं। सुसम रास होती प्राणि सीमारों धामबाधा या धामबधु के लिए प्रसस्त नहीं है। उल्लेखान या राज-मंत पुर में ही इसके लिए अधिक संभावना रहती है। इसीलिए हम देखते हैं कि पूर्वोक्त के तौर पर बंगाली कवियों ने इन सीमारों के कुछ-कुछ पद लिखे हैं वहीं में लेकिन इन सीमारों के धारण राजा-प्रेम का उल्लेख नहीं दिखाई पड़ता है। उस उल्लेख को सहजभाव से व्यक्त करने के लिए दूसरी विविध धाम्य प्रेमसीमारों को मड़ना पड़ा है।

भारतवर्ष की प्रकृति से यहाँ की जीवन-प्रणाली का जो सहज बंधन है उसमें हम देखते हैं कि भारतवर्ष की बर्षा-रतु और यहाँ के प्रेम से एक मन्त्र सम्बन्ध है। इस उल्लेख को सुविधित और सुसुन्दर प्रति व्यक्ति वास्मीकि के युग से धारण एवं निरन्तर बनी पाई है। इसीलिए भारतवर्ष की धार्मिक विरह की कविता है बर्षा की कविता। वैष्णव कविता में भी यही बात देखते हैं। इस बर्षा से कदम्ब-कुंज का गहण सम्बन्ध है। क्या इसीलिए कदम्बकुंज बीरे-बीरे इस तरह वैष्णव-साहित्य में मुख्य हो उठे और प्रेमावधार भीहृत्क से अभिन्न भाव से जुड़ गया ? चोर बर्षा में इस नीपकुंज की महिमा जिस तरह निकर उठती है, संसार में दूसरी कबह वह दुर्लभ है। पायल इसीलिए केवल भारतीय वैष्णव-साहित्य में ही नहीं भारतीय प्रेम-साहित्य में इस नीपकुंज ने इतना बड़ा स्थान अधिष्ठित कर रखा है।

घाट पर पानी भरने जाकर घनबने मित्र से साक्षात्कार और प्रेम यह केवल बंगाल के वैष्णव-साहित्य में ही नहीं बंगाल के धारे प्रेम-साहित्य में सघनीय है। वैष्णव-कविता के समावा बंगाल में जो दूसरी प्रेम-कविताएँ मिलती हैं उक्त 'नीपकुंज-गीतिका' और 'पूर्ववर्ग-गीतिका' के धारण हम सर्वत्र इस नीप को पाते हैं। इन गीतिकाओं को किन्तु समय

किम लोगों ने रचा इसक बारे में काफ़ी बहस है लेकिन इन बहसों और संकाशों के बावजूद पूर्ववर्ती कास के समी स्तुत सूक्ष्म-हस्तावशेषों की संभावनाओं को करते हुए एक बात माननी पड़ती है कि ये पीतिकाशों में बंगाल के प्राणधर्म और प्रेमधर्म के कितने ही सार्वक विश्व हैं। साहित्य के पक्ष में यही इनका विशेष मूल्य है। इन प्रेम-पीतिकाशों से वैष्णव प्रेम-कविताओं की तुलना करने पर दोनों में कई धारणव्यवहारक साम्य देखते हैं। ये साम्य केवल बटना सम्बन्धी ही नहीं भाव और भाषा सम्बन्धी भी हैं। इन बातों को देखकर हम स्वभावतः इन पर वैष्णव-कविता के प्रभाव की बात कह सकते हैं। लेकिन ये साम्य एक पर दूसरे का प्रभाव अति न हीकर साथ ही बात यह है कि बंगाल की एक विशेष जीवन-प्रणाली—और जिस विशेष जीवन में प्रेम की भी एक विशेष बात थी—उस प्रेम की अभिव्यक्ति की भी कई विशेष अभिव्यक्ति थीं। उस भाव की बात और अभिव्यक्ति की अभिव्यक्ति एक सामान्य भारतीय उत्तराधिकार के तौर पर वैष्णव कविता और दूसरी प्रेम-पीतिकाशों में दिखाई पड़ी है। भाव और अभिव्यक्ति की अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह साम्य अपह्व कमह कितना बहस है यह कुछ जगहों से साफ़ ही सामना। जिस तरह वैष्णव-साहित्य में देखते हैं कि कुल्लने बंसी बजाकर राधा की बात पर जाने का संकित किया है इन पीतिकाशों में बहुतेरे स्वर्णों पर देखते हैं कि उसी तरह नायक ने नायिका को एकैसी बात पर जाने के लिए इच्छा किया है।

(१) तुलसीय सिरि बिल धार बाँझरी तुम्हा जिल हते ।
ठार दिया बाजाइल बाँझी मनुपारे आम्हिले ॥
आत्तमासेते बँतार बर शके घने घन ।
बाँझी तुम्हा तुम्बर कह्यार बाँझ्या मोल पुन ॥

मनुया (मैमनसिंह पीतिका)

आम्ह बाँझुल बाँझेर बाँझी नप्ये मय्ये सेबा ।
बाज करिया बाजाय बाँझी कर्मकर्मि राबा ॥
तेह बाँझी बाजाइया बहबल पोखे जाय ।
आजि केन तुम्बर कय्या किर्या किर्या जाय ॥
आजि केन महवाल तोमार हइल एमन ।
तोमार हते बाँझी हइल होपमन ॥

‘मैमनसिंह गीतिका’ की ‘महुया’ कविता में पनघट पर अघार ठाकर
धीर महुया से युक्त साक्षात्कार धीर कपोपकवन—

जत भर सुन्दरी कह्य्या जते विस मन ।

काइल जे कह्यिनाम कथा धाये नि स्मरण ॥

यादि हमें श्रीकृष्ण-कीर्तन के यमुना के बाट पर राधा धीर कृष्ण की चेट
धीर दोनों के कपोपकवन—

काहुर बहु तौ काहुर राजी ।

केहूँ यमुनात तोलति पापी ॥

यादि का स्मरण कर रीं । ‘महुया’ गीतिका में देखते हैं कि इस कपोपकवन के
श्रम में अघार ठाकर के ब्याह की बात पर दोनों में बातें हो रही हैं—

“सज्जा नाइ निर्जस्र ठाकुर सज्जा नाइ रे तर ।

पनाय कतसी बाइया जने दुबया मर ।”

“कोपाय पाव कतसी कह्य्या कोपाय पाव बड़ी ।

तुमि हधो ष्ठीम पाय धामि दुप्या मरि ॥”

इससे श्रीकृष्ण-कीर्तनके शान-संघ की राधा-कृष्णकी उक्ति-प्रत्युक्ति तुलनीय है—

घारे भैरव पतने गात्र यह्युलि पिछा ।

संगा जते रैस गले कतसि बाधिघा ॥

;

तोर दुइ उब राधा भैरव पतने ।

निच्छे बाधिते डुर बाइबो कि कारणे ॥

तोर दुई कृष्ण कुंज बाधि निय गले ।

बोल राधा रैसो मो लाबध पया जने ॥

निति निति हइने देखा एमन वा ह्य ।

धात्रि कैम सुन्दर क्यार बीजन संजय ॥ महात्म-बन्धु,

(पुर्बर्ग-गीतिका द्वितीय बंध, द्वितीय संख्या)

धामार उहेने बन्धुरे धारे बुन्धु बाबाय भोहुन बांसी ।

धामार धासार धासारे धारे बुन्धु बाके जनेरपाये बसि ॥

काम्हिया बांजीर सुरे हायरे बन्धु कप मजर कथा ।

ताहार काबन सुन्दार धारे बुन्धु धामार बिस हइल प्यवा ॥ इत्यादि,

(मांजुर या, पृ ५१२)

(१) प्रथम संघ द्वितीय संख्या (कमकला विश्वविद्यालय)

(२) तुलना-आर प्राय पुटे बुके धरिते ना पारे ।

पनात पापर बापी रहे पती बरे ॥

तोमे पांग बाराजसी लक्ष्मीत ज्ञान ।

तोसे मोर सब लीत्य तोल पुष्य स्थान ॥ श्रीकृष्ण-कीर्तन ।

धिर- सज्जा नाइरे निलाब क्यनाइ सज्जा नाइरे तोर ।

गने कतसी बांध्या गिया जने इय्या मर ॥

कोपाय पाव कतसी राव कोपाय पाव बड़ी ।

तोमार कांवर कतसी बापी धार कोना बांया बड़ी ॥

प्रेम की जो बाधमायी वा धमासी राधा के निरह में देखते हैं वही इन पीठिकायों की बहुतेरी गायिकायों के अन्तर समान अर्थों और सामान सुनों में पाते हैं। रागसीमा प्रायि के क्षेत्र में बिच तरह हम देखते हैं कि कृष्ण ने रास्ते में धमातक राधा को पकड़ने की चेष्टा की है, उसके बदन के छोर को पकड़कर लीचा है—भयवा और भय से छड़ाने के लिए राधा ने न जाने कितनी कितनी की है। 'धोपार पाट' पीठिका में भी देखते हैं कि पगपट पर कांचनप्रासा वही कितनी कर रही है—

पुष्करिणीर बाहर पारे रे कुम्हल बाम्या कुल ।
घाहरा डैरे बेगरा बन्धु भाइका बान्ताम कुल ॥

१ १ १ १ १ १
कुपमव पाइर लोक कुपमपि करिबे ।
एगल कम्मे देखते बंधु कर्तक रटबे ॥

हस्त छाड़ पराधेर बन्धु बइला बाइताम भरे ।
कि बानि कखेर कलसी भासाइया नेय सुते ॥
दूरे बाने मनेर बांशी ऐ ना कला बने ।
तोमार संते भइव बेला राबि निदा कले ॥'

लेकिन इस 'राबि निदाकाल में' मिसल का संकेत करके राबानेबिल तरह बर से बाहर न हो पा सारी राठ पकड़ते हुए काटी है उसी तरह—

पारलाम ना पारभाम ना बंधु भइलाम माचार बिचे ।
सत्य बंध हइल रे कुमार पारलाम ना धासिते ॥
भाभो बाव बाइया भाधे धासिताम केमने ।
धर कइलाम बाहिर रे बंधु पर कइलाम धापन ।
भवलार कुलमय हइल कुपमव ॥

कितेर कुल हिलेर मान धार ना बाजाधो बांशी ।
मनप्राबे हइयाधि तोमार बीबरने दासी ॥
एकदुखानि बाकरे बन्धु एकदुखानि रइया ।
काबा धुमे बाव भाभो ना पइक धुमाइया ॥
धातमाभेते कालमेघ काले धन धन ।
हाय बंधु धाबि बुसि ना हइल मिसल ॥
बुटि पड़े द्युर द्युर बाइरे केन भिज ।'

(१) कुर्बबग पीठिका, २म अंक, द्वितीय संख्या ।

(२) तुलनीय— धर बंधु बाहिर बाहिर बंधु धर ।

पर बंधु धापन धापन बंधु पर ॥ चंडीदास ।

(३) तुलनीय— धाबिनार भास बंधुया भिबिबे धाबि । चंडीदास ।

बरेर पाबे मानर पाता काइठपा मानाय बर ॥
 निजिल सोनार भंग राबि निझाकाले ।
 धनायी निच्छे बाकले मुझाइताम केयो ॥
 संतार घुमाइया प्राबे केवल बाबे बांसी ।
 हइया बरेर बाहिर कोल पबे प्राप्ति ॥
 काटपा मेळे काला मेव बाहिर उदय ।
 पइ पबे बाइते गेले कुलमालेर भय ॥
 काम नाइ पाल नाइ कुटिया ना रह्ये कुल ।
 बन्पुरे पाइले धानार कितेर जातिभुल ॥

इन पदों के बारे में शिरोध बाबू का मूलम्य भावमूल अर्थव्यञ्जक है, इसलिये उसे उद्धृत किया जाता है। 'इन पदों से साफ समझ में आता है कि चंडीदास के रामाष्टक पदों का आधार कहीं है। ये चंडीदास के परबर्ती हैं या नहीं यह नहीं कह सकता। लेकिन सारे बंगाल में जो कवि-
 तारें किसी पूर्व युग में फूल की तरह विकार गई थी जन्ही ने परबर्ती काल में वैष्णव कविता को समृद्ध किया है यह बात स्पष्ट समझ में आती है। काचनमाला की खेदोक्ति चंडीदास के बहुतेरे पदों की बात स्पष्ट धीरे प्रस्पष्ट रूप से स्मरण करा देती।

तोमार लानिया प्राप्ति जीमले बे मरा ।

कर्मबोलेते प्राप्ति हइमाम कपासपोड़ा ॥

बइर संगे छोडर विरीत ह्य धपठन ।

जबा पाबे उठले जमन पड़िया मरण ॥

जमीन धाइड़ा पायो बिले धूम्य ना लय भर ।

दियार मांस कसक्या बिले धापन ना ह्य पर ॥

फुलेर संगे भमरार विरीत जमन धापे बुझा बाय ।

एक फुलेर ननु बाइया धार फुलेते जाय ॥

मेबेर संभ बन्पुरे भासाइ कत कुल रय ।

बाबे बेबि धंभकार लक्षके उदय ॥

फुलोकर संभ विरीत संभे क्वाल घटे ।

जमन जिह्वार संगे दतिर विरीत धार छुलेते काटे ॥

ना बुझिया ना धुनिया धापने हस्त बिले ।

कर्मबोले धमायिनी धापनि मजिसे ॥

इस तरह देखते हैं कि इन नीतिशा के प्रेम-उपास्यान धीरे उसके बर्धन के धन्दर बहुतेरे स्थान हैं जो वैष्णव-कविता के पर-विशेष करके

(१) तुमनीय- कहियो बन्पुरे तइ कहियो बन्पुरे ।

मननविरोधी हूत पाय धाराबरे ॥ चंडीदास ।

सुद बंगाली कवि चंडीदास का स्मरण करा है। 'स्यामरादेर पाता' में देखते हैं—

सुखेरे कहराधि बेरी रे बन्धु बुन्नेरे दोसर ।
 सुद बन्धर विरीये मज्जा घापन कइनाम पर ॥
 बुन्नेरे करिनाम बेरीरे घामि भ्रमला रमणी ।
 तोमार विरीये मज्जा कलहेरे घालि ॥
 परेते साविल बल्लुन रे बन्धु देपारे ते कष्टर ।
 साब करिया बाइ विरीत पाखेर गोटा ॥
 बे कने बाइपाये बन्धु विरीत पाखेर फल ।
 कर्कक भरन दुर बन्धु कोषन लफल ॥

ये कविदारें चंडीदास के 'पीरिति' (प्रीति) सम्बन्धीय पदों के प्रभाव से रची गई हैं ऐसा नहीं प्रतीत होता। बल्कि यही लयता है कि बंगाल की

(१) तुलनीय— ना लइपी ना लइयो बंधु कांषनपात्तार नाम ।

तोमार बरखे घामार कलेक परनाम ॥

(बोपार पाठ पु. पी. ११२)

"तोमार बरखे बंधु दातेक परनाम ।

तोमार बरखे बंधु लिल आमार नाम ॥

निखिले बसोर नाम भागे यहि बाप ।

बाटिले निखिया नाम बरख दिधो ताम ॥ चंडीदास ।

पीरित कतन पीरित प्यन रे

घारे भाला पीरित मसार हार ।

पीरित करपा बे कल नरे रे

घारे भाला लकन बीचन तार ॥

(मंजूर मा. पू. पी. ३१२)

बान्धु झाड़ा काल रे निमि बेख सबाइ बे घांघारा ।

बैचन काले नारीर पति बुन्नेर भमरा ॥ बन्धु बाइयो नारे ॥

बखर डेग्येर नबीरे तले बैचन तरी ।

पूजन काले दाइरा गेले के दाइ कान्धारी ॥ बंधु...

। । ।

खीला तय जया तय न्यरे पितल कांठा ।

बापिले से पङ्क आपरे नरे घावे घाया ॥ बंधु ॥

। । ।

घनाम्या नारीर बैचन बहराये जोघारे ।

पुइ पालि नष्टघाइले बैक घारत नाइ से किरे ॥ बंधु...

इत्यादि, (घामला-विधि, पु. पी. ३१२)

बेइ रे बिरकैर तले बाइ घारे घाम्या पामोनेर घाये रे ।

उम जेठा गेइ लागे बैक कपल्लेर बुये रे ॥

बहराए कृषिरे गेले बेख बहरा घुकाय ।

घायेर ना बावसल लागले घार नस्ता कसुनि

सिमाय रे ॥ इत्यादि (यहाँ)

हवा में सर्वत्र यह जो 'पीठिति' के काव्य रूप के टुकड़े झंझट होते थे उसी का सुबिम्बस्त प्रसिद्ध रूप ही बंदीबास के राधा-प्रेम की पवाबसी है। इन गीतिकार्यों में जगह-जगह चरबाहों की बड़ी सुलकर मुग्धा मन्मथमुण्डगिणी प्राम्यबालाओं के ऐसे पीठ निमते हैं जिनकी भाषा बोड़ी छी बबल देने से बंदीबास का मामाकित कर बना देने पर पकड़ना मुश्किल है। नमूने के लिए हम 'मदपास बन्धु' गीतिकर से कुछ अंश गीते दे रहे हैं। पलकट पर पानी भरने जा 'कन्या' ने चउमाइ के चरबाहे 'मदपास' बन्धु की बंधी की ध्वनि सुनी है तब—

सुतेते भास्ये कसली पुन बाधीर गान ।

बाधीर भुरे हइरा गिल अबलार प्राण ॥

यही 'अबला नारी' ही किचित् संस्कृतिसम्पन्न मुनिपुत्र कवियों के काव्य-सृजन में राधा में रूपान्तरित हुई है। इस अबला की भाँति में पूर्व राम की राधा की छारी भाँति ही निखर उठी है।—

आमार बन्धु हइत यहि बुइ नयनेर तारा ।

तिलबंध अमागीरे ना हइत छाड़ा ॥ (समय पाइना)

देहेर पराणी मासा बन्धु हइत अमार ।

अमायोरे छाइरा बन्धु ना जाइत स्वान दूर ॥ (समय पाइना)

एक अंग कइरा यहि बिनि बड़ित ताहारे ।

संगे कइरा लइया भारत एहि अमागोरे ॥

(नो सकि समय पाईना)

आमि त अबला बन्धु हइनाम अंतरपुरा ।

कल भागिले नहीर बल मय्ये पड़े अड़ा ॥

रेबन्धु मय्ये पड़े अड़ा ॥

बइस्या कान्हे कुनर अमर उईड़ा कान्हे हागा ।

धियाकाले करतान विरीत पीबनकाले हागा ॥

रे बन्धु पीबन काले हागा ॥

मुजब बिम्या विरीत करा बड़ बिषम लेठा ।

भाल कुन सुमिते गेले अंगे सागे कौटा ॥

रे बन्धु अंगे साग कौटा ॥

लाज बासि मनर कया कइते नाइ स पारि ।

बुकेते लाइपाछे बन्धु देखाइ करे चिरि ॥

रे बन्धु देखाइ करे चिरि ॥

कइते मारि मनर कया मायो बापेर काछे ।

नीलारि बातासे आमार अंतर पुइरा आछे ॥

रे बन्धु अंतर पुइरा आछे ॥

नवीर धर्ये देखा मुला कांठेले कलसी ।
 ऐषण करिया नेवे तोमार मोहन बांशी ॥
 येर बाहिर हडते मारि कुलमानेर मय ।
 पित्ररा धाडिया नन बातासे उडय ॥
 कत कइरा बुमार्थ पाळी नाइ से माने माता ।
 मरा कलठी हडल रे बन्धु दिने दिने उजा ॥
 रे बन्धु बातासे उडय ॥
 रे बन्धु दिने दिने उजा ॥

(१) तुलसीय- बाबादरे उडवाये बन्धु धारे बन्धु चन्द्र सूर्य तारा ।
 तोमारे देखिया बन्धु धारे बन्धु हीचि प्रायत हारा ॥
 विपने फिरिया धारे बन्धु बाघो निब धारे ।
 एकेला मुहया बन्धु धारे बन्धु कामि प्रायत मंदिरे ॥
 बाहरेते मुनिने बन्धु धारे बन्धु तोमार पायेर धमि ।
 मुन हडते बाइया उठि धामि धमापिनी ॥
 बुक कुडिया बापरे बन्धु धारे बन्धु मुक कुडिया
 ना पारि ।
 धातरेर धामुने धामि धमिया पुडिया मरि ॥
 पाळी धरि हडताम बन्धु धारे बन्धु राकताम
 हडपिजरे ॥
 पुष्य हडने बन्धु धरि धारे बन्धु नाइया राकताम तोरे ॥
 बन्धु धरि हडते बन्धु धारे बंधु जाइया तारा निति ।
 बन्धु मुक देखिताम निरासाय बसि ॥ इत्यादि ।
 ममला, (ममलसिंह पीतिका)

तुलसीय-देवपाल भावना; ममलसिंह पीतिका पृ १७०-७१
 तुमि रे ममरा बन्धु धामि बनेर पुन ।
 तोमार नाइधारे बन्धु धाडताम जाति-पुन ॥
 बेनुबस्त नाइया तुमि बापरे बाबाने ।
 बनेर नाइया पाकि बाइया पव पाने ॥
 पव नाडि देखिरे बन्धु मुरे धाडि जने ।
 पापनिनी हडया फिरि तितेक ना हेजिने ॥
 नयनेर काजतरे बन्धु धारे बन्धु तुमि गजार माता ।
 एकाकिनी धरे कामि धमापिना लीला ॥
 कंक धो लीला, ममलसिंह पीतिका
 इत प्रसंग में 'कंक धो लीला' गाथा में लीला की विवरणा का वर्णन
 पायीय है ।

पूर्ववर्ग नीलिका के बीजे खण्ड की द्वितीय संख्या में 'धीलादेवी' की गाथा में एक गाथा है उसमें हम देखते हैं कि साहित्य के तीर पर भाव और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से बंगाल की वैष्णव-कविता से इसकी सजा तीमटा है।

प्रबला नारी का प्राण लेने के लिए केवल बुन्दावन में ही कृष्ण की बंसी बजी थी ऐसी बात नहीं बल्कि बंगाल के पनवटों और मैदानों में भी बंसी बजी थी और प्राण भी बचती है। विश्वम्पायी प्रेम की यह भी एक प्रकार की निस्पृहीता है। प्रप्राकृत्य प्रेम की निस्पृहीता का गान करते हुए रसिक विदग्ध—यहाँ तक कि भक्त कवियों को भी सामग्री लेनी पड़ी है प्राकृत्य प्रेम की निस्पृहीता से। बंसीबास धारि की वैष्णव-कविता त्रित प्रबला की प्राण-हरणकारी बंसी के स्वर से भरपूर है, इन पीठकाधों की बहुतेरी बीतिव्यर्थ भी उसी स्वर से भरपूर है। बरखाहे कंक की बंसी के बारे में कहा गया है—

(१) बन्धु धाज तोमारे स्वपन बैधि राइते ।

लोकसाजे समय पाइना कइते ॥

धामि जे धाबुता नारी जनर कथा कहते नारि

बधोर जने बुक मेसे जाप बानित मासे झुते ।

समय पाइना कइते ॥

मनेर भाबुप पुत्रबाम बइला पाबलाम बनमाला ।

(पो सखि) समय पाइना-

(धामार) बन्धन जने कुल पुष्टिल संबर सीमा नाई ।

कोन ईबैरे दिल धामल धामार सकल बुबुइका धाइ ॥

(मोसखि) समय पाइ ना-

एक दिन पनेर बेला जो धामि पाधुरिते ना पारि ।

जने दिल प्राब बन्धुरेधामि काजल कइरा परि ॥

(समय पाइना)

बन्धु यदि हइत धामार कलक धाम्यार कुल ।

सोबाप बांधाइया तारे जाने परताम कुल ॥ (समय पाइना)

बन्धु यदि हइत धामार पइरण नीलाम्बरी ।

सर्बान धुरिया परताम नाइसे विलाम धाइ ॥ (समय पाइना)

बन्धु यदि हइत रे माला धामार मापार जल ।

जाल कजरा बलताम घोषा दिया धाम्या कुल ॥ (समय पाइना)

नदीर घाटे देखा मुना काँसेते कसली ।
पेपन करिया वेघे लोमार मोहम बाँडी ॥
रे बन्नु लोमार मोहम बाँडी ॥

घरेर बाहिर हइते नारि कुलमानेर मम ।
पिबरा धारिया मन बातासे उइय ॥
रे बन्नु बातासे उइय ॥

कन कइरा बुसाई पाखी नाइ ते माने माना ।
मरा कसली हइम रे बन्नु बिब विने उजा ॥
रे बन्नु विने विने उजा ॥'

(१) तुमनीय- प्रान्तादरे बुइबाछे बन्नु घारे बन्नु बाग्र सुयं तारा ।
लोमारे बेखिया बन्नु घारे बन्नु हँधि थापन हारा ॥
: :
बिइले फिरीया घारे बन्नु बाघो निज बरे ।
एकेला मुइया बन्नु घारे बन्नु कान्धि थापन मंदिरे ॥
बाइरैते मुनिले बन्नु घारे बन्नु लोमार पयरे ध्वनि ।
धुम हइते बाइया उकि घामि धनापिनी ॥
बुक फुटिया बायरे बन्नु घारे बन्नु मुच फुटिया
ना पारि ।
अन्तरेर घापुने घामि अन्तिया पुटिया परि ॥
पाखी परि हइताम बन्नु घारे बन्नु राखताम्
हुइपिअरे ॥
पुण्य हइले बन्नु परि घारे बन्नु पइया राखताम तोरे ॥
बान्ध परि हइते बन्नु घारे बन्नु जाइया तारा निशि ।
बान्ध मुच बैखिताम निरास्ताम बसि ॥ इत्यादि ।
कमला (मैमनसिह पीतिका)

तुमनीय-बैजयान भावना मैमनसिह पीतिका, पृ १७-७१
अपवर्ती, बही, प २४३
तुमि रे अमरा बन्नु घामि बनेर कुल ।
लोमार लाइघारे बन्नु घाइलाय बासि-कुल ॥
वेनुबत्त लाइया तुमि बाघोरे बाबले ।
बन्नेर नाइया पाकि बाइया पव पाने ॥
पव नासि बेखिरे बन्नु नुरे घाँडि बने ।
पापलिनो हइया फिँरि तिलेक ना बेत्रिले ॥
नयनेर काजलरे बन्नु घारे बन्नु तुमि पतार माला ।
पकाकिनी घरे कान्धि उभांगिया लीला ॥
कंक घो लीला मैमनसिह पीतिका

इत प्रसंग में 'कंक घो लीला' पावा में लीला की विरहवधा का वर्णन
पायीय है ।

पूर्वबन्ध गीतिका के चौथे अष्टक की द्वितीय संख्या में 'सीतादेवी' की भाषा में एक माना है, उसमें हम देखते हैं कि साहित्य के लीर पर भाव और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से बंगाल की वैष्णव-कविता से इसकी सम-तीव्रता है।

प्रबला नारी का प्राण लेने के लिए केवल बुन्दावन में ही दुष्म की बंदी बनी थी ऐसी बात नहीं बल्कि बंगाल के पहाड़ों और मैदानों में भी बंदी बनी थी और प्राण भी बजती है। जिसव्यापी प्रेम की यह भी एक प्रकार की नित्यसीता है। अप्राकृत प्रेम की नित्यसीता का मान करते हुए उचित विदग्ध—यहाँ तक कि मकल कवियों की भी सामग्री लेनी पड़ी है प्राकृत प्रेम की नित्यसीता से। बंदीगत्य धारि की वैष्णव-कविता जिस प्रबला की प्राण-हरणकारी बंदी के स्वर से भरपूर है इन नीतकर्मों की बहुदेवी पीठिकाएँ भी उही स्वर से भरपूर हैं। अन्तर्दे की बंदी के बारे में कहा गया है—

(१) बन्धु प्राय तोमारे स्वपन देखि राइते ।

लोकताजे समय पाइना कहते ॥

धामि जे बन्धुला नारी मनर कथा कहते नारि

बसेर बने बुक मैले जाय बालिस भासे धरि ।

समय पाइना कहते ॥

मनेर मावुय पूजबाम बइला मनिनाम बजभासत ।

(गौ लखि) समय पाइना.

(धामार) बन्धन बने कुल कुटिस गंभेर सीमा नाई ।

बोन ईबेरे दिस धामुल धामार सकल बुपुरजा धाइ ॥

(पोछखि) समय पाइ ना.

एक दिन बनेर देका गो धामि पाभुरिते ना धारि ।

बने दिन प्राय बन्पुरे धामि काजस कहरा परि ॥

(समय पाइना)

बन्धु यदि हइत धामार कटक बाम्बार कुल ।

सोपाम बोबाइया तारे बने परताम कुल ॥ (समय पाइना)

बन्धु यदि हइत धामार बइरण नीलाम्बरी ।

सबांग धुरिया परताम नाइले दिताम धारि ॥ (समय पाइना)

बन्धु यदि हइत रै बाला धामार नावार बल ।

भाल कइरा बानताम बोबा दिया बाम्पा कुल ॥ (समय पाइना)

कहिर बोली मुने मही बहे उज्जान बकि ।
 संमीते बनर पशु सेओ बघ बाके ॥
 भाटियाल पानेते हर मे बुखेर पत्ता ।
 एक मने मुन कहि ताहार बारता ॥

‘स्वाम्यारवेर पाना’ में अनुपमिनी डोम-कन्या कहती देखते हैं—

बाघेर बाँधी हइताम हूती सो पाइताम मन मुज ।
 बाजनेर छले रिताम रँपुर मुझे मुज रे ॥ (प्राणि नारी)

‘भान्वा बन्धु’ की गाथा में देखते हैं—

बन्धुरे प्रारे बन्धु खेदिन शम्पाखि लोमार बाँधी ।
 बुज गल मान नेल बन्धु हइताम लोमार बाँधी रे ॥
 अन्तरारे कइया बुजाइ बन्धु बुस नाइ से मान ।
 मन जमुना उज्जान मइल बन्धु लोमार बाँधीर पान रे ॥

।। ।। ।।

मानाय त ना माने मन डिमुखा उज्जले ।
 तोबिर प्रागुल खेन्न बुध्या धुव्या खनेरे ॥

।०। ।।

काकला बाँधेते बन्धु परिपाछे बुध ।
 (प्राकार) अन्तरसे मानल प्रागुल बंध बंधे नाइ से पुमरे ॥

।०। ।। ।

लोमारै छाड़िया बन्धु मुज नाइ से राइ ।
 योपिनी साखिया अस काननेते जाइरे ॥
 बन्धन साखिया केरो बानाइव जटा ।
 संसारैर मुखेर पपे बन्धु बिया बाइताम करिगरे ॥^१

हम बंगाल के वैष्णव कवियों में चंडीदास को ही श्रेष्ठ कवि के रूप में जानते हैं। ये चंडीदास कृष्ण-कीर्तन के नवि बड़ चंडीदास नहीं हैं बंगाल के श्रेष्ठ कवि के रूप में स्वीकृत कवि चंडीदास हैं—यथार्थतः पदों के कवि चंडीदास हैं। हमने उनके प्राणि चंडीदास होने में सन्देह नही हो सकती है लेकिन मुझ चंडीदास होने में किसी प्रकार की सन्देह नहीं है। चंडीदास की यह श्रुतता किम बात में है?—इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि नवि चंडीदास की श्रुतता इस बात में है कि उन्होंने

(१) (पृ गी० ३।२)

(२) (पृ ३।२)

बंगालियों के मर्म में प्रवेश किया है—धर्मिण्यक्ति की वृत्ति से उन्होंने बंगालियों के मन की सच्ची बात और जबानी बात में बंगालियों के मर्म को प्रकट करने में सफल हुए हैं। प्रबलित बंजीदास के पद्यों पर विचार करने से हम देखते हैं कि बंगालियों की शारीरिक जीवन-प्रणाली—और विशेष करके उस जीवन-महाली के अन्दर से उत्पन्न होने वाले प्रेम—बंगाल की माटी का प्रायः—इसका एक मूर्त प्रतीक है बंजीदास की राधा। इस राधा का अवलम्बन करके बंजीदास के जो भाव माया अन्व उपमा हैं—इनमें से प्रत्येक में सहज बंगाली जीवन का अङ्कित आभास है। इसीलिए ऊपर की हुई शारीरिक आशामों में जो प्रेम का चित्र दिखाई पड़ा वही के भाव स्वर, अन्व—सभी के साथ बंजीदास का सहज में दिखाई पड़ता है। ये बंजीदास शैल्य के पूर्ववर्ती कवि हैं या नहीं इस विषय में सच्चा संदेह दिखाई पड़ा है—ये बंजीदास कोई एक कवि थे या नहीं इसके बारे में भी संदेह बीरे-बीरे धनीभूत हो रहा है। लेकिन बंगाल के प्रेम-साहित्य पर विवेचन करके इस बंजीदास के बारे में हमें जो रोशनी मिली उसके आधार पर कह सकते हैं कि बंगाल का प्रेम विचित्र है। इस प्रेम को प्रकट करने के लिए बंगालियों की जो अपनी विचित्र भंगिमा है उसका अवलम्बन करके बहुत से पद्यों में एकत्र समाविष्ट होकर माया बंगालियों के विपन्न कवि बंजीदास के कवि-व्यक्तित्व का निर्माण किया है। इसीलिए बंजीदास की राधा एक शुद्ध बंगाली कवि की मानस प्रतिमा है—बंगाली कवि के चित्त में बृहत् प्रेम-प्रतिमा है। प्रेम की प्रतिमा इस राधा में हम देखते हैं कि बंगाली कवि बंगाल को छोड़कर बुन्दावन नहीं चले गए—बुन्दावन की मूमि दूर से पाकर लक्ष-सत्र पर बंगाली कवि की मनोमूमि में प्रतिष्ठित हुई है जिसके फलस्वरूप बंगाली कवि-मानस की प्रेम-प्रतिमा ने अपने प्राकृत रूप के अन्दर से दिव्य ज्योति से अप्राकृत महिमा प्राप्त की है। हमारे राज-श्रम में प्राकृत कही भी धारणीय नहीं हुई है—प्राकृत ही बीरे-बीरे दिव्यमूर्ति में उद्भूत-मित हुई है।

बंगालियों के मर्म में प्रवेष्ट किया है—प्रभिव्यक्ति की दृष्टि में उन्होंने
 बंगालियों के मन की सच्ची बात धीरे बहानी बात में बंगालियों के मर्म
 को प्रकट करने में सफल हुए हैं। प्रभिनित बंजीदास के पदों पर विचार करने
 से हम देखते हैं कि बंगालियों की प्राचीन जीवन-प्रणाली—धीरे विद्योप करने
 उस जीवन-प्रणाली के चन्द्र से उत्पन्न होने वाले प्रेम—बंगाल की
 गायी का प्राण—इसका एक मूर्त प्रतीक है बंजीदास की राधा। इस राधा
 का परमस्वयं करके बंजीदास के जो मातृ भाषा सुख उपमा है—इतम
 से प्रत्येक में सहज बंगाली जीवन का प्राकृतिक प्रभाव है। इसीलिए ऊपर
 ही हुई प्राचीन गायामों में जो प्रेम का चित्र दिखाई पड़ा वहाँ के मातृ
 स्वर, ध्वनि—समी के साथ बंजीदास का सहज मर्म दिखाई पड़ता है।
 य बंजीदास वैतम्य के पूर्ववर्ती कवि हैं या नहीं इस विषय में सच्चा सबेह
 दिखाई पड़ा है—ये बंजीदास कोई एक कवि थे या नहीं इसके बारे में
 भी सखी धीरे-धीरे धनीमूत हो रहा है। लेकिन बंगाल के प्रेम-साहित्य पर
 विवेचन करके इस बंजीदास के बारे में हमें जो रोचनी मिली उसके
 प्रकार पर कह सकते हैं कि बंगाल का प्रेम विधि है। इस प्रेम को
 प्रकट करने के लिए बंगालियों की जो अपनी विभिन्न मंगिमा है उसका
 परमस्वयं करके बहुत से पदों ने एकत्र समाहित होकर मातृ बंगालियों
 के विषय कवि बंजीदास के कवि-व्यक्तित्व का निर्माण किया है। इसीलिए
 बंजीदास की राधा एक सुदृढ बंगाली कवि की मानस-प्रतिमा है—बंगाली कवि के
 चित्त में बृहत् प्रेम-प्रतिमा है। प्रेम की प्रतिमा इस राधा में हम देखते हैं कि बंगाली
 कवि बंगाल को छोड़कर बृन्दावन नहीं चले गए—बृन्दावन की भूमि दूर से
 पाकर बच-अप पर बंगाली कवि की अनोखी भूमि में प्रतिष्ठित हुई है जिसके
 परमस्वयं बंगाली कवि-मानस की प्रेम प्रतिमा ने अपने प्राकृत रूप के चन्द्र से
 दिव्य ज्योति से अप्राकृत महिमा प्राप्त की है। हमारे राज-भ्रम में प्राकृत
 नहीं भी धरतीहस्त नहीं हुई है—प्राकृत ही धीरे-धीरे दिव्यमूर्ति में उपमा-
 नित है।